वाणी-सरोवर

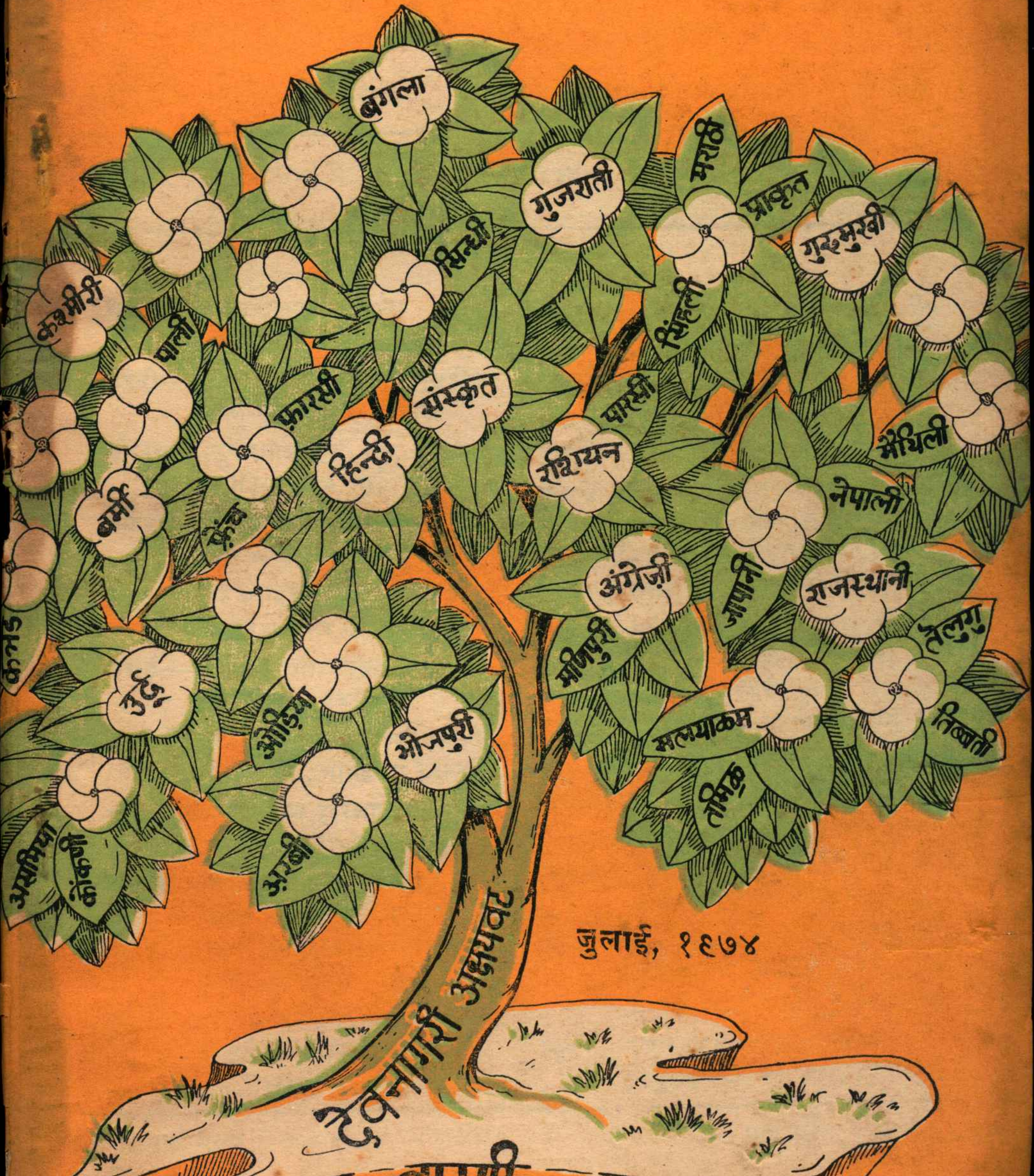

जुलाई, १९७४

भुवन वाणी ट्रस्ट
लखनऊ-३

नन्दकुमार अवस्थी —प्रतिष्ठाता

[भुवन वाणी ट्रस्ट (पंजीकृत) लखनऊ का मुखपत्र (त्रैमासिक)]

वाणी सरोवर

प्रत्येक क्षेत्र प्रत्येक संत की बानी।
संपूर्ण राष्ट्र में घर-घर है पहुँचानी ।।

संपादक—नन्दकुमार अवस्थी प्रब०सं०—विनयकुमार अवस्थी

वर्ष—५ जुलाई, १९७४ अंक—३

विद्वत्-परिषद्

असमिया—बसन्तकुमार सैकिया
सुश्री दीप्ति बरगुहाईं

अरबी—क़ारी मुहम्मद उस्मान सिद्दीक़ी, दारुल्-मुबल्लग़ीन, लखनऊ

ओड़िया—सुरेशचन्द्र नन्द, एम. ए. हिन्दी-ओड़िया, रा० भा० रत्न, कटक

अंग्रेज़ी—डॉ. एम. डी. पटियाल
प्रिं. उ. भा. धर्ममहाविद्या. बरेली

उर्दू—डॉ.स० असदअली एम.ए.,पीएच्. डी.
सुश्री माजदा असद एम.ए. पीएच्.डी.

कन्नड—डॉ. बी. बी. पुत्रन, एम. ए., पीएच्. डी., बंबई

कश्मीरी—डॉ. शिबनकृष्ण रैणा, एम. ए., पीएच्. डी., नाथद्वारा (राज.)

गुजराती—डॉ. दीनेश हरिलाल भट्ट,एम.ए. पीएच्.डी., रा०भा० रत्न, बंबई

गुरुमुखी—डॉ० अमरसिंह खालसा, डा० आफ़ डिविनिटी (यू. एस. ए.)
सरदार कृपालसिंह ऐबट, बी. काम., एल. एल. बी.

तमिऴ—डॉ०पी० जयरामन,हिन्दी आफ़िसर रिज़र्व बैंक ऑफ़ इण्डिया
वी. नटराजन, एम. काम.

तेलुगु—डॉ. भीमसेन 'निर्मल', एम. ए., पीएच.डी.,रीडर,उस्मानिया वि.वि.

नेपाली—नन्दकुमार आमात्य
सुश्री तपेश्वरी देवी आमात्य

पारसी—सुश्री नाज़ू दारा देबू, 'दिलनवाज़'

फ़ारसी—स० मस्ऊदहसन रिज़्वी, भारत-सरकार-सम्मानित, भू.पू. (फ़ारसी) विभागाध्यक्ष लखनऊ वि० वि०

बंगला—प्रबोध मजुमदार

मराठी—प्रा० गजानन साठे, एम.ए., मराठी-अंग्रेजी, हिन्दी, बी.टी., पीएच्. डी. (हिन्दी), बंबई

राजस्थानी—डॉ. सत्यनारायण स्वामी एम. ए. पीएच्. डी., बीकानेर

मलयाळम—के. ए. एस. अय्यर, भू. पू. उपकुलपति लख० वि० वि०

संस्कृत—बिहारीलाल शास्त्री,का.तीर्थ, बरेली
जनार्दन गंगाधर रटाटे, एम. ए.

सिन्धी—प्रा० कु० पी. टी. आसवाणी, एम. ए., साहित्यरत्न
एन. के.केवलरामानी, सा.मं.सिं.स.

हिन्दी—कविराज कृष्णकुमार अवस्थी, आयुर्वेदाचार्य, बी. आई. एम. एस.

वार्षिक मूल्य १०.०० एक प्रति २.५०

विषय-सूची

क्रम	विषय	लेखक	पृष्ठ
१	विद्वत्परिषद्	... ...	१
२	विषय-सूची	... ...	२
३	सम्पादकीय	... ...	३-४
४	(फ़ारसी)	सिर्रे अक्बर—शा. दाराशिकोह कृत ५० उपनिषदों की व्याख्या (क्रमशः) अनुवादक—डॉ. हर्षनारायण एम.ए.,पीएच्.डी.	२१७-२२४
५	(मलयाळम)	कवि तुञ्चत्त् एळुत्तच्छन्कृत महाभारत (क्रमशः) सानु.लिप्य.—श्री के.ए.एस.अय्यर,भू.पू. उपकुलपति लख. वि.वि.	२२५-२३२
६	(बंगला)	कृत्तिवास रामायण लं.कां.—(क्रमशः) लिप्य.—नन्दकुमार अवस्थी, अनु.—श्री प्रबोध मजुमदार	२२५-२३२
७	(तमिळ)	तिरुक्कुरळ्—सानु०लिप्य०—श्री डॉ० जयरामन, सुश्री गोमती अय्यर; पद्य-भावानुवाद—नन्दकुमार अवस्थी (क्रमशः)	... ...
८	(उर्दू)	गुज़श्तः लखनऊ—मौ० अब्दुल हलीम शरर, (क्रमशः) लिप्यन्तरणकार—सुश्री कु० हुमैरा सिद्दीक़ी	७३-८०
९	(अ़रबी)	रियाज़ुस्सालिहीन (ज़ादॅ सफ़र)—(क्रमशः) लिप्यन्तरणकार—नन्दकुमार अवस्थी	१८५-१९२
१०	(ओड़िया)	वैदेहीश-विळास—उपेन्द्र भञ्ज कृत—(क्रमशः) सानु० लिप्य०—श्री सुरेशचन्द्र नन्द, एम.ए., कटक	२०१-२०८
११	(मराठी)	श्रीराम-विजय—श्रीधर स्वामी कृत—(क्रमशः) अनु०—डॉ० गजानन साठे,पूना एम.ए.,अंग्रेज़ी-मराठी-हिन्दी	१६१-१६८
१२	(असमिया)	माधव कन्दली कृत रामायण—(क्रमशः) सानु० लिप्य०—श्री प्रबोध मजुमदार	१३७-१४४
१३	(गुजराती)	गिरधर-रामायण—(क्रमशः) सानु. लिप्य०—डॉ. गजानन साठे,पूना,डॉ. दीनेश भट्ट,बंबई	१२९-१३६
१४	(तेलुगु)	रंगनाथ रामायण—(क्रमशः) सानु० लिप्य०—डॉ० भीमसेन 'निर्मल',एम.ए.,पी.एच्.डी.	१२१-१२८
१५	(सिन्धी)	सामीअ जा सलोक—(क्रमशः) सानु० लिप्य०—प्रा० कु० पी. आसवाणी, एम.ए. सा०र०	१२१-१२८
१६	(कन्नड)	पम्प रामायण—रच० अभिनव पम्प नागचन्द्र (क्रमशः) सानु. लिप्य.—डॉ. बी. बी. पुत्रन, एम.ए., पीएच्. डी.	१०५-११२
१७	(नेपाली)	भानुभक्त रामायण—(क्रमशः) अनु० श्री नन्दकुमार आमात्य	१०५-११२
१८	(कश्मीरी)	रामावतार-चरित—(क्रमशः) सानु. लिप्य.—डॉ. शिबनकृष्ण रैणा एम. ए. पीएच्. डी.	११३-१२०
१९	(गुरमुखी)	श्री गुरुग्रन्थ साहिब—हिन्दी व्याख्या सहित (क्रमशः) सरदार कृपालसिंह ऐबट, बी. काम, एल. एल. बी.	८१-८८
२०	(संस्कृत)	श्रीरामचरितमानस—संस्कृत पद्यानुवाद सहित (क्रमशः) श्री जनार्दन गंगाधर रटाटे, एम. ए., साहित्यरत्न	८१-८८

सम्पादकीय

कालचक्र का प्रभाव

किसी राज्य में एक ग़रीब ब्राह्मण कठिनाई से गुज़ारा कर रहा था। जीवन में उसकी एक मात्र लालसा थी कि एक सामान्य फूस की झोपड़ी बना पाने के लिए उसको कहीं से स्वल्प धन की प्राप्ति हो जाय। किन्तु कहाँ ? जीवन तो अधपेट चल रहा था !

एक रात्रि, राजा ने स्वप्न में देखा कि एक लोमड़ी उसके सामने से भागी जा रही है। प्रातः स्वप्नफल बताने के लिए ढिंढोरा पीटा गया। ज्योतिषियों और विद्वानों ने अपनी-अपनी कही; राजा को संतुष्ट न कर पाने पर भी कुछ लेते-पाते बिदा हुए।

उस दिन विप्र की लालसा कुरेद रही थी। एक वृक्ष के नीचे सोच रहा था कि यदि स्वप्न का फल बता कर वह राजा को संतुष्ट कर सके तो उसका झोपड़ी वाला अरमान पूरा हो जाय। वृक्ष पर रहने-वाले एक पक्षी ने उसकी निराशा भंग करते हुए पूछा कि यदि मैं स्वप्न का समाधान बतला दूँ तो राजा से प्राप्त पुरस्कार में मेरा क्या भाग होगा। आधा देने के आश्वासन पर पक्षी ने विप्र से कहा कि राजा को सावधान कर दो कि स्वप्न के अनुसार इस समय तुम्हारे राज्य में छल और ठगी का बाज़ार गर्म है; अपना समुचित प्रबन्ध करो।

ब्राह्मण के मुख से सुना यह फल राजा को संतोषजनक और प्रत्यक्ष सत्य प्रतीत हुआ। घोषित पुरस्कार पाते ही विप्र ने, लालसा से अधिक सुन्दर झोपड़ी बनवा कर, अवशेष धन को वहीं धरती में गाड़ दिया। पक्षी की सुध न ली।

एक रात्रि, राजा ने पुनः स्वप्न देखा कि एक विकराल साँड़ फुफकारता सरपट दौड़ता चला जा रहा है। पुनः राजा की इनाम-घोषणा, विद्वानों की विफलता, लालसा तृप्त हो जाने पर भी उसी विटप के नीचे जाकर पक्षी से विप्र का पूर्ववत् संवाद—यह सब हुआ। पिछला अर्द्धांश न पाने की शिकायत किये विना ही, अगले पुरस्कार का अर्द्धांश पाने का वचन लेकर पक्षी ने दूसरे स्वप्न का फल बतलाया—"राजा को सचेत करो कि अब छल-धूर्तता के साथ-साथ तुम्हारे राज्य में अन्याय, उद्दण्डता, अत्याचार और परपीडन का बाज़ार गर्म है। परख लो और सावधान रह कर व्यवस्था करो"।

यह स्वप्न भी राजा को संतोषजनक और राज्य में मूर्तिमान् दिखाई दिया। विप्र ने पूरा पुरस्कार लाकर पुनः वहीं धरती में दफ़न कर दिया। पक्षी की सुध लेना तो दूर, इस बार राजा से पुरस्कृत होकर लौटते समय उसने तरंग में पक्षी के प्रति एक कंकड़ी भी फेककर मार दी।

कुछ दिनों बाद, राजा ने पुनः स्वप्न देखा कि उसके सामने सारसों का झुण्ड विचर रहा है। पुनः घोषणा, विद्वानों की विफलता, विप्र का लोभ, विना पिछले इनामों का अपना अंश न पाने की चर्चा किये, फिर

अगले इनाम के अर्द्धांश का वचन लेकर पक्षी द्वारा स्वप्न-फलादेश—सब की पहले की भाँति पुनरावृत्ति हुई। राजा ने, इस बार यह सुनकर और उसे प्रत्यक्ष देखकर भी, कि अब उसके राज्य में अनाचार का नाम नहीं है, सरकार और प्रजा सुख-समृद्धि से तृप्त और मगन हैं, विप्र को घोषित से दुचंद इनाम देकर प्रसन्न किया।

विप्र ने न जाने क्या सोचा कि वह पिछला धन भी खोद-लाकर इस ताज़े इनाम सहित, वह पक्षी के सामने आया और बोला, "भाई पक्षी! मेरी लालसा तो एक झोपड़ी मात्र की थी। ब्राह्मण को अधिक धन से क्या प्रयोजन? फिर यह सारा धन है तो तुम्हारी ही बुद्धि की बदौलत! यह सब अपना स्वीकार करो"। पक्षी ने उत्तर दिया, "विप्रवर! जब तुम्हारा यह हाल है तो मुझ पक्षी के लिए इस जड़वत् धन का क्या अर्थ? इस वृक्ष पर निवास और दो-चार फल-मूलों पर गुज़ारा! मैं धन का क्या करूँगा? जाओ, इसका सदुपयोग करो।"

यह है कालचक्र का प्रभाव! उसी दीन निस्पृह ब्राह्मण के चित्त की कालान्तर से तीन वृत्तियाँ। छल-धूर्तता के वातावरण में उपकारकर्ता का अंश-हरण; निरंकुश उद्दण्डता के समय में अपने अनुग्रहकर्ता पर, उसके भाग को हरण करने के साथ-साथ, कंकड़ी-प्रहार; और सतयुग उपस्थित होने पर विप्र-सहज-स्वभाव से प्रेरित होकर अधिकृत धन से विराग और अनुग्रहकर्ता को निपट निर्बल जानकर भी उसका तथा अपना, दोनों अंश उसे अर्पित कर देने का अनुराग—यह सब समय की चपेट है।

आज जो देश की दुरवस्था है उसमें भला भी काजल की कोठरी की काली रेखा से बच नहीं पा रहा है। शासन और जनता सब एक दूसरे की आलोचना करते हैं; दोनों मञ्चों में से कुछ धूर्त-वञ्चक हैं; कुछ उछृंखल होकर समाज का जीवन अस्त-व्यस्त किये दे रहे हैं; जो नेकनीयत हैं वे भी पृथक्-पृथक् कारणों से प्रेरित होकर अपने को संयम में नहीं रख पा रहे हैं; और कुछ संयमी, जो अपने पथ पर अडिग हैं, उनको उपर्युक्त तीनों तत्व पनपने या जीने नहीं देते। धर्म, समाज, राजनीति—सर्वत्र ये चारो धड़े वर्तमान हैं। यह तथ्य है कि दोनों पक्ष अपराधी हैं। किन्तु इस पर क़ाबू पाना, नियंत्रण और संयम रखना और रखवाना, इसमें जनता की अपेक्षा शासन की क्षमता, सामर्थ्य और उत्तरदायित्व कहीं अधिक है।

उपर्युक्त ब्राह्मण और पक्षी (द्विजद्वय) के दृष्टांत में निर्दिष्ट है कि कालचक्र सदैव घूमता रहता है। आज की दशा भी बदलकर रहेगी। आलोचना त्यागकर हम अपने-अपने हृदय का मूल्यांकन करें। शायद भगवान् दयालु हों। भले ही देश पर तरस न खाएँ, अपना ही भला न देख पाकर अपने को भी प्रमादग्रस्त कर लें, किन्तु निरीह बेसहारों और निर्बलों पर तो करुणदृष्टि डालें।

उपासना करें ? एक देव चरणों के मार्ग से प्रविष्ट हुआ है और एक देव सिर के मार्ग से, इन दोनों में से आत्मा कौन है ? उन्हों ने जाना कि निश्चय ही आत्मा वह है जिस से [पुरुष] देखता है, जिस से सुनता है, जिस से सूँघता है, जिस से बोलता है, और जिस से खट्टे-मीठे का स्वाद पहचानता है। [१]

यदेतद् धृदयं मनश् चैतत्। संज्ञानमाज्ञानं, विज्ञानं, प्रज्ञानं मेधा, दृष्टिर्, धृतिर्, मतिर्, मनीषा, जूतिः, स्मृतिः, संकल्पः, क्रतुरसुः, कामो, वश इति सर्वाण्येवैतानि प्रज्ञानस्य नामधेयानि भवन्ति ॥ २ ॥

अनु०—यह जो हृदय है वही मन है। संज्ञान, आज्ञान, विज्ञान, प्रज्ञान, मेधा, दृष्टि, धृति, मति, मनीषा, जूति, स्मृति, सङ्कल्प, क्रतु, काम, और वश ये सभी प्रज्ञान के नाम हैं। (२)

सि० अ०—हृदय उसी का नाम है, मन उसी का नाम है, संज्ञान उसी का नाम है, आज्ञान उसी का नाम है, विज्ञान उसी का नाम है, प्रज्ञान उसी का नाम है, सत्यासत्य का विवेक उसी का नाम है, स्वामी उसी का नाम है, जीवनदाता उसी का नाम है, धृति उसी का नाम है, संकल्प उसी का नाम है, भोक्ता उसी का नाम है, क्रतु उसी का नाम है, स्वास्थ्यवर्द्धन उसी का नाम है, स्मृति उसी का नाम है, और ये सभी नाम [उसी के हैं]। उस का नाम साक्षात् प्रज्ञान है। [२]

एष ब्रह्मैष इन्द्र; एष प्रजापतिरेते सर्वे देवा; इमानि च पञ्च महाभूतानि—पृथिवी, वायुराकाश, आपो, ज्योतींषि—इति; एतानीमानि च क्षुद्रमिश्राणीव बीजानीतराणि चेतराणि चाण्डजानि च; जारुजानि च; स्वेदजानि; चोद्भिज्जानि; चाश्वा; गावः; पुरुषा; हस्तिनो—यत्किञ्चेदं प्राणि, जङ्गमं च, पतत्रि च यच् च स्थावरं सर्वं तत् प्रज्ञानेत्रम्, प्रज्ञाने प्रतिष्ठितम्। प्रज्ञानेत्रो लोकः, प्रज्ञा प्रतिष्ठा, प्रज्ञानं ब्रह्म ॥ ३ ॥[१]

अनु०—यह ब्रह्म है; यही इन्द्र है; यही प्रजापति है; यही ये [अग्नि आदि] सारे देव; यही—पृथिवी, वायु, आकाश, जल, और तेज—पाँच भूत हैं; यही क्षुद्र जीव से युक्त उन के बीज; अन्यान्य; अण्डज;

---

१ तुलनीय—छान्दोग्योपनिषद् ६.३.१।

जरायुज; स्वेदज; उद्भिज; अश्व; गौ; मनुष्य; हाथी—जो कुछ भी यह जङ्गम (पैर से चलनेवाले) और पक्षी हैं, जो भी स्थावर (वृक्ष, पर्वत, आदि) है वह सब प्रज्ञानेत्र है, प्रज्ञान में ही स्थित है। लोक प्रज्ञानेत्र है, प्रज्ञा ही उस का आश्रय है, प्रज्ञान ही ब्रह्म है। (३)

सि० अ०—वही ब्रह्मा है, वही इन्द्र है, वही प्रजापति है, वही समस्त देवता है। वही पञ्च महाभूत है जो जल, अग्नि, वायु, पृथ्वी, और आकाश [कहलाते] हैं। बड़े-छोटे बीज और अन्य जो कुछ पृथ्वी से निकलता है, अण्डे से निकलता है, कुक्षि से निकलता है, जो कुछ नश्वर है—सब वही है। अश्व, गौ, मनुष्य, हाथी, पशु-पक्षी, जंगम-स्थावर—सब वही है। सब कुछ उसी से उत्पन्न होता है, उसी में रहता है, और उसी में लीन हो जाता है। वही जगत् को गति देता है, और यही संसार ब्रह्म है। [३]

स एतेन प्रज्ञेनात्मनाऽस्माल् लोकादुत्क्रम्यामुष्मिन् स्वर्गे लोके सर्वान् कामानाप्त्वाऽमृतः समभवत्, समभवत् ।। ४ ।।

अनु०-वह (वामदेव) इस चैतन्य आत्मा से ही इस लोक से उत्क्रमण कर इन्द्रियातीत स्वर्गलोक में समस्त कामनाओं को प्राप्त कर अमर हो गया, [अमर] हो गया। (४)

सि० अ०—जब यह जीवात्मा पूर्ण ब्रह्मवेत्ता हो जाता है और अपने को जान लेता है, तो वह इस संसार से मुक्त हो कर परलोक सिधारता है और सभी कामनाओं को प्राप्त कर अमर हो जाता है। [४]

।।इति तृतीयेऽध्याये प्रथमः खण्डः।।

इति तृतीयोऽध्यायः

शान्तिपाठः

ॐ वाङ् मे मनसि प्रतिष्ठिता, मनो मे वाचि प्रतिष्ठितम् । आविरावीर् म एधि । वेदस्य म आणीस्थः । श्रुतं मे मा प्रहासीः । अनेनाधीतेनाहोरात्रान् सन्दधामि । ऋतं वदिष्यामि, सत्यं वदिष्यामि । तन् मामवतु, तद् वक्तारमवतु । अवतु मामवतु वक्तारमवतु वक्तारम् ।।

ॐ शान्तिः ! शान्तिः !! शान्तिः !!!

अनु०—मेरी वाणी मन में स्थित हो, मन वाणी में स्थित हो । तुम मेरे समक्ष आविर्भूत होओ । तुम मेरे प्रति वेद को लाओ । मेरा श्रवण किया हुआ नष्ट न हो । अपने इस अध्ययन के द्वारा मैं रात और दिन को एक कर दूँ । मैं ऋत बोलूँगा, सत्य बोलूँगा । वह मेरी रक्षा करे, वह वक्ता की रक्षा करे, वक्ता की रक्षा करे ।

त्रिविध ताप की शान्ति हो ।

सि० अ०——वह शान्तिपाठ जो इस उपनिषद् का आरम्भ करने और समाप्त होने पर किया जाता है यह है—

मेरी वाणी मेरे मन में प्रतिष्ठित हो, मेरा मन मेरी वाणी में प्रतिष्ठित हो, वाणी का सार मुझ पर प्रकट हो और प्रतिदिन बढ़े । हे मन और वाक् ! तुम मार्ग-दर्शक बनो, मैं ने वेद से जो सुना है वह विस्मृत न हो, वेदाध्ययन द्वारा इस दिन और रात्रि को एक देखूँ । इसे अपने कर्मों का फल कहता हूं और सत्य कहता हूँ । यह मेरा रक्षक और आचार्य होवे ।

इत्यैतरेयोपनिषत् समाप्ता

ॐ

श्वेताश्वतरोपनिषद्

(कृष्णयजुर्वेदीया)

शान्तिपाठः

ॐ सह नाववतु। सह नौ भुनक्तु। सह वीर्यं करवावहै। तेजस्वि नावधीतमस्तु। मा विद्विषावहै।

ॐ शान्तिः! शान्तिः!! शान्तिः!!![1]

अनु०—[परमात्मा] हम [आचार्य और शिष्य] दोनों की साथ-साथ रक्षा करे। हम दोनों का साथ-साथ पालन करे। हम साथ-साथ विद्या-सम्बन्धी सामर्थ्य प्राप्त करें। हम दोनों का पढ़ा हुआ तेजस्वी हो। हम दोनों द्वेष न करें।

त्रिविध ताप की शान्ति हो।

प्रथमोऽध्यायः

ॐ ब्रह्मवादिनो वदन्ति—

किं कारणं ब्रह्म? कुतः स्म जाता?
जीवाम केन? क्व च संप्रतिष्ठाः?
अधिष्ठिताः केन सुखेतरेषु
वर्तामहे ब्रह्मविदो! व्यवस्थाम्? ॥ १ ॥

ॐ ब्रह्मवेत्तालोग कहते हैं—[जगत् का] कारणभूत ब्रह्म क्या है? हम किस से उत्पन्न हुए हैं? किस के द्वारा जीवित रहते हैं? कहाँ स्थित हैं? और हे ब्रह्मविद्गण! हम किस के द्वारा सुख-दुःख में प्रेरित हो कर व्यवस्था (संसारयात्रा) का अनुवर्तन करते हैं? (१)

सि० अ०—ब्रह्म के जिज्ञासु समवेत होकर कहने लगे—संसार जो उत्पन्न हुआ है उस का उपादान कारण ब्रह्म है या कुछ और? हम प्राणी कहाँ से प्रकट हुए हैं, किस में रहते हैं, किस की शक्ति और सामर्थ्य से क्रियाकलाप करते हैं, और किस के द्वारा हम सुख-दुख में पड़ते हैं? इस सब का मूल क्या है? आओ उस मूल का पता लगाएँ। [1]

कालः, स्वभावो, नियतिर्, यदृच्छा,
भूतानि, योनिः, पुरुष इति चिन्त्या ।
संयोग एषां न त्वात्मभावाद्,
आत्माऽप्यनीशः सुखदुःखहेतोः ॥ २ ॥

अनु०—काल, स्वभाव, नियति, यदृच्छा, भूत, और पुरुष—ये [कारण के रूप में] विचारणीय हैं। [अच्छा, इन में से कोई एक अथवा पृथक्-पृथक् प्रत्येक तो सब का कारण हो नहीं सकता,] आत्मा के अधीन होने के कारण इन का संयोग भी [कारण] नहीं [माना जा सकता]। जीवात्मा भी सुख-दुःख के [अधीन होने के] कारण [सब का] अधीश्वर नहीं है। (२)

सि० अ०—यह जो बात उठी कि जगत् की उत्पत्ति का कारण ब्रह्म है या कोई और [उस पर] लोगों ने कहा कि यह काल ही जगत् की उत्पत्ति का कारण है, जिस से वह उत्पन्न होता है, जिस में वह स्थिति रहता है, जिस में वह लीन हो जाता है। कुछ लोग कहते हैं कि [जगत्] स्वतः आता है, स्वतः रहता है, और स्वतः जाता है। अन्य समुदाय कहता है कि सृष्टि का कारण कर्म है। कुछ लोग कहते हैं कि स्रष्टा तो है किन्तु उस से जगत् स्वतः उत्पन्न हो गया है। एक समुदाय कहता है कि सब का उत्पादक महाभूत है और कि जो भी है वह महाभूतों से उत्पन्न हुआ है। एक अन्य समुदाय कहता है कि सब का उत्पादक तीनों गुणों की साम्यावस्था है जिसे प्रकृति कहते हैं। एक और समुदाय कहता है कि जगत् की उत्पत्ति का कारण पुरुष है जिसे हिरण्यगर्भ कहते हैं। विचार करना चाहिए कि ये सब सृष्टि के कारण हो सकते हैं या नहीं। एक समुदाय तो कहता है कि जिन का वर्णन हुआ है उन सब का संयोग ही जगत् की उत्पत्ति का कारण है। यह सब मिथ्या है, इसलिए कि इन का संयोग किसी विशेष कारण से होता है। ये कैसे उत्पत्ति के कारण हो सकते हैं, क्यों कि ये तो भोग के कारण और भोक्ता हैं? दूसरे इसलिए कि जीवात्मा ही उत्पत्ति का कारण क्यों नहीं हो सकता जो भोक्ता है और ये जिस के भोग के साधन हैं? [किन्तु] वह भी उत्पत्ति का कारण नहीं हो सकता, क्योंकि उसे सुख और दुःख दोनों की प्राप्ति होती है। अतः उस के लिए कोई और होना चाहिए जो उसे सुख और दुख का भोग कराये। [२]

ते ध्यानयोगानुगता अपश्यन्
देवात्मशक्तिं स्वगुणैर् निगूढाम्—
यः कारणानि निखिलानि तानि
कालात्मयुक्तान्यधितिष्ठत्येकः ॥ ३ ॥

अनु०—उन्हों ने ध्यानयोग का अनुवर्तन कर अपने गुणों से आच्छादित परमात्मा की शक्ति का साक्षात्कार किया—जो (परमात्मा) कि अकेले ही काल से लेकर आत्मा पर्यन्त समस्त कारणों का अधिष्ठाता है। (३)

सि० अ०—वे ब्रह्मवादी इन सभी मतों की उपस्थापना करके अपने भीतर ध्यान-मग्न हो गये। [ध्यानावस्था में उन्हों ने] देखा कि जगत् की उत्पत्ति का कारण वह सत्ता है जो प्रकाशस्वरूप है और जिस की शक्ति तीनों गुणों से आच्छन्न है। वही एक मात्र सत्ता जगत् की उत्पत्ति का कारण है जिस की यह महिमा है, और जो काल से ले कर जीवात्मा तक जिन तत्त्वों का उल्लेख हुआ है उन सब को शक्ति प्रदान करती है। [३]

तमेकनेमिं, त्रिवृतं, षोडशान्तं,
शतार्धारं विंशतिप्रत्यराभिः,
अष्टकैः षड्भिर् विश्वरूपैकपाशं,
त्रिमार्गभेदं, द्विनिमित्तैकमोहम् ॥ ४ ॥

अनु०—उसे [हम एक चक्र जानते हैं जिस में] एक नेमि है,[1] तीन वृत (टायर) हैं,[2] सोलह अन्त हैं,[3] बीस प्रत्यरों[4] सहित पचास अरे[5] हैं, छह अष्टकों[6] सहित एक बहुरूपी पाश है,[7] तीन पृथक्-पृथक् मार्ग[8] हैं, दो निमित्तों[9] वाला एक मोह (अज्ञान) है। (४)

---

१ प्रकृति। २ त्रिगुण, अर्थात् सत्त्व, रजस्, और तमस्। ३ पञ्चमहाभूत, पञ्चज्ञानेन्द्रियाँ, पञ्चकर्मेन्द्रियाँ, और एक उभयेन्द्रिय (मन)। ४ पञ्चज्ञानेन्द्रियाँ, पञ्चकर्मेन्द्रियाँ, और इन के दस विषय ५ पचास भाव सांख्यकारिका ४६-५१ में परिगणित हैं। वे हैं—पाँच विपर्यय (तम, मोह, महामोह, तामिस्र, और अन्धतामिस्र); अट्ठाईस अशक्तिआँ (बहिरापन, स्पर्शन-शक्ति का नाश, अन्धत्व, जिह्वा-शक्ति का नाश, घ्राणेन्द्रिय की विकलता, मूकता, लूलापन, पंगुता, नपुंसकता, पुरीष-शक्ति का नाश, और बुद्धि की मन्दता से होने वाले ग्यारह बुद्धि-वध, नौ प्रकार के तुष्टिओं के विपर्यय, और आठ प्रकार के सिद्धिओं के विपर्यय); नौ तुष्टिआँ (प्रकृति-तुष्टि, उपादान-तुष्टि, काल-तुष्टि, भाग्य-तुष्टि, पार-तुष्टि, सुपार-तुष्टि, पारापार-तुष्टि, अनुत्तमाम्भ, और उत्तमाम्भ); आठ सिद्धिआँ (ऊह, शब्द, अध्ययन, तीनों प्रकार के दुःखों का विघात, सुहृत्प्राप्ति, और दान)। ६ अष्टधा प्रकृति, आठ धातुएँ, आठ सिद्धिआँ, आठ भाव, आठ देव, और आठ ऐश्वर्य ७ तृष्णा ८ धर्म, अधर्म, और ज्ञान ९ पुण्य-फल और पाप-फल।

सि० अ०—उन्हों ने माया को देखा जिस से पचास तत्त्व निष्पन्न होते हैं—दस इन्द्रियाँ, उनके दस विषय, इन्द्रियों के दस देवता, पाँच प्राण, मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार, इन के चार देवता, इन के चार विषय, और स्वप्न, जाग्रत्, और सुषुप्ति के तीन देवता। माया जब ब्रह्म से अन्वित हुई तब जगत् का कारण बनी। जगत्, माया, और ब्रह्म परस्पर संयुक्त हुए तो इस संयोग को ब्रह्मचक्र कहते हैं, अर्थात् ब्रह्म का चक्र जो घूमता रहता है। माया रथ के चक्र की नेमि है। सृष्टि, स्थिति, और प्रलय के तीन धर्म पहिये के तीन वृतों [टायरों] के समान हैं और परस्पर संयुक्त हैं। पाँच प्राण, मन, और दस इन्द्रियाँ उन पद्रह लकड़ियों के समान हैं जो उस वृत में परस्पर जुड़ी होती हैं। पचास तत्त्व जो शरीर के लिए आवश्यक हैं उन पचास अरों के समान है जो रथ-चक्र की नाभि के चारों ओर लगे होते हैं। साल के बारह महीने और आठ दिशाएँ उन बीस प्रत्यरों के सदृश हैं जिन से जोड़ों को सुदृढ़ करते हैं। इस ब्रह्मचक्र में अड़तालिस तत्त्व हैं, जो हैं—त्वचा, चर्म, माँस, रुधिर, मेद, अस्थि, मज्जा, शुक्र [-धात्वष्टक]; धर्म, ज्ञान, वैराग्य, ऐश्वर्य, अधर्म, अज्ञान, अवैराग्य, अनैश्वर्य [-भावाष्टक]; दया, क्षमा, अनसूया, शौच, मंगल, अनायास, अकृपणता, और अस्पृहा [-गुणाष्टक]; अष्ट सिद्धिआँ जिन्हें अणिमा, महिमा, लघिमा, गरिमा, प्राप्ति, प्राकाम्य, ईशित्व, और वशित्व कहते हैं; पंच महाभूत, महत्तत्त्व, तीनों गुणों की साम्यावस्था, और अहंकार [-प्रकृत्यष्टक]; ब्रह्मा, प्रजापति, सभी देवगण; गन्धर्व, यक्ष, राक्षस, पितृगण, और पिशाच [-देवाष्टक]। एक काम का जाल है जिस में सभी आबद्ध हैं और जिसमें तीन मार्ग हैं—प्रथम ब्रह्म-लोक की प्राप्ति का मार्ग, द्वितीय स्वर्ग-लोक की प्राप्ति का मार्ग, और तृतीय नरक-लोक की प्राप्ति का मार्ग। उस में एक ही निमित्त है, जिस का परिणाम सुख और दुःख है। उन ब्रह्मवादियों ने उस सत्ता को देख लिया था जो जगत् की उत्पत्ति का कारण है। और उन्हों ने इन तत्त्वों को ब्रह्मचक्र में देखा जो उस [सत्ता] का लोक है। [४]

पञ्चस्रोतोऽम्बुं, पञ्चयोन्युग्रवक्रां,
पञ्चप्राणोर्मिं, पञ्चबुद्ध्यादिमूलाम्,
पञ्चावर्तां, पञ्चदुःखौघवेगां,
पञ्चाशद्भेदां, पञ्चपर्वामधीमः ॥ ५ ॥

अनु०—पाँच स्रोतों[1] वाले जल से जो युक्त है, पाँच उद्गमस्थानों[2] के कारण जो उग्र और वक्र है, जिस में पञ्चप्राणरूप तरङ्गें हैं, जो पाँच प्रकार के ज्ञानों आदि का मूल है, जिस में पाँच आवर्त (भँवर)[3] हैं, जो

१ पञ्चज्ञानेन्द्रियाँ २ पञ्चमहाभूत ३ पञ्चेन्द्रिय-विषय।

पाँच प्रकार के दुःखरूपी ओघों के वेग से युक्त है, जो पाँच पर्वों[1] वाली और पचास भेदों वाली[2] [नदी] है उस को हम जानते हैं। (५)

सि० अ०—जैसे जगत् ब्रह्मचक्र है, वैसे ही ब्रह्ममाया एक नदी के समान है। पंच ज्ञानेद्रियाँ उस के पाँच स्रोत हैं जो उस नदी से प्रवाहित हुए हैं। पंचमहाभूत उस के आवर्तों (भँवरों) के समान हैं। पंच प्राण उस की तरंगों के समान हैं। अहंकार जो पंचज्ञानेन्द्रिय-स्वरूप है उस के उद्गम के समान है। पंच स्थूलभूत उस की लहरों के समान हैं। पंच अवस्थाएँ—अर्थात् माता की कुक्षि में निवास; माता की कुक्षि से निःसरण, रुग्णावस्था, जरावस्था, और मृत्यु जो महादुःख हैं उस नदी के ओघवेग के समान हैं। पचास अक्षर, कोई भी बात जिन के बाहर नहीं है और जिन के अतिरिक्त दूसरा अक्षर नहीं है, उन शाखाओं के समान हैं जो नदी से फूटतीं हैं। पाँच प्रकार की अविद्या—अर्थात् तमस्, मोह, महामोह, तामिस्र, और अन्धतामिस्र[3]—उस नदी के पर्वों के समान है। ब्रह्मवादियों ने इस नदी को इसी रूप में वर्णित किया है। [५]

सर्वाजीवे सर्वसंस्थे बृहन्ते
अस्मिन् हंसो भ्राम्यते ब्रह्मचक्रे,
पृथगात्मानं प्रेरितारं च मत्वा;
जुष्टस् ततस् तेनामृतत्वमेति ॥ ६ ॥

अनु०—हंस (जीव) अपने को और नियन्ता [परमात्मा] को पृथक् मानकर सब के जीवनभूत और सब के आश्रयभूत इस महान् ब्रह्मचक्र में भ्रमित रहता है; और जब उस का प्रसाद प्राप्त करता है तब अमृतत्व को प्राप्त हो जाता है। (६)

---

१ पञ्चक्लेश २ शङ्कराचार्य के भाष्य में पचास की व्याख्या नहीं हुई है।

३ दाराशिकोह के शब्द हैं—'पञ्ज क़िस्मे अविद्या कि ग़ुस्सः-ए जुज़्वी, व मिह्नते कुल्ली, व नादानी-ए जुज़्वी, व नादानी-ए कुल्ली बाशद'। ये शब्द नितान्त अवाचक हैं। उस का तात्पर्य विपर्यय के पाँच भेदों से प्रतीत होता है जिन की गणना ईश्वरकृष्ण की सांख्यकारिका (४८) में की गयी है। हम ने तदनुसार ही अर्थ किया है। अविद्या के पाँच भेद योगसूत्र (२.३) में बतलाये गये हैं—अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष, और अभिनिवेश, जो ही सांख्यकारिका में भिन्न शब्दावली में तमस् कहे गये हैं।

दानवन् विप्रचित्तियायतु जरासन्धन्
हिरण्यकशिपुवां दैतेयन् शिशुपालन् । ५
प्रह्लादन्तन्टे तन्पि सह्लादनल्लो शल्यर्
वीरनामनुह्लादन् दैतेयन् धृतकेतु । ६
शिबियामसुरेशन् द्रुमनां नरपति
बाष्कळनाय दैत्यनायतु भगदत्तन् । ७
दानवनयश्शिरा वेगवानयश्शङ्कु
वीरनामश्वशिरा गगनमूर्द्धावेन्तु ८
अञ्चुपेरीरुमिच्चु केकयराज्यत्तिङ्कल्
भूपतिवीरन्माराय् पिऱन्नारेन्नु केळ्प्पू । ९
केतुमानेन्न दैत्यनमितौजस्सां नृपन्
स्वर्भानुवेन्न दैत्यनायतुमुग्रसेनन् १०
अश्वनाकिय दैत्यन् पिऱन्नानशोकना-
यश्वसोदरनश्वपतियामसुरेशन् । ११
हार्द्दिक्यनायिवन्नु पिऱन्नानरिञ्ञालुं
वृषपर्व्वावु दीर्घप्रज्ञनां नरपति । १२
वृषपर्व्वाविन् तन्पियायवन् मल्लनायान्
अश्वग्रीवाख्यन् रोचमाननां नरपति । १३
सूक्ष्मनाकियदैत्यन् सुमतियाय भूपन्
कीर्त्तिमानाय दैत्यन् बृहन्तनेन्न नृपन् १४

दानव विप्रचित्ति ही जरासन्ध हुआ और दैत्य हिरण्यकशिपु हुआ शिशुपाल। प्रह्लाद का छोटा भाई संह्लाद ही शल्य हुआ और वीर दैत्य अनुह्लाद धृतकेतु बना। असुरेश शिबि ही राजा द्रुम हुआ और दैत्य बाष्कल ही भगदत्त बना। ७ दानव अयःशिरा वेगवाला अयःशंकु हुआ, वीर अश्वशिरा गगनमूर्धा बना। ये पाँचों, सुना जाता है, केकयराज्य में भूपतिवीर के रूप में साथ-साथ पैदा हुए। दैत्य केतुभान् राजा अमितौजा हुआ तथा दैत्या स्वर्भानु उग्रसेन बना। दैत्य अश्व अशोक हुआ और अश्व का भाई असुरेश अश्वपति हुआ। जान लीजिए कि दीर्घप्रज्ञ (बुद्धिमान्) राजा वृषपर्वा ने हार्दिक्य के रूप में जन्म लिया। ८-१२ वृषपर्वा का छोटा भाई मल्ल हुआ और अश्वग्रीव राजा रोचमान बना। दैत्य सूक्ष्म राजा सुमति हुआ, दैत्य कीर्तिमान् राजा बृहन्त हुआ और दैत्य तुहुण्ड सेनाबिन्दु बना। असुरेश खसृ ही राजा पापजित्

तुहुण्डनाय दैत्यन्तानल्लो सेनाविन्दु
खसृवामसुरेशन् पापजित्ताय नृपन् १५
एकचक्राख्यासुरनायतु प्रतिविन्ध्यन् ।
वीरनां विरूपाक्षन् चित्रवर्म्मावां नृपन् १६
हरनां हरिहरनायुळ्ळोरसुरेशन् ।
पिऱन्नान् सुबाहुवां भूपतितिलकनाय् । १७
अहरनाय दैत्यन् बाल्हिकनाय नृपन्
निचन्द्रनाय दैत्यन् मुग्धकेशाख्य नृपन् १८
निसुंभमहासुरनायतु देवाधिपन्
शरभमहासुरन् पौरवनाय नृपन् । १९
कापथनाय दैत्यन् भूपति सुपार्श्वन्पोल्
कथनामसुरेशन् पर्व्वतेयाख्यनृपन् । २०
पिन्नेयुं शरभनेन्नुण्टोरु महासुरन्
मन्नवनायानवन् बाह्लिकराज्यत्तिङ्कल् । २१
प्रह्लादनेन्नुतन्ने पेरवनाकुन्नतुं
चन्द्रनामसुरेशनायतुमृचीकन्तान् । २२
मृतवानेन्नुपेरामसुराधिपनल्लो
पश्चिमननूपनेन्नोच्चपूण्टोरु नृपन् । २३
गर्व्विष्ठनाय दैत्यन् द्रुमसेनाख्यनृपन्
दैत्येशनाय मयूरन् वन्नु पिऱन्नितु । २४
धात्रियिल् विश्वनेन्न पार्त्थिवश्रेष्ठनाये ।
दैतेयन् दीर्घजिह्वनायतु काशीनृपन् २५

बना और असुर एकचक्र प्रतिविन्ध्य हुआ। वीर विरूपाक्ष ने राजा चित्रवर्मा का रूप धारण किया और असुरेश हरिहर ही राजा हर हुआ। सुबाहु तो राजा तिलक के रूप में पैदा हुआ। दैत्य अहर राजा बाह्लिक बना और दैत्य निचन्द्र राजा मुग्धकेश हुआ। १३-१८ महासुर निशुंभ देवाधिप बना और महासुर शरभ राजा पौरव हुआ। दैत्य कापथ भूपति सुपार्श्व हुआ, सुना जाता है, और असुरेश कय राजा पर्वतेय बना। शरभ नामक एक महासुर है जो वाह्लिक देश का राजा हुआ। उसका नाम हुआ प्रह्लाद। असुरेश चन्द्र ही ऋचीक बना। सुनते हैं कि असुराधिप मृतवान् ही पश्चिम अनूप नामक राजा बना। १९-२३ दैत्य गर्विष्ठ ही राजा द्रुमसेन हुआ और दैत्येश मयूर ही पृथ्वी में विश्व नामक

राहुवामसुरेशन् क्रथनां नरपति ।
सुवर्ण्णनाय दैत्यन् क्रोधकीर्तियुमायान् २६
दैत्यनां चन्द्रहन्ता शुकनाय नृपन्
दैतेयविनाशनन् जनकनाय नृपन् २७
विष्करनाय दैत्यन् सुमित्रनाय नृपन्
विष्करसहोदरन् पांसुराष्ट्राधिनाथन् २८
वीरनेंन्नतुतन्ने पेरायोरसुरेशन्
पौंड्रमत्स्यकनेंन्न राजावाय् पिरन्नतुम् । २९
वृत्रनामसुरेशन् मणिमानाय नृपन्
क्रोधहन्तावां दैत्यन् दण्डनाकिय नृपन् । ३०
क्रोधवर्द्धनदैत्यन् दण्डधारनुमायान् ।
कालकेयन्माराकुमेंट्टुपेरसुररुं ३१
चाले वन्नवनियिल् पिरन्नार् नृपन्माराय् ।
अन्नरपतिकळ्तन् नामङ्ङळतुं चोंल्लां ३२
जयसेननुमपराजितन् तानुं पिन्ने
निषधाधिपन्तानुं श्रेणिमानेंन्नवनुं ३३
चोंल्लेंळुं महीजनुमभिरूपनुं पिन्ने
सुभद्रसेनन्तानुं बृहन्नामावुमेवं ३४
अंट्टु भूपालन्मारुं कालकेयन्मारल्लो ।
दुष्टरां क्रोधवशगणमामसुरन्मार् ३५
दुष्टभूपतिकळायुद्भविच्चतुमेंल्लाम् ।
नन्दिकन् कर्ण्णवेष्टन् सिद्धाश्वन् क्रीडकनुं ३६

पार्थिवश्रेष्ठ बना। दैत्य दीर्घजिह्व काशिराजा हुआ और असुरेश राहु ने क्रथ राजा का रूप धारण किया। दैत्य सुवर्ण क्रोधकीर्ति हुआ, दैत्य चन्द्रहन्ता राजा शुक हुआ। और दैत्य विनाशन राजा जनक बना, दैत्य विष्कर राजा सुमित्र तथा विष्कर का भाई पांसु राष्ट्र का अधिपति हुआ। वीर नामक असुरेश का पौंड्रमत्स्यक नामक राजा के रूप में जन्म हुआ। असुरेश वृत्र ही राजा मणिमान् और दैत्य क्रोधहन्ता राजा दण्ड के रूप में पैदा हुए।२४-३० दैत्य क्रोधवर्धन राजा दण्डधार बना। ये जो आठ कालकेय असुर हैं वे सब पृथिवी में राजा के रूप में पैदा हुए। उन आठ राजाओं के नाम बतला रहा हूँ—जयसेन, अपराजित, निषधाधिप, श्रेणिमान्, विख्यात महीज, अभिरूप सुभद्रसेन और बृहन्नामा कालकेय, ये आठ राजा हुए। दुष्ट

वीरनां सुवीरनुं शूरनां सुबाहुवुं
धीरनां महावीरन् बाह्लिकन् क्रोधनुतानुं ३७
विचित्रन् सुरथनुं नीलनुं वीरधामा
भूमिपालेन्द्रन् दन्तवक्त्रनुं दुर्ज्जयनुं ३८
रुग्मियां नृपन् जनमेजयनाषाढनुं
वायुवेगनुं भूरितेजस्सुमेकलव्यन् ३९
सुमित्रन् वाजिधानन् गोमुखनिवरेल्लां
कारूशाधिपन्मारां भूपतिवीरन्मार्पोल् । ४०
क्षेमधूर्त्तियुं भुवि चोल्लेरुं श्रुतायुवु-
मुद्धवन् बृहत्सेनन् क्षेमनुमग्रतीर्थन् ४१
कुहकन्मतिमानुं कलिंगराजाक्कन्मार् ।
इवरुं क्रोधवशन्मारांय सुरादिकळ् ४२
देवकनायतोरु गन्धर्व्वश्रेष्ठनल्लो ।
गुरुवां बृहस्पतितन्नुटेयंशमल्लो ४३
गुरुवां द्रोणर् भरद्वाजनन्दननेटो ।
ईशन्टे कामवुमक्कालन्टे कोपवुं कू- ४४
टेशियोन्त्तायिच्चमञ्ञुण्टायानश्वत्थामा ।
वसुक्कळ् गंगतङ्कल् शन्तनुपुत्ररायार् ४५
वसिष्ठशापं कोण्टु वासवनियोगत्ताल् ।
अवरिल्लेल्लारिलुमनुजनल्लो भीष्मर् । ४६

और क्रोध के वशीभूत असुर दुष्ट भूपतियों के रूप में पैदा हुए। नन्दिक, कर्णवेष्ट, सिद्धाश्व, क्रीडक, वीर सुवीर, शूर सुबाहु, धीर महावीर, वाह्लिक, क्रोध, विचित्र, सुरथ, नील, वीरधामा, भूमिपालेन्द्र दन्तवक्र, दुर्जय, राजारुग्मि, जनमेजय, आषाढ, वायुवेग, भूरितेजा, एकलव्य, सुमित्र, वाजिधान, गोमुख, ये सब वीर भूपति हैं और कारूषाधिपति भी हैं। ३१-४० क्षेमधूर्ति, पृथ्वी में विख्यात श्रुतायु, उद्धव, बृहत्सेन, क्षेम, अग्रतीर्थ, कुहक, मतिमान्, ये सब कलिंगदेश के राजा हैं। ये सब क्रोध के वशीभूत देव आदि हैं। एक गन्धर्वश्रेष्ठ ही तो देवक बना। गुरु द्रोणाचार्य जो भरद्वाज के पुत्र थे देवगुरु बृहस्पति के ही अंश थे। ईश (शिव) का काम और काल (यमराज) का कोप मिलकर जब एक हुआ तब अश्वत्थामा का जन्म हुआ। वसिष्ठ के शाप और वासव (इन्द्र) की आज्ञा के कारण ये आठ वसु गंगा में शन्तनु के पुत्र के रूप में पैदा हुए।

रुद्रन्मारुटेयंशमायतु कृपाचार्यन्
त्रिशंकुवेन्न भूपन् पावरनायानल्लो । ४७
चोल्लेळुं मरुत्तुक्कळाय देवकळुटे-
यंशत्तालुण्टायितु सात्यकियेन्न वीरन् । ४८
गणदेवकळुटेयंशसंभूतन्माराय्
द्रुपदन् विराटनुं कृतवर्म्मावुमुळ्ळु । ४९
अरिष्टसुतनाय हंसनां गन्धर्व्वेशन्
वरिष्ठनाय धृतराष्ट्रनेन्नरिञ्ञालुम् । ५०
कलितन्नुटेयंशं दुरियोधननृपन्
पौलस्त्यन्मार्पोल् मट्टे नूट्टुपेरेल्लावरुम् । ५१
धर्म्मराजनुं वन्नु पिऱन्नु विदुरराय्
धर्म्मन्तन्नुटेयंशमायतु युधिष्ठिरन् । ५२
वायुविनुटेयंशं भीमनेन्नरिञ्ञालुम्
देवेन्द्रनुटेयंशं फल्गुनन् महारथन् । ५३
अश्विनी देवकळ्तन्नंशं माद्रेयन्मारु-
मग्नितन्नुटेयंशमायतु धृष्टद्युम्नन् । ५४
आदित्यनुटेयंशं कर्ण्णनेन्नरिञ्ञालुं
सोमनन्दननाय सुवर्च्चस्सभिमन्यु । ५५
विश्वदेवकळुटेयंशं द्रौपदेयन्मार्
स्त्रीपुंसमायिट्टुळ्ळ गुह्यकन् शिखण्डियुम् । ५६

उनमें सबसे कनिष्ठ भीष्म ही थे । ४१-४६ कृपाचार्य तो रुद्रों का अंश था, भूप त्रिशंकु ही जाकर पावर बना, विख्यात देव मरुतों के अंश से ही वीर सात्यकि का जन्म हुआ । द्रुपद, विराट और कृतवर्मा ये ही गणदेवताओं के अंश से पैदा हुए । अरिष्ट का पुत्र, गन्धर्वेश हंस ने ही वरिष्ठ धृतराष्ट्र का रूप धारण किया । राजा दुर्योधन कलि का ही अंश था, शेष सौ पुत्र (धृतराष्ट्र के) सब पौलस्त्य (पुलस्त्यवंशी राक्षस) थे । धर्मराज (यम) विदुर के रूप में पैदा हुए और युधिष्ठिर तो धर्म ही का अंश था । जान लीजिए कि भीम वायु का ही अंश था, और महारथ फल्गुन (अर्जुन) इन्द्र का । ४७-५३ अश्विनीकुमारों के अंश से माद्री के दो पुत्र पैदा हुए और धृष्टद्युम्न तो अग्नि का अंश था । जान लीजिए कि कर्ण सूर्य का अंश था और सुवर्चा (शोभायमान) अभिमन्यु सोम (चन्द्र) का पुत्र था । द्रुपद के पुत्र सब विश्वेदेवों से उत्पन्न हुए और स्त्री और

त्रिदिवलक्ष्मियुटेयंशंपोल् पांचालियुम्
धृतियुं सिद्धियुंपोल् कुन्तियुं माद्रितानुम् । ५७
प्रद्युम्नन् सनल्कुमारांशमेन्ऩतुं चोल्लु-
मनन्तमूर्त्तियुटेयंशं पोल् बलभद्रन् । ५८
विष्णुतन्नुटेयंशं कृष्णनेन्ऩऱिञ्ञालुं
माधवमतमऱिञ्ञंबुजोद्भवन्चोल्लाल् । ५९
वासवनियोगंकोण्टप्सरस्त्रीकळेल्लां
माधवपत्निकळ्पोल् पतिनाऱायिरवुम् । ६०
इत्तरमवरवर् पृथ्वियिल् पिऱन्नतु
विस्तरिच्चुरचेय्यानेत्रयुं पणियत्रे । ६१
इरुनूऱध्यायमां संभवपर्व्वतन्निल्
सुर दानव गन्धर्व्वादिकळुटे जन्मम् । ६२
अंशावतरणमितोन्पतध्यायमुण्टु
वैशम्पायनमुनि चोन्नतेन्ऩऱिञ्ञालुम् । ६३
जनमेजयनृपन्तन्ऩुटे चोद्यमिनि
विरवोटुरचेय्यां केळ्क्केणमेन्ऩाकिलो । ६४
पूरुवां नरपतिवीरनां ययातितन्
पुत्रनेन्ऩल्लो केळ्प्पितेत्रयुं प्रसिद्धनाय् । ६५

पुमान (पुरुष) का मेल जो गुह्यक है वही शिखण्डी बना। कहा जाता है कि पाञ्चाली (द्रौपदी) लक्ष्मी का अंश थी और धृति और सिद्धि ही जाकर कुन्ती और माद्री बनीं। ५४-५७ कहते हैं कि प्रद्युम्न सनत्कुमार का अंश था और बलभद्र को अनन्तमूर्ति (विष्णु) का ही अंश बतलाते हैं। श्रीकृष्ण भी विष्णु के ही अंश हैं, यह अंबुजोद्भव (ब्रह्मा) के वचन से स्पष्ट है जो माधव (विष्णु) का मत जानते थे। इन्द्र की आज्ञा से अप्सराएँ माधव (कृष्ण) की सोलह हज़ार पत्नियाँ हुईं। इस प्रकार उनका जो पृथिवी में भिन्न-भिन्न रूप में जन्म हुआ उसका वर्णन करना बहुत कठिन है। देव, दानव और गन्धर्वों का पृथ्वी पर जन्म संभवपर्व में दो सौ अध्यायों में वर्णित है। उनमें नौ अध्यायों में अंशावतरण का वर्णन है। जान लीजिए कि वैशम्पायन मुनि ने इसी प्रकार कहा है। ५६-६३ अगर सुनना है तो राजा जनमेजय के प्रश्न का उत्तर ढंग से बतलाऊँगी। यह तो प्रसिद्ध है कि नरपतिवीर पूरु ययाति का पुत्र था। उसी परम्परा

अप्परम्परतन्निलुण्टायि दुष्षन्तनु-
मवन्टे मक्कळ् जनमेजयन् भरतनुम् । ६६
अविटेत्तन्नेयोट्टु परप्पिल् पऱयेण-
मवनीश्वरनाय भरतन् कथयेल्लाम् । ६७

पुरुवंशोत्पत्ति

ऍङ्किलो केट्टुकोळ्क पूरुवां नरेन्द्रनु
पङ्कजसममुखियाकिय शतरुचि १
पत्नियाय् वन्नाळवळ्मून्नु मक्कळेप्पेटा-
ळेन्नतिल् मुन्पनल्लो शूरनां प्रवीराख्य- २
नवन्टे पत्नियल्लो शैब्ययेन्नरिञ्ञालुम् ।
अवळ्पेट्टुळ्ळू नल्ल नमस्युवेन्न नृपन् ३
राजीवविलोचनन् सुभ्रुवुमभयदन् ।
इङ्ङने मून्नु मक्कळ् नमस्यु नृपनुण्टा- ४
यवरिलभयदन्तन्नुटे सुतरल्लो
सुन्वानुं वसुनाभन् गर्गनुं रम्यन्तानु- ५
मवरिल् सुन्वानुटे वल्लभ रथन्तरी-
यवळ् पेट्टुण्टाय्वन्नु वीरनां यवीयनुम् । ६

में दुष्षन्त का जन्म हुआ । जनमेजय और भरत उसी की सन्तान थी । यहाँ तो राजा भरत की कथा को कुछ विस्तर से कहना अपेक्षित है । ६४-६७

पुरुवंशोत्पत्ति

अगर सुनने की इच्छा हो तो सुन लीजिए । राजा पूरु की पङ्कज के समान मुखवाली शतरुचि पत्नी हुई । उसने तीन पुत्रों को जन्म दिया । उनमें शूर प्रवीर ज्येष्ठ था और उसकी पत्नी, जान लीजिए, शैब्या थी । उसने अच्छे राजा नमस्यु को जन्म दिया । राजीवलोचन, सुभ्रू और अभयद, इस प्रकार राजा नमस्यु के तीन पुत्र हुए, उनमें अभयद के पुत्र थे सुन्वान् वसुनाभ, गर्ग और रम्य । उनमें सुन्वान् की पत्नी रथन्तरी ने वीर यवीय को जन्म दिया । १-६ भूपति यवीय की पत्नी गन्धर्वी थी जिसने आठ पुत्रों को पैदा किया । वे थे शूर दृढ़धन्वा, वपुष्मान्,

गन्धर्व्वी यवीयनां भूपतितन्टे पत्नी
सन्ततियवळ् पेट्टुमेट्टुपेरुण्टाय्वन्नु । ७
शूरनां दृढ़धन्वा वपुष्मान् रुद्राश्वनुं
पृषदश्वनुं बृहदश्वनुं गयन् मनु- ८
वेन्निवर्कळिल्वेच्चु रुद्राश्वनाय नृप-
नुन्नतस्तनियायोरप्सरस्त्रीये वेट्टान् ९
अवळ् पेट्टुण्टाय्वन्नु नल्लनामृचेपुवुं
कक्षेपु कृपणेपु पिन्नेयस्थण्डिलेपु १०
अञ्चामन् वनेपुवुं पिन्नेयस्थलेपुवुं
तेजोपु रथेपुवुं धर्म्मेपु सन्ततेपु ११
ऒन्निवर् पत्तु पृथ्वीनायकन्मारुण्टायि-
तेन्नतिलृचेपुविन् नन्दननन्तिनारन् १२
त्रस्नुवुं मेघन् प्रतिरथनुं द्रुमन्तानु-
मन्तिनारन्टे पुत्रनिङ्ङने नालुपेरुं १३
त्रस्नुविन्निलिलनेन्नुण्टायानोरु सुतन् ।
पत्नियुमुण्टाय्वन्नु चौल्लेळुं रथन्तरि १४
अवळ्पेट्टञ्चु मक्कळ् दुष्षन्तादिकळल्लो ।
दुष्षन्तन्तन्टे पत्नी लक्षणयेन्न नारि १५
लक्षणपेट्टु जनमेजयनेन्न नृपन्
चौल्कौण्ट विश्वामित्रपुत्रियां शकुन्तळ १६

रुद्राश्व, पृषदश्व, बृहदश्व, गय और मनु। उनमें से राजा रुद्राश्व ने एक सुन्दरी अप्सरा से विवाह किया। उसने निम्नलिखितों को जन्म दिया—ऋचेपु, कक्षेपु, कृपणेपु, स्थण्डिलेपु, वनेपु, स्थलेपु, तेजोपु, रथेपु, धर्मेपु, और सन्ततेपु। इस प्रकार दस राजाओं की उत्पत्ति हुई। उनमें से ऋचेपु का पुत्र था अन्तिनार; त्रस्नु, मेघ, प्रतिरथ और द्रुम, इस प्रकार अन्तिनार के चार पुत्र थे। ७-१३ त्रस्नु का इलिल नामक एक पुत्र हुआ। विख्यात रथन्तरी उसकी पत्नी हुई जिसने दुःषान्त आदि पांच पुत्रों को जन्म दिया। लक्षणा नाम स्त्री दुःषन्त की पत्नी हुई जिसने राजा जनमेजय को जन्म दिया। विख्यात विश्वामित्र की पुत्री शकुन्तला दुःषन्त की ज्येष्ठ कान्ता हुई और उसने श्रेष्ठ राजा भरत को पैदा किया। १४-१७ उसी के द्वारा इस देश का नाम भारत हुआ। इस पृथ्वी में जो प्राज्ञ बुधजन हुए उनको भी खुशी से बतलाऊँगा, सुन लीजिए।

अनेक विचित्र चित्र रथेर उपरि ❋ श्वेत नील नेतेर पताका सारि-सारि
विचित्र धनुक तोले तूण पूर्णबाण ❋ जाठा-जाठिशेल-शूल खाण्डा खरशाण २६०
सैन्येरे साजिते आज्ञा दिलेक तरणी ❋ तखन पड़िल मने सरमा जननी
शीघ्रगति गेल वीर मायेर निकटे ❋ दाण्डाइल प्रणाम करिया करपुटे
तरणी बलेन, माता, निवेदि चरणे ❋ ह'येछे रामेर आज्ञा, जाब आमि रणे
पूर्णब्रह्म नारायणे देखिब नयने ❋ पवित्र हइबे देह राम-दरशने
निरखिब जनकेर चरण कमल ❋ देह अनुमति माता, जाब रणस्थल ६१
संग्रामे जाइबे पुत्र, शुनि ए वचन ❋ सरमा चमकि उठि करिला रोदन
कि कथा कहिलि बापू, प्राण काँपे शुने ❋ जाइते ना दिब नर-वानरेर रणे
लंका छाड़ि तोमा ल'ये जाब स्थानान्तर ❋ थाकुक राजत्व ल'ये राजा लङ्केश्वर
धार्म्मिक तोमार पिता, जाने सर्व्वजन ❋ पाप-संग छाड़ि लय रामेर शरण
तुमि गिया रामेर चरणे कर स्तुति ❋ श्रीराम मनुष्य नाहे, गोलोकेर पति
दुरात्मा राक्षसकुल करिते संहार ❋ दशरथ-गृहे विष्णु राम-अवतार
एकलक्ष पुत्र जार, सओया लक्ष नाति ❋ एकजन ना थाकिबे वंशे दिते बाति
विषम बुझिया तव पिता विभीषण ❋ पलाइया निल गिया रामेर शरण

अनोखा धनुष और बाणों से भरा तूण रथ पर रखा गया; जाठा-जाठी, शेल, शूल, खड्ग, असि आदि भी रथ पर रखे गये ॥ २६० ॥

तब तरणी ने सेना को सुसज्जित होने का आदेश दिया। तभी उसकी अपनी माँ सरमा याद आ गई। शीघ्रगति से वीर अपनी जननी के पास पहुँचा। प्रणाम कर हाथ जोड़ वह खड़ा हो गया। तरणी ने कहा, माता, तुम्हारे चरणों में निवेदन करता हूँ कि राजा का आदेश मिला है और मैं रण में जा रहा हूँ। पूर्णब्रह्म नारायण को अपनी आँखों से देखूँगा। राम के दर्शन से यह शरीर पवित्र हो जायगा। अपने पिता के चरण-कमल भी देख सकूँगा। माँ, मुझको अनुमति दो, मैं रणस्थल में जाऊँगा ॥ ६१ ॥

पुत्र संग्राम पर जायगा, यह सुनकर सरमा चौंक कर रो पड़ी। हाय बेटा, तूने यह क्या सुनाया, मैं तुझको नर-वानर के रण में नहीं जाने दूँगी। लंका छोड़कर तुझको लेकर कहीं और चली जाऊँगी। राजा लंकेश्वर अपना राज्य लेकर रहें। सभी लोग जानते हैं कि तुम्हारे पिता धार्मिक हैं, पाप-संगति त्याग कर उन्होंने राम की शरण ली है। तुम जाकर राम के चरणों में स्तुति करो। श्रीराम मनुष्य नहीं हैं, वे गोलोक के पति हैं। दुष्ट राक्षसकुल का ध्वंस करने के लिए विष्णु ने दशरथ के घर पर राम-अवतार के रूप में जन्म लिया है। जिसके एक लाख पुत्र हों और सवा लाख पोते हों, उनके वंश में एक भी दीपक जलाने को नहीं बचेगा। तुम्हारे पिता विभीषण ने

तुमि त सुबुद्ध बट, अति विचक्षण ❋ ए-सब शुनिया युद्धे जाह कि कारण६२
मायेर वचने शुनि कहिछे तरणी ❋ विष्णु अवतार राम आमि भाल जानि
तथापि करिब युद्ध, भेवेछि निर्यास ❋ मरिले रामेर हाते गोलोके निवास
शुनि याछि सर्व्व-शास्त्रे वेदेर लिखन ❋ तुमि माता, विषाद भाविछ कि कारण
के कारे मारिते पारे, केवा कार रिपु ❋ एक बिष्णु विश्वमय, भिन्न भिन्न बपु
कालेते करिया हय उत्पत्ति प्रलय ❋ मिथ्या केन भाव माता, मरणेर भय
शुनेछि पितार मुखे महा-योगतन्त्र ❋ अनित्य शरीर एइ, मिछे माया जन्त्र
दासेर सन्तान बलि ना मारेन राम ❋ आसिया करिब पुनः श्रीपदे प्रणाम
कालेर विभक्त काल पूर्ण हैले परे ❋ त्रिभुवने कार साध्य, के राखिते पारे६३
महाज्ञानवती सती सरमा सुन्दरी ❋ बसिलेन संवरिया नयनेर वारि
चले वीर प्रणमिया सरमा-जननी ❋ साज साज बलि सबे डाकिछे तरणी
साज साज बलि सैन्ये प'ड़े गेल साड़ा ❋ असंख्य सानाइ बाजे दुइ लक्ष काड़ा
करताल बाँशी काँसी डम्फ कोटि-कोटि ❋ तिनलक्ष दगड़े सघने पड़े काठि
सेतारा चौतारा बाजे मधुर मृदङ्ग ❋ बाजे वीणा सप्तस्वरा भेउरि भोरंग

अटपटा देखा तो भागकर राम की शरण में पहुँच गये। तुम तो बुद्धिमान हो और विचक्षण भी, फिर यह सब जान-बूझ कर भी तुम किस कारण युद्ध में जा रहे हो ॥ ६२ ॥

माँ की बातें सुनकर तरणी कहने लगा, मैं भली-भाँति जानता हूँ कि राम विष्णु-अवतार हैं, फिर भी मैंने निश्चय कर लिया है कि युद्ध करूँगा। सर्व-शास्त्रों में और वेदों में लिखा है कि राम के हाथों मरने पर स्वर्ग में आवास मिलेगा। माँ, तुम किस कारण दुखी हो रही हो। कौन किसको मार सकता है और भला कौन किसका शत्रु है। एक ही विष्णु सारे विश्व-भर में फैले हैं—उनके भिन्न-भिन्न शरीर हैं। समय के बीतने पर प्रलय होता है। हे माता, फिर मृत्यु के भय से तुम नाहक क्यों चिन्ता करती हो। पिता के मुँह मैंने महायोग-तंत्र सुना है कि यह शरीर अनित्य है, माया-यंत्र मात्र है। यदि दास का पुत्र समझ कर राम मेरा वध न करें तो लौटकर तुम्हारे चरणों में फिर प्रणाम करूँगा। नियत समय पूर्ण होने पर त्रिभुवन में किसकी शक्ति है कि किसी को रोक रखे ॥ ६३ ॥

महाज्ञानवती एवं सती सुन्दरी सरमा आँसू रोक कर बैठ गई। वीर तरणीसेन सरमा-जननी के चरणों का नमन कर चल पड़ा। तरणी ने सबको 'सजो-सजो' यह कहकर पुकारा। सारी सेना में सुसज्जित होने के लिए गुहार मच गई। अनगिनत शहनाइयाँ और दो लाख नगाड़े भी बजने लगे। करोड़ों करताल, बाँसुरी, घड़ियाल और डफ भी बजने लगे। तीन लाख धौंसों पर चोट पड़ी। सितार, चौतार और साथ में मृदंग भी मधुर स्वर

शंख बाजे, घन्टा बाजे, बाजे जयढोल ❋ प्रलयेर काले येन उठे गण्डगोल
ढेमचा खेमचा बाजे पाखोज पिनाक ❋ सहस्त्र-सहस्त्र बाजे निशाचर-ढाक
उरमाल ढिकारा बाजे कोटि-कोटिडम्फ ❋ रणशिंगा-शब्द शुनि त्रिभुवने कम्प
साजिल तरणीसेन करिते संग्राम ❋ आनन्दे सकल-अंगे लिखे राम-नाम
असंख्य कटक-ठाट साजिल विस्तर ❋ केह रथे, केह गजे, केह अश्वोपर
केह धरे शेल शूल, केह धनुर्व्वाण ❋ कारो हाते जाठा-जाठि खड्ग खरशान
आकाशेर तारा पारि करिते गणना ❋ ना पारि करिते संख्या तरणीर सेना
लक्ष-लक्ष अश्वगज, लक्ष-लक्ष रथ ❋ ढाकिल गगन-आदि, आच्छादिल पथ
लक्ष-लक्ष राम-नाम गंगा-मृत्तिकाते ❋ लिखिलेक रथे आर ध्वज-पताकाते६४
हाते धनु रथे उठे वीर-अबतार ❋ पश्चिम-द्वारेते चले करि मार मार
गड़ेर बाहिर ह'ये दिलेक घोषणा ❋ रामजय रामजय बाजाओ बाजना
केह बले मार मार, केह बले धर ❋ वानर धाइल ल'ये वृक्ष ओ प्रस्तर
धनुक पातिया युद्धे तरणीर सेना ❋ वानर-कटके येन पड़िछे झञ्झना
राक्षस-वानरे युद्ध हइल महामार ❋ सहिते ना पारे कपि, पलाय अपार६५

में बजने लगे। सप्तस्वरा वीणा, भेउरी और भोरंग भी बजने लगे। शंख-नाद होने लगा, घंटे घनघनाने लगे और जयढोल बजने लगे। ऐसा प्रतीत होने लगा मानों प्रलय के समय का कोलाहल हो रहा हो। पखावज, पिनाक और हजारों निशाचरी डंके भी बजने लगे। करोड़ों डफ और झाँझ बजने लगे। रण-दुंदुभियों के शब्द से त्रिभुवन काँपने लगा। सारे अंगों पर सानन्द राम-नाम लिखकर तरणीसेन संग्राम के लिए सुसज्जित हुआ। असंख्य कटक सुसज्जित हुआ, कोई रथ पर, कोई हाथी पर तो कोई घोड़े पर। किसी ने शेल-शूल लिया तो किसी ने धनुष-बाण। किसी ने जाठा-जाठी ली तो किसी ने धारदार खड्ग। आसमान के तारे भी गिन सकता हूँ लेकिन तरणी की सेना की संख्या नहीं गिन सकता। लाख-लाख अश्व और गज और लाख-लाख रथों ने गगन ढक लिया और पथ को छेंक लिया। उसने गंगा की मृत्तिका से लाख-लाख राम-नाम रथ पर और ध्वज-पताका पर लिख डाला॥ ६४ ॥

हाथ में धनुष लेकर वीरता का अवतार (तरणीसेन) रथ पर सवार हुआ और मार-मार शब्द करता पश्चिमी द्वार पर चल पड़ा। गढ़ से बाहर निकल कर उसने घोषणा की—बाजे पर रामजय-रामजय की धुन बजाओ। कोई कहता मारो-मारो तो कोई कहता पकड़ लो। वानर वृक्ष और पत्थर लेकर पिल पड़े। तरणी की सेना धनुष तान कर लड़ने लगी। वानरों की सेना में मानों आँधी चलने लगी। राक्षसों और वानरों में महारण हुआ। वानर प्रहार को सहने में असमर्थ हो भाग खड़े हुए॥ ६५ ॥

श्रीराम बलेन, शुन मित्र विभीषण * देखि देखि संग्रामे आइल कोन जन
विभीषण बले, शुन राजीव-लोचन * रावणेर अन्नेते पालित एकजन
सम्बन्धेते भ्रातुष्पुत्र, परिचये ज्ञाति * धर्म्मेते धार्मिक पुत्र, बड़ योद्धपति
प्रकारेते दिलेन प्रकृत परिचय * तरणी भाविछे, कोथा राम-दयामय ६६
कटके-कटके युद्ध हइल विस्तर * भंग दिया पलाइल यतेक वानर
चारिदिके नेहारिया देखिछे तरणी * कतक्षणे देखा पाइ राम रघुमणि
कतक्षणे पितार पाइब दरशन * जनम सफल हबे, जुड़ाइबे जीवन
मने भावे, कत पूरे देव-नारायण * चालाइया दिल रथ त्वरित-गमन
रघुनाथ-पाने यदि चालाइल रथ * धेये गिया नीलवीर आगुलिल पथ
नीलवीर बले, बेटा आर जाबि कोथा * एकचड़े राक्षसा, छिंड़िब तोर माथा
जोड़हाते बले, विभीषणेर नन्दन * पथ छाड़, देखि गिया श्रीराम-लक्ष्मण
नील बले, प्राण लब पर्व्वत-चापने * केमने देखिबि बेटा, श्रीराम-लक्ष्मणे
अङ्गे लेखा राम-नाम रथ-चारिपाशे * तरणीर भक्ति देखि कपिगण हांसे
दुष्ट निशाचर-जाति कत माया जाने * हइया धार्म्मिक वक आसियाछे रणे
मकराक्ष एसेछिल, बुद्धि बड़ सरु * युद्ध जिन्ते एसेछिल रथे बेंधे गरु
वृषभेते टाने रथ गो-चर्म्मेते ढाका * वायुबाणे धेनु उड़े, बेटा हैल भेका

श्रीराम ने कहा, मित्र विभीषण, तनिक देखना तो कौन युद्ध करने आ गया। विभीषण ने कहा, हे राजीवलोचन, यह तो रावण के अन्न से पला कोई है। रिश्ते में वह उसका भतीजा लगता है और परिचय से उसके गोत्र का है। धर्म से धार्मिक यह पुत्र काफी बड़ा योद्धा है। संकेत से उन्होंने उसका प्रकृत परिचय दिया। तरणी सोच रहा है, दयामय राम कहाँ हैं ॥ ६६ ॥

दोनों सेनाओं में काफी युद्ध होता रहा। जितने वानर थे सब भाग खड़े हुए। तरणी चारों ओर निहार रहा है कि कब राम रघुमणि का दर्शन मिलता है। कितनी देर में पिता का दर्शन होगा और जन्म सफल और जीवन धन्य होगा। मन ही मन सोचता, देव-नारायण जाने कितनी दूर पर हैं। उसने झटपट रथ को तेज दौड़ाया। उसने रघुनाथ की ओर रथ भगाया तो रास्ता रोककर नीलवीर खड़े हो गये। वीरवर नील ने कहा, अरे राक्षस कहाँ जा रहा है, एक ही चाँटे में तेरा सिर तोड़ दूँगा। विभीषण-नन्दन ने हाथ जोड़ कर कहा, रास्ता छोड़ो, चलकर श्रीराम-लक्ष्मण को देखूँ। नील ने कहा, पहाड़ के नीचे कुचल कर तुझे मार डालूँगा, कैसे तू श्रीराम-लक्ष्मण को देख सकेगा। सारे अंग पर तथा रथ के चारों ओर राम-नाम लिखा है—तरणी की भक्ति देखकर वानर हँसने लगे। दुष्ट निशाचर कितने ही प्रकार के ढोंग जानते हैं। बगुला-भगत बनकर युद्ध करने आया है। मकराक्ष की बड़ी नुकीली बुद्धि थी—वह रथ में बैल जोतकर लड़ने आया था।

गोवत्स गोचर्म्म धेनु बाणे गेल उड़े * चेये देख से-राक्षसार मुण्ड आछे प'ड़े
तुइ बेटा महादुष्ट, ता' ह'ते मायावी * भण्ड तपस्याते तुइ काहारे भुलावि
एत बलि नीलवीर कोपे करि भर * उपाड़िया आने एक दीर्घ तरुवर
बाहुबले हाने वृक्ष तरणीर माथे * हासिया तरणीसेन धरे बामहाते
वृक्ष यदि व्यर्थ गेल, नीलवीर रोषे * आनिल पर्व्वत एक चक्षुर निमिषे
हानिल पर्व्वत-गोटा दिया हुहुङ्कार * तरणीर गदा ठेकि हैल चूरमार
पर्व्वत हइल गुँड़ा गदार प्रहारे * तरणी हानिल बाण नीलेर उपरे
मुखे रक्त उठे, वीर हइल अज्ञान * नीलवीर-भंग देखि रोषे हनूमान ६७
लाफ़ दिया हनूमान तार रथे चड़े * सारथिर हातेर प्रबोध निल केड़े
रुषिया तरणीसेन मारे एक चड़ * रथ हैते पड़ि हनू करे धड़फड़
संवित् पाइया हनू करे महामार * लाफ़ दिया रथे गिया पड़े आर वार
दुइजने महायुद्ध रथेरे उपरे * कोपेते तरणीसेन हनूमाने धरे
आछाड़िया फेले दिल धरणी-उपर * पाछु हैल हनूमान पाइया त डर
हनूमाने विमुख देखिया लागे भय * आतंके वानर केह आगु नाहि हय ६८

गाय के चमड़े से ढका हुआ रथ बैल खींच रहा था। पवन-बाण से जब उसके बैल उड़ गये तो वह हक्का-बक्का रह गया था। बछिया और गाय के चमड़े बाण से हवा में उड़ गये थे। आँखें खोलकर देख ले, उस राक्षस का मुंड यहीं पड़ा है। तू बड़ा दुष्ट और मायावी भी है। इस ढोंग-भरी तपस्या से तू किसको भुलावा दे रहा है। इतना कहकर नीलवीर क्रोधित हो एक लम्बा सा पेड़ उखाड़ कर ले आया, उसने बाँहों की पूरी शक्ति से उस पेड़ को तरणी के सिर पर दे मारा। हँसकर तरणीसेन ने उसको बाएँ हाथ से पकड़ लिया। वृक्ष व्यर्थ गया देखकर नीलवीर रोष से क्षणभर में एक पर्वत ले आया। उसने समूचा पर्वत हुंकार के साथ फेंका, तरणी की गदा से टकराकर वह पर्वत भी चकनाचूर हो गया। जब गदा के प्रहार से पर्वत चूर-चूर हो गया तब तरणी ने नील पर बाण छोड़ा। नीलवीर के मुँह से खून निकल आया और वह बेहोश हो गया। नीलवीर की पराजय देखकर हनुमान को बड़ा क्रोध आया ॥ ६७ ॥

छलांग मार हनुमान उसके रथ पर चढ़ गया और सारथी के हाथ से चाबुक छीन लिया। गुस्से में आकर तरणीसेन ने एक चपत मारा। रथ से गिरकर हनुमान तड़फड़ाने लगा। होश में आकर हनुमान फिर मार-मार कर उठा और फिर कूद कर रथ पर जा चढ़ा। रथ के ऊपर ही दोनों में महायुद्ध छिड़ गया। कुपित होकर तरणीसेन ने हनुमान को पकड़ लिया और जमीन पर उसको पटक दिया। डर कर हनुमान पीछे हट गया। हनुमान को पीछे हटते देख सारे वानर डर गये, आतंक से कोई भी बन्दर आगे नहीं बढ़ा ॥६८॥

महाकोपे पश्चात् करिया हनूमाने ❋ बालिर तनय वीर प्रवेशिल रणे
हानिल पर्व्वत एक तरणी-उपर ❋ देखिया तरणीसेन हइल फाँफर
भयेते तरणी एड़े चोखा-चोखा बाण ❋ बाणे काटि पर्व्वत करिल खान-खान
काटा गेल पर्व्वत, अङ्गदे लागे भय ❋ मुष्ट्याघाते मारिल रथेर चारि हय
सारथि तत्पर बड़, त्वरान्वित ह'ये ❋ पुनः अश्व जुड़ि रथ दिल चालाइये
रुषिल तरणीसेन अङ्गद-उपर ❋ अङ्गदेर बुके मारे लोहार मुद्गर
मुद्गर-आघाते पड़े बालिर नन्दन ❋ महेन्द्र देवेन्द्र आइल करिया गर्ज्जन
आर यत वानर मिलिल एक बारे ❋ वरिषे पर्व्वत-वृक्ष तरणी-उपरे
गिरि येन वृष्टिधारा माथा पाति धरे ❋ तेमनि तरणीसेन संग्राम-भितरे
नाना-शिक्षा जाने वीर परम-सन्धानी ❋ क्षणेके पर्व्वत-वृक्ष काटिल तरणी
आगुनेर शिखा येन तरणीर बाण ❋ लक्ष-लक्ष वानरेर लइल पराण
चड़-लाथि-मुष्ट्याघात वानरेर ताड़ा ❋ लक्ष-लक्ष राक्षसेर माथा करे गुँड़ा
बानरे राक्षस मारे, राक्षसे वानर ❋ हस्ती अश्व रथ रथी पड़िल विस्तर
स्थाने-स्थाने पर्व्वत-प्रमाण गादि-गादि ❋ संग्रामेर स्थलेते बहिल रक्ते नदी
वानरेर घोरनाद, गजेर गर्ज्जन ❋ रथेर घर्घर-शब्द, शुनिते भीषण

भीषण क्रोध से हनुमान को पीछे कर बाली का वीर बेटा रण में आ गया। तरणी पर उसने एक पर्वत फेंका। यह देख कर तरणीसेन घबड़ा गया। घबड़ा कर उसने तीखे-तीखे बाण चलाये और बाणों से उसने पर्वत को खंड-खंड कर डाला। पर्वत खंड-खंड हो गया, देखकर अंगद को डर लगा। उसने मुक्का मार कर रथ के चारों घोड़ों को मार डाला। सारथी बड़ा ही चुस्त था, उसने तुरन्त घोड़े जोतकर रथ चला दिया। तरणीसेन अंगद पर गुस्सा गया और अंगद के सीने पर उसने लोहे का मुद्गर दे मारा। मुद्गर के प्रहार से बाली का बेटा गिर पड़ा तो महेन्द्र और देवेन्द्र गरजते हुए आ पहुँचे। और भी सारे बन्दर एक साथ इकट्ठे हो गये और तरणी पर पेड़-पत्थर की वर्षा करने लगे। जिस प्रकार पर्वत अपने सिर पर वर्षा की झड़ी को सहता है उसी प्रकार तरणीसेन संग्राम में खड़ा रहा। परम-कुशल वीर तरणीसेन विभिन्न विद्याओं में निष्णात था, उसने क्षण भर में सारे पेड़-पर्वतों को काट-काट कर गिरा दिया। तरणी के बाण मानों आग की शिखा हों, उन्होंने लाखों बानरों के प्राण ले लिये। वानर चाँटा, घूँसा और लात से हमला करते और लाखों राक्षसों के सिर चूर-चूर करते। वानर राक्षसों को मारते और राक्षस वानरों को। पर्याप्त संख्या में हाथी, घोड़े, रथ और रथी ढेर हो गये। स्थान-स्थान पर पर्वत के समान ढेर जमा हो गया। रण-भूमि में खून की नदी बह निकली। वानरों का घोरनाद, हाथियों का चिंघाड़ना, रथों का घरघराना—यह सब अत्यन्त घोर शब्द उत्पन्न

जाठा-जाठि-गदा-शेल-शब्द ठन ठन ❋ केह वा पलाये जाय लइया जीवन
कारो गेल हस्त-पद, कारो चक्षु-कर्ण ❋ मुषल-आघाते केह हइल विवर्ण
तुलना नाहिक दिते, युद्ध हैल बड़ ❋ चारि-द्वारेर वानर पश्चिम-द्वारे जड़ ६९
सहिते ना पारे केह तरणीर बाण ❋ रुषिया सुषेण बुड़ा हैल आगुयान
सुषेणेर प्रतापे राक्षसगण काँपे ❋ तरणीर रथे गिया पड़े एकलाफे
तरणीर हातेर धनुक निल केड़े ❋ विदारिल सर्व्व-अंग आँचड़-कामड़े
तरणीर अंगे तबे रक्तधारा बय ❋ पदाघाते मारिल रथेर चारि हय
सारथिर मुण्ड छिड़ि करे वीर-दाप ❋ आपन कटके पड़े दिया एकलाफ
तरणीर दशा देखि कपिगण हासे ❋ आनिल सारथि हय चक्षुर निमिषे
करिछे तरणीसेन बाण-अवतार ❋ सम्मुख-संग्रामे रहे, हेन साध्यकार ७०
बड़-बड़ वानर पलाये गेल दूरे ❋ चोखा-चोखा बाण बिन्धे सुग्रीव-वानरे
बाणाघाते सुग्रीव-भूपति कोपे ज्वले ❋ गर्ज्जिया पर्व्वत वीर हाने बाहुबले
तरणी मारिल गदा क्रोधे कम्पमान ❋ प्रहारे पर्व्वत गेल ह'ये शतखान
हानिल दुर्ज्जय जाठा सुग्रीवेर बुके ❋ पड़िल सुग्रीव-राजा, रक्त उठे मुखे

करने लगा। गदा, शेल, शूल जैसे अस्त्रों के टकराव से ठन्-ठन् का शब्द होने लगा। किसी के हाथ-पैर कट गये तो किसी के आँख और कान। मूसल के प्रहार से किसी का अंग उड़ गया। यह युद्ध बड़ा भयंकर हुआ, इसकी तुलना नहीं की जा सकती। चारों द्वारों के वानर पश्चिमद्वार पर इकट्ठे हो गये॥ ६९॥

तरणी के बाणों को कोई भी सह नहीं सका। बूढ़ा सुषेण बिगड़कर आगे बढ़ आया। सुषेण के प्रताप से राक्षस काँपने लगे। वह एक छलांग में तरणी के रथ पर जा चढ़ा। उसने तरणी के हाथों का धनुष छीन लिया और सभी अंगों को नाखून और दाँतों से नोच-खसोट डाला। तरणी के शरीर से रक्त की धारा बह निकली। लात मारकर उसने रथ के चारों घोड़ों को मार डाला और सारथी का मुंड भी नोच डाला। फिर एक छलांग में अपनी सेना के बीच आ गया। तरणी की दुर्दशा देखकर वानर हँसने लगे। तरणी ने तुरन्त घोड़े और सारथी मंगवाये। फिर बाणों की वर्षा करने लगा। सम्मुख संग्राम में उसके सामने टिके रहा ऐसी शक्ति किसमें है॥ ७०॥

बड़े-बड़े वानर दूर भाग गये। तीखे-तीखे बाण आकर सुग्रीव को लगने लगे। बाणों की चोट से सुग्रीव-राजा क्रोध से जलने लगे। वीर ने गरज कर एक पर्वत फेंका। तरणी ने क्रोध से काँपते हुए उसपर गदा की चोट की जिससे पहाड़ के सैकड़ों टुकड़े हो गये। सुग्रीव के सीने पर उसने घनघोर जाठा फेंककर मारा—सुग्रीव राजा गिर पड़े और उनके मुख से खून निकलने लगा। राजा सुग्रीव ज्योंहीं युद्धस्थल पर गिरे तो दुम उठाकर

संग्रामे पड़िल यदि सुग्रीव-राजन * उपलेज करिया पलाय कपिगण
पलाय वानरगण, फिरिया ना चाय * धर धर बलिया राक्षस पिछे धाय
प्राणभये पलाइल बड़-बड़ वीर * तरणीसेनेर बाणे केह नहे स्थिर
महेन्द्र देवेन्द्र पलाय द्विविद कुमुद * रहिलेन हनूमान सुषेण अङ्गद
सुग्रीवेर चैतन्य कराय तिनजन * चालाइल रथ विभीषणेर नन्दन २७१
हाते धनु दाण्डाइया श्रीराम-लक्ष्मण * दक्षिणेते जाम्बवान, बामे विभीषण
सम्मुखेते उपनीत तरणीर रथ * रथ हैते नामिल थाकिते कत पथ
सङ्केते प्रणाम करे पितार चरणे * करपुटे प्रणमिल श्रीराम-लक्ष्मणे
विभीषण बले, राम, देखह सत्वर * तोमा-दोंहे प्रणाम करये निशाचर
श्रीराम बलेन, शुन मित्र विभीषण * आसियाछे निशाचर करिबारे रण
विपक्षेर पक्ष ह'ये आसियाछे रणे * आमा-दोंहे प्रणाम करिबे कि कारणे
विभीषण बले, प्रभु, ना जान कारण * लङ्कापुरे ओ तोमार भक्त एकजन
तोमार चरण-बिना अन्य नाहि जाने * आसियाछे संग्रामेते राजार शासने
राम बले, भक्त यदि जानह निश्चय * आशीर्व्वाद करि, येन वाञ्छा पूर्ण हय
लक्ष्मण बलेन, कि कहिले महाशय * राक्षसेर अभिलाष रावणेर जय

सारे वानर भागने लग गये। वानर भागने लगे तो पीछे पलटकर भी नहीं देखा। पकड़ो-पकड़ो, कह कर राक्षस उनके पीछे पड़ गये। बड़े-बड़े वीर प्राणों के भय से भागे। तरणीसेन के बाणों से कोई भी स्थिर नहीं रह सका। महेन्द्र, देवेन्द्र, द्विविद और कुमुद भागने लगे। हनुमान, सुषेण और अंगद रह गये। तीनों मिलकर सुग्रीव को होश में करने लग गये। विभीषण-नन्दन ने रथ चला दिया॥ २७१ ॥

हाथ में धनुष लिये श्रीराम-लक्ष्मण खड़े हैं। उनके दक्षिण में जाम्बवान खड़ा है तो बाएँ विभीषण। सामने तरणी का रथ जा पहुँचा। कुछ रास्ता शेष रहते वह रथ से उतर पड़ा। पिता के चरणों पर उसने संकेत से प्रणाम किया। हाथ जोड़कर उसने श्रीराम-लक्ष्मण को प्रणाम किया। विभीषण ने कहा, हे राम, शीघ्र देखो तुम दोनों को निशाचर प्रणाम कर रहा है। श्रीराम ने कहा, मित्र विभीषण सुनो, यह निशाचर विपक्ष की ओर से युद्ध करने रणभूमि में आया है, वह किस कारण हम दोनों को प्रणाम करेगा? विभीषण बोले, प्रभु आप इसका कारण नहीं जानते। लंका नगरी में यह आपका एक भक्त है। आपके चरणों के अतिरिक्त यह और कुछ भी नहीं जानता है। राजा के आदेश से यह युद्ध करने आया है। राम ने कहा, अगर निश्चित रूप से जानते हो कि यह मेरा भक्त है तो आशीर्वाद करता हूँ कि इसकी मनोकामना पूर्ण हो। लक्ष्मण ने कहा, हाय, यह आपने क्या किया। राक्षस की अभिलाषा है रावण की विजय। श्रीराम ने कहा, तुम नहीं जानते लक्ष्मण, भक्त कभी भौतिक इच्छाएँ नहीं करता॥ २७२ ॥

कभी बाग़ियों की उन तक रसाई[1] न हो सके। लन्दन में उनकी जानिब से जो मुक़द्दमा पेश था, वह इस बिना पर मुल्तवी[2] कर दिया गया कि जिस मुल्क पर यह दावा है वह अब हमारे क़ब्ज़े ही में नहीं। जब उस पर फिर दौलतेबर्तानिया का क़ब्ज़ा हो लेगा, तब देखा जायेगा।

बादशाह इस हिरासत ही में थे कि लखनऊ का ग़दर फ़रूँ[3] हो गया और मसीहउद्दीन ख़ाँ ने, जो लन्दन में बादशाह के मुख़्तारेआम थे, फिर अपना दावा पेश किया। उन्हें बदिअुन्नज़र[4] में कामियाबी और इस्तिर्दादेसल्तनत[5] की पूरी उम्मीद थी। मगर बदक़िस्मती से उन लोगों में, जो क़िले में बादशाह के मुशीर और मुसाहिब थे, ख़्वाह किसी बैरूनी तहरीक से, या ख़ुद अपने नफ़े के ख़याल से, एक साज़िश हुई। इन लोगों ने ख़याल किया कि अगर मसीहउद्दीन ख़ाँ मुक़द्दमा जीत गए तो हमारा बाज़ार सर्द पड़ जायेगा और वही वह रह जायेंगे; लिहाज़: सबने बादशाह को समझाना शुरू किया कि "जहाँपनाह! भला किसी ने मुल्क लेके दिया है? मसीहउद्दीन ख़ाँ ने हुज़ूर को धोके में डाल रखा है। होना होआना कुछ नहीं है और जहाँपनाह मुफ़्त में तकलीफ़ उठा रहे हैं। डेढ़ दो साल से तनख़्वाह नहीं ली है, हर बात की तंगी है और हम मुलाज़िमानेदौलत भी पैसे-पैसे को मुहताज हैं। मुनासिब यह है कि हुज़ूर गवर्मेन्ट अंग्रेज़ी की तजवीज़ों को क़ुबूल कर लें और तनख़्वाह वसूल करके, इत्मीनान व फ़ारिग़ुलबाली से अपने महल्लाते आलियात और आस्ताँ बोस्ताँने दौलत के साथ बसर फ़रमाएँ"।

बादशाह को ख़र्च की तंगी थी और बादशाह से ज़ियाद: उनके रुफ़क़ा[6] परेशान थे। मुसाहिबों ने जब बार-बार तजवीज़[7] पेश की तो बिला तकल्लुफ़ हुज़ूर वायसराय की ख़िदमत में लिख भेजा "मुझे सरकार अंग्रेज़ी के मुजव्वज़:[8] माहवार लेना मंज़ूर है, लिहाज़: मेरी इस वक़्त तक की तनख़्वाह दी जाये और मुक़द्दमा जो लन्दन में दायर है ख़ारिज किया जाये"। जवाब मिला "अब आपकी अव्वल तो गुज़श्तः अय्याम की माहवार न दी जाएगी, सिर्फ़ इसी वक़्त से यह माहवार जारी होगी। दूसरे फ़क़त बारह लाख रुपये सालाना दिए जायेंगे और जो तीन लाख रुपये सालाना आपके मुलाज़िमीन के लिए तजवीज़ किए गये थे अब उनके देने की ज़रूरत नहीं समझी जाती"।

बज़न्नेग़ालिब[9] बादशाह इस नुक़्सान को गवारा न करते मगर मुसाहिबों ने इस पर भी राज़ी कर दिया और गवर्मेन्ट आफ़ इन्डिया ने इंग्लिस्तान में इत्तिला दी कि वाजिदअली शाह ने गवर्मेन्ट की तजवीज़ को मंज़ूर कर लिया, लिहाज़: उनका मुक़द्दमा ख़ारिज किया जाये। यह वाक़ियात मैंने ख़ुद अपने नाना मुन्शी क़मरुद्दीन साहब की ज़बान से सुने हैं जो जनाबे आलिय: के हमराही, दफ़्तर के मीर मुन्शी और मौलवी मसीहउद्दीन ख़ाँ के नायबेख़ास थे और कुल कार्रवाइयाँ उन्हीं के हाथ से अमल में

---

१ पहुँच, पैठ २ स्थगित ३ समाप्त ४ ज़ाहिर ५ सल्तनत की वापसी
६ साथी ७ प्रस्ताव ८ तय किया हुआ ९ सच तो यह समझा जाय।

आयी थीं। बादशाह के माहवार पर राज़ी हो जाने की ख़बर जैसे ही लन्दन में पहुँची, मसीहउद्दीन ख़ाँ के हवास जाते रहे। बादशाह की माँ, उनके भाई और वलीअहद ने सर पीट लिया और हैरान थे कि यह क्या ग़ज़ब हो गया। अफ़सोस इस वक़्त तक का सब किया धरा ख़ाक में मिल जाता है। आख़िर मसीहउद्दीन ख़ाँ ने सोचते-सोचते एक बात पैदा की और पार्लीमेन्ट में यह क़ानूनी उज्र पेश किया कि "बादशाह फ़िलहाल गवर्मेन्ट आफ़ इन्डिया की हिरासत में है और ऐसी हालत में उनकी कोई तहरीर पाय-ए-एतिबार को नहीं पहुँच सकती"।

उज्र माक़ूल था तस्लीम[१] किया गया और गवर्मेन्ट आफ़ इन्डिया को बादशाह के मुख़्तार की उज्रदारी से मुत्तिला किया गया। साथ में मसीहउद्दीन ख़ाँ और तमाम अर्कानेख़ानदानेशाही ने बादशाह को लिखा कि "यह आप क्या ग़ज़ब कर रहे हैं, हमें मुल्केअवध के वापस मिलने की पूरी उम्मीद है" अब ग़दर फ़ुरू[२] हो चुका था, गवर्मेन्ट ने बादशाह को छोड़ दिया और वह ख़ुशी-ख़ुशी क़िले से निकलकर मटिया बुर्ज में आये और आज़ादी हासिल हुई ही थी कि मुसाहिबों ने अर्ज़ किया "हुज़ूर मसीहउद्दीन ख़ाँ लन्दन में कह रहे हैं कि जहाँपनाह ने तन्ख़्वाह लेने को सिर्फ़ क़ैद होने की वजह से मंज़ूर कर लिया है"। यह सुनते ही बादशाह ने बरअफ़रोख़्तः[३] होके उसी वक़्त लिख भेजा कि "हमने आज़ादी बरज़ा व रग़बत गवर्मेन्ट की तजवीज़ को मंज़ूर किया है और मसीहउद्दीन ख़ाँ का यह कहना बिल्कुल ग़लत है कि हमने क़ैद में होने या किसी जब्र व कराह की वजह से मंज़ूरी दी है। लिहाज़ः हम आइन्दा के लिए इस मुख़्तारनामे ही को मंसूख़ किये देते हैं जिसकी रू से वह हमारे मुख़्तारेआम बनाये गये हैं।

अब क्या था सारी कार्रवाई ख़त्म हो गई। बादशाह मटिया बुर्ज में रंगरेलियाँ मनाने लगे, मुसाहिबों के घरों में हुन बरसने लगा और शाही ख़ानदान का शिकस्ताहाल क़ाफ़ला जो इंगलिस्तान में पड़ा हुआ था, क़रीब-क़रीब वहीं तबाह हो गया। अक्सर हमराहियों ने साथ छोड़ दिया। बादशाह की माँ जनाबे आलिया इस सदमे से बीमार हो गयीं और उसी बीमारी में चलीं कि मुल्क फ़्राँस से होती हुई मक़ामातेमुतबर्रकः में जायें और उनकी ज़ियारत से शर्फ़याब होके कलकत्ते पहुँचे, मगर मौत ने पैरिस से आगे क़दम न बढ़ाने दिया, वहीं इन्तिक़ाल किया और उस्मानी सिफ़ारत ख़ानए-फ़्राँस की मस्जिद के मुत्तसिल[४] मुसलमानों का एक क़ब्रुस्तान है, उसी में दफ़्न हुईं। मिर्ज़ा सिकन्दर हश्मत को माँ के मरने का इस क़दर सदमः हुआ कि माँ के मरते ही ख़ुद बीमार पड़ गये और माँ के चौदह पन्द्रह रोज़ बाद वह भी माँ के बराबर यौमेजज़ा[५] का इन्तिज़ार करने के लिए लिटा दिये गए। अकेले मिर्ज़ा वलीअहद बहादुर कलकत्ते वापस आके माँ-बाप से मिले।

---

१ स्वीकार २ समाप्त ३ क्रोधित ४ मिला हुआ ५ निर्णय के दिन।

कहते हैं कि इब्तिदाअन मटिया बुर्ज में भी बादशाह की ज़िन्दगी, निहायत ही बेदारमग़ज़ी और होशियारी की थी। यह हालत देखकर गर्दोपेश के लोगों ने चन्द आलातेमौसीक़ी[1] फ़राहम कर दिये। फ़ौरन सुरुद बमस्तान याद दहानीदन का पूरा-पूरा मज़मून सादिक़ आ गया और अरबाबेनिशात[2] का गिरोह वहाँ भी जमा होने लगा। हिन्दोस्तान के अच्छे-अच्छे गवय्ये आकर मुलाज़िम हुये और मटिया बुर्ज में मौसीक़ीदानों का ऐसा मजमअ़ हो गया था कि किसी और जगह न था।

ख़ूबसूरत औरतों के जमा करने और हुस्न व इश्क़ के करश्मों में फँसे रहने का वहाँ भी वैसा ही शौक़ था जैसा कि लखनऊ में सुना जाता है। मगर मटिया बुर्ज में इस शौक़ में मज़हबी एहतियात का पूरा लिहाज़ रहता। बाहशाह शीआ़ थे और शीओं में मुताअ़ बग़ैर किसी तहदीद[3] और रोक के जायज़ है। इस मज़हबी आज़ादी से फ़ायद: उठा के, बादशाह जी भर के अपना शौक़ पूरा कर लेते। और क़ायद: था कि ग़ैर-ममतूअ़:[4] औरत की सूरत तक देखना गवारह न करते। यह एहतियात इस हद तक बढ़ी हुई थी कि एक जवान भिश्तन जो बादशाह के सामने ज़नाने में पानी लाती उससे भी मुताअ़ करके, उसे नव्वाब आबेरसाँ का ख़िताब दे दिया। एक जवान ख़ाक रोबन जिसकी हुज़ूरी में आमद व रफ़्त रहती वह भी ममतूआ़त में दाख़िल होके नव्वाब मुसफ़्फ़ा बेगम के ख़िताब से सर्फ़राज़ हुई। इसी तरह मौसीक़ी का शौक़ भी ममतूआ़त ही तक महदूद रहता। शायद शाज़ोनादर ही इसका इत्तिफ़ाक़ हुआ होगा कि बादशाह ने कभी किसी बाज़ारी तवायफ़ का मुजरा देखा हो। ख़ुद ममतूआ़त की मुख़तलिफ़ पार्टियाँ बना दी गयीं थीं जिनको मुख़तलिफ़ तर्ज़ पर रक़्स व सुरूद[5] की तालीमें दी जातीं। एक राधा मंज़िल वालियाँ, एक झूमर वालियाँ, एक लटकन वालियाँ, एक सारधामंज़िल वालियाँ, एक नथ वालियाँ, एक घूँघट वालियाँ, एक रहस वालियाँ, एक नक़्ल वालियाँ, और इसी तरह के बीसियों गिरोह थे जिनको रक़्स व सुरूद की आला तालीम दी गयी थी और उन्हीं के नाच गाने से उनका दिल बहलता। जिन सबसे मुताअ़ हो गया था, बेगमें कहलाती थीं और दो एक गिरोहों में अगर चन्द कमसिन लड़कियाँ ग़ैरममतूअ़: थीं तो इसलिए थीं कि बाद बुलूग़ दाख़िलेममतूआ़त कर ली जायेंगी। इनमें से अक्सर ख़ुद बादशाह के क़रीब ख़ास सुल्तानख़ाने में रहतीं और बाज़ को दूसरी कोठियों में जुदा महलसरायें मिली थीं। इन ममतूआ़त में से जो साहिबेऔलाद हो जातीं उनको महल का ख़िताब दिया जाता। रहने को जुदागान: महलसरा मिलती और उनकी तनख़्वाह व इज़्ज़त बढ़ जाती।

इससे साफ़ ज़ाहिर है कि मौसीक़ी[6] के सिवा और तमाम हैसियतों से बादशाह बड़े मुत्तक़ी व परहेज़गार और पाबन्देशरअ़ थे। नमाज़ कभी क़ज़ा न होती थी।

---

१ संगीत के यन्त्र २ ऐश परस्ती ३ झिझक ४ मुताअ़ न की हुई ५ एक प्रकार का बाजा ६ संगीत।

तीसो रोज़े रखते थे। अफ़यून, शराब, फ़लकसैर या किसी क़िस्म के नशे से ज़िन्दगी भर एहतिराज़ रहा। और मुहर्रम की अज़ादारी निहायत ही ख़ुलूसेअक़ीदत से बजा लाते थे।

तीसरा शौक़ इन्हें इमारत का था। सुल्तानख़ाने के गिर्द बीसियों महलसरायें तामीर हो गयीं। और बहुत सी नई कोठियाँ और उनमें महलसरायें बनीं। गवर्मेन्ट से सिर्फ़ सुल्तानख़ान: असद मंज़िल और मुरस्सअ़ मंज़िल मिली थीं। मगर बादशाह के शौक़ ने चन्द ही रोज़ में बीसियों कोठियाँ तामीर करा दीं। जिनके गिर्द निहायत ही पुरफ़िज़ा बाग़ और फ़रहतबख़्श चमन थे। जिस वक़्त मैंने देखा है, बादशाह के क़ब्ज़े में मुन्दर्जएज़ैल आलीशान कोठियाँ थीं जो जुनूब से शिमाल तक तर्तीबवार चली गयीं थीं। सुल्तानख़ान:, क़सरुलबैज़ा गोशए सुल्तानी, शहनशाहमंज़िल, मुरस्सअ़ मंज़िल, असद मंज़िल, शाह मंज़िल, नूरमंज़िल, हद्देसुल्तानी सद्देसुल्तानी, अदालत मंज़िल। इनके अलावा और भी कई कोठियाँ थीं, जिनके नाम मुझे याद नहीं रहे।

इनके मासिवा बाग़ों के अन्दर तालाबों के किनारे बहुत से कमरे, बँगले और छोटी-छोटी कोशिकें थीं। इन तमाम कोठियों, मुतफ़र्रिक़ कमरों, बँगलों और कोशिकों में साफ़-सुथरा पुर्तकल्लुफ़ फ़र्श बिछा रहता। चाँदी के पलंग, बिछौनों और तकियों से मुकम्मल रहते। तस्वीरें और तरह-तरह का फ़र्नीचर आरास्त: होता। और महज़ परवरिश के ख़्याल से, ज़रूरत से जियादह मकानदार मुक़र्रर थे जो रोज़ झाड़ते और हर चीज़ को सफ़ाई और क़रीने से आरास्त: रखते। ग़रज़ हर कोठी बजायख़ुद इस क़दर आरास्त: व पैरास्त: नजर आती कि इन्सान अ़श्-अ़श् कर जाता। कोठियों के गिर्द के बाग़ और चमन ऐसी हिंदसी तर्तीबों और उक़लैदिस[१] की शक्लों के मुताबिक बनाये गये थे कि देखनेवालों को बादशाह की मुनासिबतें तबअ़ी पर तअ़ज्जुब होता।

लखनऊ में तो बादशाह ने सिर्फ़ क़ैसरबाग़ और उसके पास की चन्द इमारतें या अपने वालिद मर्हूम का इमामबाड़ा और मक़बर: ही तामीर किया था। मगर मटिया बुर्ज में नफ़ीस और आला इमारतों का एक ख़ूबसूरत शहर बसा दिया था। दरिया के उस पार, मटिया बुर्ज के ऐन मुक़ाबिल कलकत्ते का मशहूर बाटेनिकल गार्डेन है, मगर वह मटिया बुर्ज की दुनयवी जन्नत और उसके दिलकश अजायबात के सामने मिट गया था। इन इमारतों, चमनों, कुंजों और वसीअ़ व नुज़हतबख़्श मुर्ग़ज़ारों के गिर्द, बलन्द दीवारों का अहाता[२] था। मगर म्यूनिस्पलटी की शाहराहेआ़म के किनारे-किनारे तक़रीबन एक मील तक शानदार दुकानें थीं और उनमें वही अदना दर्जे के मुलाज़िमीन रहने पाते थे जिनको अपने फ़रायज़ के लिहाज़ से वहाँ रहने की ज़रूरत थी। मगर अन्दर जाने का रास्ता सिवा फाटकों के, जिनपर पहरा रहता,

१ वृत्ताकार, ज्यामिट्री जैसी २ परकोटा।

किसी दुकान में से नहीं रखा गया था। ख़ास सुल्तानख़ाने के फाटक पर निहायत आलीशान नौबतख़ानः था। नक़्क़ारची नौबत बजाते और पुराने पहरों और घड़ियों ही के हिसाब से शबोरोज़ घड़ियाल बजा करता।

दुनिया में इमारत के शौक़ीन हज़ारों बादशाह गुज़रे हैं, मगर ग़ालिबन अपनी ज़ात से किसी ताजदार ने इतनी इमारतें और इतने बाग़ न बनवाये होंगे जितने कि वाजिदअली शाह ने अपनी नाकाम ज़िन्दगी और बरायेनाम शाही के मुख़्तसर ज़माने में बनाये। शाहजहाँ के बाद इस बारएख़ास में अगर किसी का नाम लिया जा सकता है तो वह इसी सितमज़दः शाहेअवध का नाम है। यह और बात है कि कोई ख़ास इमारत सैकड़ों हज़ारों साल तक बाक़ी रही और किसी की सदहा इमारतें ज़माने ने चन्द ही रोज़ में मिटाकर रख दीं।

इमारत के अलावा बादशाह को जानवरों का शौक़ था और इस शौक़ को भी उन्होंने इस दर्जे तक पहुँचा दिया कि दुनिया इसकी नज़ीर पेश करने से आ़जिज़ है। और शायद कोई शख़्सी कोशिश आज तक इसके निस्फ़ दर्जे को भी न पहुँच सकी होगी।

नूरमंज़िल के सामने ख़ुशनुमा आहिनी कटहरे से घेर के एक वसीअ् रमना बनाया गया था जिसमें सद्हा चीतल, हिरन और वहशी चौपाये छूटे फिरते थे। इसी के दर्मियान संगेमरमर का एक पुख़्ता तालाब था जो हर वक़्त मुलब्बब[1] रहता और उसमें शुतुर्मुर्ग़, किशवरी, फ़ीलमुर्ग़, सारस, क़ाज़ें, बगले, क़ुरक़ुरें, हंस, मोर, चकोर और सद्हा क़िस्म के तुयूर[2] और कछुए छोड़ दिये गये थे। सफ़ाई का इस क़दर एहतिमाम था कि मजाल क्या कि जो कहीं बीट या किसी जानवर का पर भी नज़र आ जाये। एक तरफ़ तालाब के किनारे कटहरों में शेर थे और उस रमने के पास ही से लकड़ी के सलाख़ोंदार बड़े-बड़े ख़ानों का एक सिलसिलः शुरू हो गया था, जिसमें बीसियों तरह के और ख़ुदा जाने कहाँ-कहाँ के बन्दर लाके जमा किये गये थे जो अजीब-अजीब हरकतें करते और इन्सान को बग़ैर अपना तमाशा दिखाये आगे न बढ़ने देते।

मुख़्तलिफ़ जगह हौज़ों में मछलियाँ पाली गयी थीं जो इशारे पर जमा हो जातीं और कोई खाने की चीज़ डालिये तो अपनी उछल-कूद से ख़ूब बहार दिखातीं। सब पर तुर्रः यह कि शहनशाह मंज़िल के सामने एक बड़ा सा लम्बा और गहरा हौज़ क़ायम करके और उसके किनारों को चारों तरफ़ से ख़ूब चिकना करके और आगे की तरफ़ झुका के, उसके बीच में एक मस्नवी[3] पहाड़ बनाया गया था जिसके अन्दर सैकड़ों नालियाँ दौड़ाई गयीं थीं और ऊपर से दो एक जगह काट के, पानी का चश्मा भी बहा दिया गया था। इस पहाड़ में हज़ारों बड़े-बड़े दो-दो, तीन-तीन गज़ के लम्बे साँप छोड़ दिये गये थे जो बराबर दौड़ते और रेंगते फिरते। पहाड़ की चोटी

---

१ ऊपर तक भरा हुआ २ पक्षी ३ बनावटी।

तक चढ़ जाते और फिर नीचे उतर आते। मेढकें छोड़ी जातीं उन्हें दौड़-दौड़ के पकड़ते। पहाड़ के गिर्दागिर्द नहर की शान से एक नाली थी। इसमें साँप लहरा-लहरा के दौड़ते और मेढ़कों का तआक़ुब करते और लोग बिना किसी ख़ौफ़ के पास खड़े सैर देखा करते। इस पहाड़ के नीचे भी दो कटहरे थे, जिनमें दो बड़ी चीतें रखी गयी थीं। यूँ तो ख़ामोश पड़ी रहतीं लेकिन जिस वक़्त मुर्ग़ लाके छोड़ा जाता उसे झपट के पकड़तीं और मुसल्लम निगल जातीं। साँपों के रखने का इन्तिज़ाम इससे पहले शायद कभी न किया गया होगा और यह ख़ास वाजिदअली शाह की ईजाद थी जिसको यूरोप के सय्याह हैरत से देखते और उसकी तसवीरें और मुशर्रह[१] कैफ़ियत क़लमबन्द कर ले जाते थे। मज़कूर: जानवरों के अलावा हज़ारहा तुयूर[२] चमकते हुए बिरंजी पिंजरे ख़ास सुल्तानख़ाने के अन्दर थे। बीसियों बड़े-बड़े हाल थे जो लोहे के जाल से महफ़ूज़ कर दिये गये थे और कुंज कहलाते थे। उनमें क़िस्म-क़िस्म के तुयूर कसरत से लाके छोड़ दिये गये थे और उनके रहने और नशोनुमा पाने का पूरा सामान फ़राहम किया गया था। बादशाह की कोशिश थी कि चरिन्द व परिन्द में से जितनी क़िस्म के जानवर दस्तयाब[३] हो सकें सब जमा कर लिये जायें और वाक़ियी ऐसा मुकम्मल ज़िन्द: अजायबख़ाना शायद रूयेज़मीन पर कहीं मौजूद न होगा। इन जानवरों की फ़राहमी में बेरोक रुपया सर्फ़ किया जाता और कोई शख़्स नया जानवर लाये तो मुँह माँगे दाम पाता। कहते हैं कि बादशाह ने रेशमपरे कबूतरों का जोड़ा चौबीस हज़ार रुपये को और सफ़ेद मोर का जोड़ा ग्यारह हज़ार रूपये को लिया था। ज़ुराफ़: जो अफ़्रीक़ा का बहुत बड़ा और निहायत अजीब जानवर है उसका भी एक जोड़ा मौजूद था। दो कोहान के बग़दादी ऊँट हिन्दोस्तान में कहीं नज़र नहीं आते और बादशाह के वहाँ थे। कलकत्ते में हाथी मुतलक़ नहीं हैं। मगर बादशाह के इस ज़िन्द: नेचुरल हिस्ट्री म्यूज़ियम में एक हाथी भी था। महज़ इस ख़्याल से कि कोई जानवर रह न जाये दो गधे भी रमने में लाकर छोड़ दिये गये थे। दरिन्दों में से शेर बबर, देसी शेर, चीते, तेन्दुवे, रीछ, स्याहगोश, चरग़, भेड़िये सब कटहरों में बन्द थे और बड़ी ख़ातिरदाश्त से रखे जाते थे। कबूतरों का इन्तिज़ाम दीगर जानवरों से अलग था। बादशाह की मुख़्तलिफ़ कोठियों में सब मिलाके चौबीस, पच्चीस हज़ार कबूतर थे जिनके उड़ाने में कबूतरबाज़ों ने बड़े-बड़े कमालात दिखाये थे।

जानवरों पर जो सर्फ़ हो रहा था उसका नाक़िस अंदाज़ा इससे हो सकता है कि आठ सौ से ज़ियाद: जानवरबाज़ थे। तीन सौ के क़रीब कबूतरबाज़ थे। अस्सी के क़रीब माहीपरवर[४] थे और तीस-चालीस मारपरवर[५] जिनको दस रुपये माहवार से लेकर छ: रुपये माहवार तक तनख़्वाहें मिलती थीं। अफ़सरों की तनख़्वाहें तीस

---

१ विस्तारपूर्वक २ पक्षी ३ प्राप्त ४ मछेरे ५ सँपेरे।

से बीस रुपये तक थीं और कबूतरों, साँपों और मछलियों के अलावा दीगर जानवरों की ख़ूराक में कुछ कम नौ हज़ार माहवार सर्फ़ होते थे।

इमारत का काम ज़ियादःतर मूनिसुद्दौला और रैहानुद्दौला के सिपुर्द रहा। जिनको इमारत की मद में तक़रीबन पच्चीस हज़ार माहवार मिला करते थे।

हज़ार के क़रीब पहरे के सिपाही थे जिनकी तनख्वाहें अमूमन छः रुपया माहवार थी। बाज़ आठ या दस रुपये भी पाते। यही तनख्वाह मकानदारों की थी जिनका शुमार पाँच सौ से ज़ियादः था। मालियों की भी यही तनख्वाह थी और उनका शुमार भी पाँच सौ से ज़ियादः था। तक़रीबन अस्सी अहलेक़लम यानी मुहर्रिर थे, जो तीस से दस रुपये माहवार तक तनख्वाह पाते थे। मुअ़ज़्ज़िज़ मुसाहिबों और आला ओहदेदारों का शुमार चालीस-पचास से कम न होगा जो अठ्ठासी रुपये माहवार पाते थे, सौ से ज़ियादह कहार थे।

इनके अलावा बीसियों छोटे-छोटे महकमे थे। बावर्चीख़ानः, आबदारख़ानः, भिन्डीख़ानः, ख़सख़ानः, और ख़ुदा जाने क्या-क्या था। फिर एक मद लवाहिक़े-बेगमात यानी ममतूआ़त के रिश्तेदारों और भाई-बन्दों की थी जिन्हें हस्बेहैसियत[1] तनख्वाहें मिलती थीं।

इन सब लोगों ने कोठियों के रक़बे से बाहर ज़ियादहतर उसी ज़मीन पर जो बादशाह को दी गयी थी और बहुतों ने पास की दूसरी ज़मीनों पर मकान बना लिये थे और एक शहर बस गया था जिसकी मर्दुमशुमारी[2] चालीस हज़ार से ज़ियादह थी। इन सब की ज़िन्दगी बादशाह की तनख्वाह के एक लाख रुपये माहवार से वाबस्तः थी और किसी की समझ में न आता था कि इतनी ख़िल्क़तेअज़ीम[3] इस थोड़ी सी रक़म में क्योंकर ज़िन्दगी बसर कर लेती है। बंगाले के अवाम में यह मशहूर था कि बादशाह के पास पारस पत्थर है। जब ज़रूरत होती है लोहे या ताँबे को रगड़ कर सोना बना लेते हैं।

हक़ीक़तेहाल यह है कि बादशाह के क़ियाम से कलकत्ते के पड़ोस में एक दूसरा लखनऊ आबाद हो गया था। असल लखनऊ मिट गया था और उसकी मुनतख़ब सुहबत मटिया बुर्ज में चली गयी थी। बल्कि सच तो यह है कि उन दिनों लखनऊ, लखनऊ नहीं रहा था, मटिया बुर्ज लखनऊ था। यही चहल-पहल थी, यही ज़बान थी, यही शायरी थी, यही सुहबतें और बिज़्लः संजियाँ[4] यही उलमा व अत्क़िया[5] थे, यहीं के उमरा व रुअसा[6] थे और यहीं के अवाम[7] थे। किसी को नज़र ही न आता था कि हम बंगाले में हैं। यही पतंगबाज़ियाँ थीं, यही मुर्ग़बाज़ियाँ थीं, यही बटेरबाज़ियाँ थीं, यही अफ़यूनी थे, यही दास्तानगोई थी, यही ताज़ियेदारी थी, यही मर्सियाख्वानी व नौहःख्वानी थी, यही इमामबाड़े थे और यही कर्बला थी। बल्कि जिस जुलूस

---

१ हैसियत के अनुसार २ जनगणना ३ महान संख्या ४ योग्यता के विचार ५ परहेज़गार ६ रईस (धनी) ७ जनता।

और शान व शौकत से बादशाह की ज़रीह उठती थी लखनऊ में अह्देशाही में शायद उठ सकी हो। ग़दर के बाद तो कभी कोई ताज़ियः नहीं उठ सका। कलकत्ते की हज़ारहा ख़िलक़त और अंग्रेज़ तक ज़ियारत को मटिया बुर्ज में आ जाते थे।

बादशाह अगरचि शीअः थे मगर मिज़ाज में मुतलक़ तअस्सुब न था। उनका पुराना मक़ूलः था कि "मेरी दो आखों में से एक शीअः है और एक सुन्नी है"। एक बार दो शख़्सों में मज़्हबी इख़्तिलाफ़ पर मारपीट हो गयी बादशाह ने दोनों को माज़ूली[१] का हुक्म दे दिया, बल्कि अपने यहाँ ममनूअुलमुलाज़िमत[२] कर दिया और फ़रमाया "ऐसे लोगों का मेरे यहाँ गुज़र नहीं हो सकता।" आख़िर में बादशाह की एक किताब में बाज़ ऐसे नागवार अल्फ़ाज़ छप गये थे जिसपर कलकत्ते के सुन्नियों में बड़ी शोरिश हुई मगर इससे लोग वाक़िफ़ नहीं हैं कि वह अल्फ़ाज़ असल किताब में नहीं बल्कि दूसरों की तारीख़ या तक़रीज़ में थे और बादशाह को जैसे ही इत्तिला मिली बग़ैर किसी तहरीक के माफ़ी माँगने को तैयार हो गये। बेतअस्सुबी का इससे ज़ियादः सुबूत क्या होगा कि सारा इन्तिज़ामी कारोबार सुन्नियों ही के हाथ में था। वज़ीरे-आज़म मुनसरिमुद्दौला बहादुर, सुन्नी थे। मुंशियुस्सुल्तान, जो एक ज़माने में सबसे ज़ियादह मुक़र्रब[३] और सारे जानवरख़ाने, कुल अह्लेक़लम और कई और महकमों के अफ़सरेआला था, सुन्नी थे। बख़्शी अमानतुद्दौलः बहादुर, जिनके हाथ से कुल मुलाज़िमों हत्ताकि महलों और शाहज़ादों तक को तनख़्वाह मिलती थी, सुन्नी थे। अतारिदुद्दौलह और दारोग़ः मुअतबरअली ख़ाँ जो आख़िर में सबसे बड़े ओह्देदार और कुल कारोबार के मालिक थे दोनों सुन्नी थे। इससे बढ़कर क्या होगा कि इमामबाड़ा सिब्तैनाबाद का और महल के ख़ास इमामबाड़े बैतुलबका[४] का इन्तिज़ाम और मजलिसों और मज़हबी तक़रीबों के बजा लाने का इन्सिराम[५] भी सुन्नियों ही के हाथ में था। वहाँ कभी किसी ने इसको महसूस ही नहीं किया कि कौन सुन्नी है और कौन शीअः है। मटिया बुर्ज के दुकानदार और महाजन तक लखनऊ के थे और लखनऊ की कोई चीज़ न थी जो मुकम्मलतरीन सूरत में वहाँ मौजूद न हो। जिधर गुज़र जाइये एक अजीब रौनक़ और चहल-पहल नज़र आती और इस लुत्फ़ में लोग इस तरह महो[६] और मस्त व अज़्ख़ुदरफ़्तः[७] हो रहे थे कि किसी को अंजाम की ख़बर ही न थी। इमारातेशाही और रमने वग़ैरः के अन्दर जाने की अह्लेलखनऊ, जुमलः मुलाज़िमीन बल्कि साकिनीने[८] मटिया बुर्ज को आम आज़ादी थी। बाग़ों में फिरिये तो उससे ज़ियादः पुरफ़िज़ा मक़ाम कहीं नसीब न हो सकता। दरिया के किनारे खड़े हो जाइये तो अजीब लुत्फ़ नज़र आता। कलकत्ते को आने-जाने वाले जहाज़ सामने से होकर गुज़रते जो फ़ोर्ट विलियम की सलामी के लिए यहीं से अपनी झंडियाँ

१ त्यागपत्र २ मुलाज़िमत से निकलने का हुक्म ३ निकट ४ कोपभवन।
५ प्रबन्ध ६ मग्न ७ खोये हुए ८ निवासी।

जब मुहय्यिसः अ़ब्दुल्लाह (र०) बिन सहल के पास आये तो उनको ख़ून में लतपत क़त्ल किया हुआ पाया, उनको दफ़न करके मदीना आये। अब्दुर-रहमान, सहल, मुहय्यिसः और हुवैसः (यह दोनों मस्ऊ़द के बेटे थे) नबी (स०) की ख़िदमत में आये और क़त्ल का मुक़द्दिमा पेश किया। अ़ब्दुररहमान बिन सहल (मक़्तूल के भाई) ने गुफ़्तुगू शुरू की। वह छोटे थे, आपने फ़रमाया पहले बड़ा गुफ़्तुगू करे। पहले बड़ा गुफ़्तुगू करे।

१२६ ज़ियादः क़ुर्आन का याद रखनेवाला मुक़द्दम है

हज़्रत जाबिर (र०) से रिवायत है कि नबी (स०) उहद में एक क़ब्र में दो शहीदों को रखते थे। आप फ़रमाते इनमें कौन क़ुरआन ज़ियादः हासिल करनेवाला था? जब उनमें से एक की तरफ़ इशारः किया जाता तो आप उसको लहद[1] में मुक़द्दम रखते थे। [बुख़ारी]

१२७ ज़ियादः उम्र वाला मुक़द्दम है

हज़्रत इब्नि उमर (र०) से रिवायत है कि नबी (स०) ने फ़रमाया, मैंने ख़्वाब देखा मैं एक मिस्वाक[2] कर रहा हूँ। मेरे पास दो आदमी आये, उनमें से एक बड़ा था। मैंने छोटे को मिस्वाक दी तो मुझसे कहा गया कि बड़े को मिस्वाक दो, तो मैंने बड़े को दी। [मुस्लिम]

१२८ तीन शख़्सों की अिज़्ज़त

हज़्रत अबू मूसा (र०) से रिवायत है कि रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने फ़रमाया, अल्लाह की अिज़्ज़त यह भी है कि बूढ़े मुसलमान और हामिले क़ुरआन जो अल्लाह के हदों के अन्दर हो और मुन्सिफ़ बादशाह की अिज़्ज़त की जाये। [अबू दावूद]

१२९ छोटों पर शफ़क़त[3] बड़ों की अिज़्ज़त

हज़्रत उमर (र०) बिन शुऐब से रिवायत है कि वह अपने बाप से और वह अपने दादा से रिवायत करते हैं कि रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने फ़रमाया, वह हम से नहीं है जो अपने छोटों पर रहम न करे और अपने बड़ों की अिज़्ज़त न करे♦। [अबूदावूद-तिर्मिज़ी]

♦ अगर किसी जमाअ़त में इस उसूल पर अ़मल हो तो कैसा निज़ाम और कैसा अमन और मुहब्बत हो।

१ क़ब्र, समाधि २ दातौन ३ मुहब्बत।

३६० लोगों से उनकी हैसियत के मुताबिक़ सुलूक

हज़्रत मैमून (र०) बिन शुअ़ैब से रिवायत है कि हज़्रत आ़यशः (र०) के पास एक आदमी आया। उसको एक रोटी का टुकड़ा दिया और एक आदमी पुराने कपड़े पहने हुए आया तो उसको बिठाया और खाना खिलाया। लोगों ने उसके बारे में सवाल किया। हज़्रत आ़यशः (र०) ने कहा कि रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम का इरशाद है कि लोगों को उनके मर्तबः के मुताबिक़ उतारो। [अबूदावूद]

३६१ हज़्रत अ़ुमर (र०) की मर्तबाशनासी[1] और बुर्दबारी[2]

हज़्रत इब्नि अब्बास (र०) से रिवायत है कि उ़यैनः बिन हुसैन अपने भतीजे हुर्र बिन क़ैस के यहाँ आये। हज़्रत हुर्र बिन क़ैस उन लोगों में थे जो हज़्रत उमर (र०) के नज़दीक रहते थे। और हज़्रत उमर (र०) के हमनशीन और मशविरः देने वाले पढ़े लिखे लोग होते थे, अधेड़ हों या जवान। उ़यैनः ने अपने भतीजे से कहा कि अमीरुल् मोमिनीन की मज्लिस में तुम्हारी अ़िज़्ज़त है, तुम मेरे लिए इजाज़त तलब करो। उन्होंने इजाज़त चाही, हज़्रत उमर (र०) ने उनको इजाज़त दे दी। जब वह आये तो कहने लगे, ऐ इब्नि ख़त्ताब! तुम हम को कुछ नहीं देते और हमारे दर्मियान अ़द्ल नहीं करते हो। हज़्रत उमर (र०) को ग़ुस्सा आ गया। क़रीब था कि हाथ उठायें, हुर्र ने कहा, या अमीरुल् मोमिनीन! अल्लाह तआ़ला ने अपने नबी (स़०) से फ़रमाया है, "ख़ुज़िल्अ़फ़्व वअ्मुर बिल्अ़ुर्फ़ि व अऽ्रिज़् अ़निल् जाहिलीन†"। ऐ अमीरुल् मोमिनीन! यह जाहिलों में हैं। ख़ुदा की क़सम जब उन्होंने यह आयत पढ़ी तो हज़्रत उमर (र०) फ़ौरन रुक गये और एक तिल के बराबर भी नहीं बढ़े और वह किताबुल्लाह के सामने हमेशा गर्दन झुका देते थे।

३६२ बड़ों का लिहाज़

हज़्रत समुरः बिन जुन्दुब से रिवायत है कि मैं नबी (स़०) के ज़माने में लड़का था, मुझे आपकी बातें याद हो जाती थीं। मगर मैं इसलिए नहीं कहना चाहता कि यहाँ मुझसे बड़ी उम्र के लोग मौजूद हैं। [बुख़ारी-मुस्लिम]

---

१ योग्यता के पारखी २ सहनशीलता।

---

† मुआ़फ़ी इख़्तियार करो, नेकी का हुक्म दो और जाहिलों से ए़राज़ करो।

बूढ़े की अिज़्ज़त की वजह से बुढ़ापे में अिज़्ज़त

हज़्रत अनस (र०) से रिवायत है कि रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने फ़रमाया, जो जवान किसी बूढ़े की अिज़्ज़त उसके सिन के लिहाज़ से करेगा तो अल्लाह तआ़ला उसके लिए भी किसी शख़्स को मुक़र्रर करेगा कि जो उसके बुढ़ापे के वक़्त उसकी भी अिज़्ज़त करे। [तिर्मिज़ी]

नेक लोगों की मुलाक़ात, सुहबत और उनसे मुहब्बत

आयात

व अिज़् क़ाल मूसा लिफ़ताहु ला अब्रहु हत्ता अब्लुग़ मज्मअ़ल्बह्रैनि औ अम्ज़िय हुक़ुबन् (६०) फ़लम्मा बलग़ा मज्मअ़ बैनिहिमा नसिया हूतहुमा फ़त्तख़ज सबीलहु फ़िल्बह्रि सरबन् (६१) फ़लम्मा जा वज़ा क़ाल लिफ़ताहु आतिना ग़दाअना ज़ लक़द् लक़ीना मिन् सफ़रिना हाज़ा नसबन् (६२) क़ाल अरअैत अिज़् अवैना अिलस्सख़्रति फ़अिन्नी नसीतुल्हूत ज व मा अन्सानीहु अिल्लश्शैतानु अन् अज़्कुरहु ज वत्तख़ज सबीलहु फ़िल्बह्रि क़ सला अ़जबन् (६३) क़ाल ज़ालिक मा कुन्ना नब्ग़ि क़ सला फ़र्तद्दाअ़ला आसारिहिमा क़ससन् ला (६४) फ़वजदा अ़ब्दम्मिन् अ़िबादिना आतैनाहु रह्मतम्मिन् अ़िन्दिना व अ़ल्लम्नाहु मिल्लदुन्नाअ़िल्मन् क़ाल लहू मूसा हल् अत्तबिअ़ुक अ़ला अन् तुअ़ल्लिमनि मिम्मा अ़ुल्लिम्त रुश्दन् (६६)

और जब मूसा ने अपने मुलाज़िम से कहा मैं (इस सफ़र में) बराबर चला जाऊँगा जब तक कि दो दरयाओं के मिलने की जगह न पहुँच जाऊँ या सालहा साल तक चलता रहूँ। जब दोनों दरया के जमा होने के मौक़े पर पहुँचे अपनी मछली दोनों भूल गये। उसने दरया में अपनी राह ली और चल दी। जब दोनों आगे बढ़े तो ख़ादिम से कहा कि हमारा नाश्तः दो। अलबत्ता इस सफ़र में हमको बहुत तकलीफ़ से वास्ता

पड़ा। कहा, लीजिए देखिए हम उस पत्थर पर ठहरे थे तो (वहाँ) मछली भूल आये और मुझको शैतान ने भुला दिया कि मैं उसका ज़िक्र करता और उसने दरया के बीच में रास्ता इख़्तियार किया। कहा, यही मौक़ा है जिसकी हम तलाश में थे। फिर वह दोनों नक़्शेक़दम को देखते हुए उलटे पाँव फिरे तो हमारे बन्दों में से एक बन्दे को पाया जिनको हमने अपनी ख़ालिस रहमत (यानी मक़बूलियत) दी थी। और हमने उनको अपनी तरफ़ से ख़ास अ़िल्म सिखाया था। मूसा ने उनसे कहा मैं तुम्हारी पैरवी करूँगा इस शर्त पर कि तुम मुझको सिखला दो जो तुमको सिखाया गया है। [सू० कह्फ़, रु० ६ आ० ६०-६६]

वस्बिर् नफ़्सक मअ़ल्लज़ीन यद्अ़ून रब्बहुम्बिलग़दाति वल्अ़शिय्यि युरीदून वज्हहु…

अपने नफ़्स को उन लोगों के साथ रोको जो अपने रब को सुब्ह व शाम उसकी रज़ा चाहते हुए पुकारते हैं। [सू० कह्फ़, रु० ४ आ० २८]

अहादीस

३३७ उम्मे ऐमन (र०) की मुलाक़ात के लिए हज़्रत अबू बक्र (र०) व हज़्रत उमर (र०) का जाना

हज़्रत अनस से रिवायत है कि हज़्रत अबू बक्र (र०) ने आँ हज़्रत (स०) की वफ़ात के बाद हज़्रत उमर (र०) से कहा आओ उम्मे ऐमन (र०) की मुलाक़ात को चलें जैसे रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम उनसे मुलाक़ात को जाया करते थे। जब वह दोनों पहुँचे तो वह रोने लगीं। दोनों हज़रात ने कहा, आप क्यों रोती हैं। क्या आप नहीं जानती कि अल्लाह के पास जो चीज़ है वह रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम के लिए ज़ियादः बेहतर है। वह बोलीं इस लिए नहीं रोती; मैं यह जानती हूँ कि जो अल्लाह के यहाँ है वह रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम के लिए बेहतर है। लेकिन मुझे इस लिए रोना आता है कि वहीय[1] का सिलसिला बन्द हो गया। इस बात को सुन कर दोनों का भी दिल भर आया और दोनों उनके साथ रोने लगे। [मुस्लिम]

१ ईश्वर की आयतों का उतरना।

१३८ मुसलमान भाई से मुलाक़ात की फ़ज़ीलत

हज़्रत अबू हुरैरः (र०) से रिवायत है कि नबी सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने फ़रमाया, एक आदमी अपने मुसलमान भाई की मुलाक़ात के लिए दूसरी बस्ती रवाना हुआ। अल्लाह तआ़ला ने उसके रास्ते पर एक फ़िरिश्ता मुक़र्रर कर दिया। जब उसके पास से गुज़र हुआ तो फ़िरिश्ते ने कहा, कहाँ का इरादः रखते हो? उसने जवाब दिया मैं फ़लाँ बस्ती में अपने भाई से मिलने जाता हूँ। फ़िरिश्ते ने कहा, क्या उसने तुम पर कोई इहसान किया है जो उसको निभाते हो? उसने कहा नहीं, मुझको उससे लिल्लाही मुहब्बत है। फ़िरिश्ता बोला, मैं अल्लाह का क़ासिद हूँ, बेशक अल्लाह तआ़ला ने तुमसे मुहब्बत की जैसे तुमने उससे अल्लाह के लिए मुहब्बत की। [मुस्लिम]

१३९ मरीज़ की इयादत[1] और मुसलमान की ज़ियारत[2] की फ़ज़ीलत[3]

हज़्रत अबू हुरैरः (र०) से रिवायत है कि रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने फ़रमाया, जो किसी मरीज़ की इयादत करता है या अल्लाह की ख़ुशी की ख़ातिर किसी मुसलमान भाई से मुलाक़ात करने चलता‡ है, तो एक पुकारनेवाला पुकारता है, 'तू मुबारक है। तेरा चलना मुबारक है। तूने जन्नत में एक जगह बना ली'। [तिर्मिज़ी]

१४० अच्छा हमनशीन और बुरा हमनशीन

हज़्रत अबू मूसा (र०) अशअ़री से रिवायत है कि नबी (स०) ने फ़रमाया अच्छे हमनशीन और बुरे हमनशीन की मिसाल ऐसी है जैसे मुश्क उठानेवाले और धौंकनी फूँकनेवाले की। मुश्क उठानेवाला या तुमको कुछ देगा या तुम उससे ख़रीदोगे या उसकी ख़ुश्बू ही पाओगे और धौंकनी फूँकनेवाला या तो तुम्हारे कपड़े जलायेगा या उससे बुरी बू पाओगे। [बुख़ारी-मुस्लिम]

---

‡ इस दौलत और इस अज्र व सवाब से लोग बहुत ग़ाफ़िल हैं। अल्लाह के लिए मुहब्बत करने, महिज़ अल्लाह की ख़ुशी के लिए किसी मुसलमान की मुलाक़ात के लिए चल कर जाने का रिवाज रोज़ बरोज़ कम होता जा रहा है। अग़राज़[4] व ख़्वाहिशे नफ़्स[5] या माद्दी फ़वायद[6] के लिए मिलना-जुलना, हँसना-बोलना, चलना-फिरना रह गया है।

---

१ रोगी से पूछ-ताछ २ दर्शन, दीदार ३ श्रेष्ठता ४ स्वार्थों के लिए ५ दिली इच्छाओं ६ भौतिक (सांसारिक) लाभों (सुखों)।

१६८ औरत की दीनदारी सबसे बड़ी ख़ुसूसियत है

हज़्रत अबू हुरैरः (र०) से रिवायत है कि नबी (स०) ने फ़रमाया, औरत से चार ख़ुसूसियत की बिना पर निकाह किया जाता है। उसके माल, नसब, ख़ूबसूरती या दीन की वजह से। पस तुम दीनदार औरत पसन्द करो। ख़ाक-आलूद हों तुम्हारे हाथ† ।

१६९ जिबरील (अ०) से मुलाक़ात की ख़्वाहिश

हज़्रत इब्नि अब्बास (र०) से रिवायत है कि नबी (स०) ने जिबरील (अ०) से फ़रमाया, हमसे जितना मिलते हो उससे ज़ियादः मिलने में कौन सी चीज़ मानिअ़[1] है। तो यह आयत उतरी।

व मा नतनज़्ज़लु अिल्ला बिअम्रि रब्बिक ۚ लहू मा बैन अैदीना व माख़ल्फ़ना…

हम नहीं उतरते मगर तुम्हारे रब के हुक्म से उसी के लिए जो हमारे सामने है और जो हमारे पीछे है। [सू० मरयम, रु० ४ आ० ६४]

१७० तुम्हारा खाना परहेज़गार आदमी खाये

हज़्रत अबू सअ़ीद (र०) ख़ुदरी से रिवायत है कि नबी (स०) ने फ़रमाया साथ रहो तो मोमिन के रहो और तुम्हारा खाना परहेज़गार ही◉ खाये। [अबूदावूद-तिर्मिज़ी]

१७१ दोस्त का इन्तिख़ाब[2]

हज़्रत अबू हुरैरः (र०) से रिवायत है कि नबी (स०) ने फ़रमाया, आदमी अपने दोस्त के दीन§ पर होता है। पस आदमी को देख लेना चाहिए कि किससे दोस्ती करता है। [अबूदावूद-तिर्मिज़ी]

१७२ जो जिसको चहता है उसी के साथ होगा

हज़्रत अबू मूसा (र०) अशअ़री से रिवायत है कि नबी (स०) ने

---

† मुहब्बत व प्यार के तौर पर फ़रमाया, अ़रब का मुहावरा है।

◉ इस पर कितने आदमियों का अ़मल है ?

§ यानी उसका तौर तरीक़ः, इख़्लाक़ व आ़दात हत्ता कि अ़क़ीदः व मज़हब इख़्तियार कर लेता है। इसलिए दोस्तों के इन्तिख़ाब में बड़ी इहतियात[3] की ज़रूरत है।

---

१ बाधक २ चुनाव ३ सावधानी।

फ़रमाया, आदमी उसके साथ होगा जिसको चाहता है। [बुख़ारी-मुस्लिम]

एक रिवायत में है कि नबी (स०) से अर्ज़ किया गया, आदमी लोगों से सुहबत करता है, और वह उनके मर्तबा का नहीं होता। आपने फ़रमाया जो जिसको चाहता है, उसी के साथ होगा।

हज़्रत अनस (र०) से रिवायत है कि एक अ़राबी[1] ने रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम से पूछा, क़ियामत कब आयेगी? आपने फ़रमाया, तुमने उसके लिए क्या सामान किया है? उसने कहा, मैं अल्लाह और उसके रसूल से मुहब्बत करता हूँ। आपने फ़रमाया, तुम उसी के साथ होगे जिससे मुहब्बत करते हो। [बुख़ारी-मुस्लिम]

एक और रिवायत में है कि मैंने उसके लिए कोई सामान नहीं किया, न ज़ियादः रोज़े हैं, न नमाज़, न सदक़ा। लेकिन मुझे अल्लाह और उस के रसूल से मुहब्बत है।

१०/३४३ आलमे अरवाह[2] में मुलाक़ात

हज़्रत अबू हुरैरः (र०) से रिवायत है कि नबी (स०) ने फ़रमाया, लोग कानें हैं। जैसे सोने-चान्दी की कानें होती हैं। जो जाहिलिय्यत में शरीफ़ थे वह इस्लाम में भी शरीफ़ हैं। लेकिन जब वह दीन की समझ हासिल करें। और रूहें छावनी वाली फौजें हैं, अगर आ़लमे बाला में एक दूसरे से मुलाक़ात की है तो यहाँ भी उनसे मानूस होंगी। और जो वहाँ अनजान थीं वह यहाँ भी अलग रहेंगी☆। [मुस्लिम]

११/३४४ नेक और मक़बूल बन्दों से दुआ़ कराना

हज़्रत उसैर (र०) बिन उमर या हज़्रत इब्नि जाबिर (र०) से रिवायत है कि हज़्रत उमर (र०) के पास जब यमन के क़बायल के लोग आते थे तो वह उनसे पूछते कि क्या तुममें उवैस (र०) बिन आ़मिर हैं।

☆ आ़लमे अरवाह की उस मुलाक़ात का असर इस आ़लमे अजसाम पर मालूम होता है। और उसी के बहुत से वाक़िआ़त और बातों की आसानी से तौजीह हो सकती है। एक शख़्स बग़ैर किसी रिश्ता और साबिक़ा मअ़रिफ़त के एक मुलाक़ात में घुल-मिल जाता है। और तबीयतें ऐसी घुल-मिल जाती हैं, जैसे हमेशा की मुलाक़ात और मुहब्बत थी। और दो आदमी और बाज़ औक़ात दो भाई बरसों साथ रहने के बावजूद एक दूसरे से मानूस नहीं होते[3]। और उनमें उल्फ़त व मुहब्बत पैदा नहीं होती।

१ देहाती २ रूहों के जमा होनेवाली दुनिया ३ घुलते-मिलते नहीं।

यहाँ तक कि हज़्रत उवैस (र०) आये। हज़्रत उमर (र०) ने कहा, आप उवैस (र०) बिन आमिर हैं ?

हज़्रत उवैस (र०)—हाँ।

हज़्रत उमर (र०)—आप मुराद के घराने में क़र्न के क़बीले से हैं ?

हज़्रत उवैस (र०)—हाँ

हज़्रह उमर (र०)—आपके सफ़ैद दाग़ था, अब अच्छा हो गया, सिर्फ़ एक दिरहम के बराबर बाक़ी है ?

हज़्रत उवैस (र०)—हाँ।

हज़्रत उमर (र०)—आपकी वाल्दः ज़िन्दा हैं ?

हज़्रत उवैस (र०)—हाँ।

हज़्रत उमर (र०)—मैंने रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम से सुना है कि तुम्हारे पास उवैस (र०) बिन आ़मिर यमन के क़बायल वालों के साथ आयेंगे, क़र्न के क़बीले से होंगे। उनके सफ़ैद दाग़ होगा फिर वह अच्छा हो जायेगा। एक दिरहम के बराबर बाक़ी रह जायेगा। और उनकी माँ होंगी जिनके वह बड़े फ़रमाँबरदार होंगे। अगर वह अल्लाह पर क़सम खायेंगे तो अल्लाह तआ़ला उनकी क़सम पूरी करेगा। तुम कर सको तो उनसे अपने लिए बख़्शिश की दुआ़ कराना। तो आप मेरे लिए अल्लाह से बख़्शिश चाहें। उन्होंने उनके लिए बख़्शिश की दुआ़ की। फिर हज़्रत उमर (र०) ने कहा अब आप कहाँ का इरादः रखते हैं। फ़रमाया, कूफ़ः का। कहा, मैं आपके लिए उसके हाकिम को लिख दूँ। फ़रमाया, मुझे ग़रीबों में रहना ज़ियादः पसन्द है।

दूसरे साल कूफ़ः के शुरफ़ा में से एक आदमी हज के लिए आया। हज़्रत उमर (र०) से मुलाक़ात हुई। हज़्रत उमर (र०) ने उवैस (र०) के मुतअ़ल्लिक़ दर्याफ़्त किया। उन्होंने कहा मैंने उनको ऐसी हालत पर छोड़ा है कि घर बोसीदः है और सामान थोड़ा है। हज़्रत उमर (र०) ने कहा, मैंने रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम से सुना है कि तुम्हारे पास उवैस (र०) बिन आ़मिर अहले यमन के क़बायल वालों के साथ आयेंगे। क़र्न के क़बीले से होंगे। उनके सफ़ैद दाग़ होगा, उससे वह अच्छे हो जायेंगे। सिर्फ़ एक दिरहम के बराबर बाक़ी रह जायेगा। उनकी माँ होंगी जिनके वह फ़रमाँबरदार होंगे। वह अल्लाह पर क़सम खायेंगे तो अल्लाह तआ़ला उनकी क़सम पूरी कर देगा। अगर तुम कर सको तो अपने लिए बख़्शिश की दुआ़ कराना। सो तुम भी उनसे दुआ़ कराओ। फिर वह उवैस (र०) के पास आये। और अर्ज़ किया मेरे लिए बख़्शिश की दुआ़ की जिए। हज़्रत उवैस (र०) ने फ़र्माया तुम अभी-अभी एक अच्छे सफ़र से आ रहे हो।

वक्षोजरे—स्तनों में; तुळाश—तुलना की आशा; आणिला—लाया; बेळुंबेळ—समय से समय; बिम्बे—कुन्दरूका (लाल) फल; कृकलास—गिरगिट। (१३)

वशीभूत राम प्रीति आदरे। बसि भूतपति-रिपुर दरे।
बारवाण[1] हेब सुन्दरी खर। बारवाणकु[2] पञ्च विशिखर।
वि-शाखा स्वभावे।
विशाखा-पति मुखच्छवि भावे। १४।

सरलार्थ—उधर रामचन्द्र भी सीताजी की प्रीति तथा आदर से वशीभूत हो वास्तव में प्रियाहीन होने के हेतु महादेव के शत्रु कन्दर्प के डर से एकान्त में बैठे चन्द्रमुखी सीता की छवि का ध्यान कर रहे हैं--"कन्दर्प के द्वारा चलाए गए बाण-समूहों का निवारण करने के लिए सीता दृढ़ कवच के समान होगी"। (अर्थात् सीतारूपी कवच धारण करने से --सीता को अंक में भर लेने से ,मुझे कन्दर्प की पीड़ा नहीं होगी।) (१४)

भूतपति-रिपुर दरे—शिव-शत्रु-कन्दर्प के डर से; बारवाण[1]—कवच; खर—सख्त, कठिन; बारवाणकु[2]—बाण-समूह के लिए; पंचविशिखर—पंचशर (कन्दर्प) का; वि-शाखा—शाखा (प्रिया)-हीन, विरही; विशाखापति—विशाखा नामक नक्षत्र का पति, चन्द्र। (१४)

बाहुलतारे[1] सम नोहि दीन। बाहुलतारे[2] ताकु केउँ दिन।
बान्धि विरचिबि न करि मठ। बान्धवि! बोलि धरिबि नर्मठ।
बन्धु मो विशुद्धा।
बन्धुक अधरु पिइबि सुधा। १५।

सरलार्थ--फिर रामचन्द्रजी ने सोचा, "किस विशेष दिन मैं दीन-दु:खी की तरह न होकर (अर्थात् विकलता से न भरा हुआ, धन-प्राप्ति का सा गर्व प्रकट करके) देर न करके अपनी बाहु-लताओं से सीता को बाँधूँगा? किस दिन "हे बान्धवि! ऐसा कहते हुए उसके चिबुक (ठुड्डी) अथवा स्तनाग्र का स्पर्श करूँगा? किस दिन मैं निर्मलहृदया तथा बन्धूक (गुल दुपहरी के फूल) के समान अधर वाली अपनी बान्धवी (प्रेयसी) सीता के अधरों से अमृत पान करूँगा? (१५)

बाहुलतारे[1]—बाहुल्य से, अधिकता से; बाहुलतारे[2]—भुजारूपी लताओं से; मठ—बिलम्ब, देर; नर्मठ—ठुड्डी या स्तनाग्र; बन्धुक अधरु—दुपहरिया फूल के रंग समान लाल होंठो से; पिइबि—पीऊँगा। (१५)

बळाहक[1]- केशी नेत्र शबळा। बळाहक[2]- स्तनी स्नेह - प्रवळा।
बळाउँ रतिरे मति अवळा। बळारि सुखकु हेब कवळा।
बळाइब बळा।
बळात्कारे मार हेब दुर्बळा। १६।

सरलार्थ—घनकेशी (घने बालों वाली या बादलों के समान काले बालों वाली), विचित्र-नयनों वाली, पर्वत के समान स्तनों वाली तथा स्नेह-प्रवीणा सीता जब रति के लिए मन करेगी, तो उस समय का सुख इन्द्र की संपत्ति के लाभ के सुख पर अधिकार जमा लेगा। (उस सुख-लाभ से मैं इन्द्र संपद को भी तुच्छ समझूँगा।) उसके पायजेबों की ध्वनि कन्दर्प को बलात् दुर्बल बना देगी। (अर्थात् कन्दर्प हारकर भाग जाएगा"।) (१६)

बळाहक[1] केशी—मेघ से वर्ण-समान काले बालों वाली (सीता); नेत्र-शबळा—विचित्र नयना; बळाहक[2] स्तनी—पर्वत के समान ऊँचे स्तनों वाली (सीता); स्नेह-प्रबळा—स्नेह-प्रवीणा; बळाउँ मति—मन करते, इच्छा करते; बळारि—इन्द्र; मार—कन्दर्प। (१६)

विशल्य रामा प्रापते हविष। विषय अन्तर अशन विष।
वीश-प्रभु प्रेम-वाणिज्ये विश। विशदभानु भानु ए किळ्विष।
विषधर विष।
विषमताप वश ए भविष्य। १७।

सरलार्थ—काम-पीड़ा को हरनेवाली विशल्यकरणी औषधि के समान सीता को प्राप्त करने के लिए रामचन्द्र ने व्रत-धारण करके हविष्य का पालन किया। उनके मन से और सब चिन्ताएँ दूर हुईं। उन्हें भोजन विष तुल्य प्रतीत हुआ। गरुड़ के प्रभु रामचन्द्र वैश्य की तरह प्रेम-रूपी वाणिज्य की चिन्ता में मग्न हुए। चन्द्र की किरणों ने उन्हें सन्ताप दिया। कमल की नाल विषधर सर्प की भाँति प्रतीत हुई। विरह-जनित सन्ताप के कारण शीतल करने वाले सारे उपचार उनके लिए विपरीत सिद्ध हुए। (१७)

विशल्य—विशल्यकरणी औषधि; रामा—स्त्री (सीता); अशन—योजन; वीश (वि-पक्षी + ईश-श्रेष्ठ या राजा = पक्षिराक्ष)—गरुड़; वीश-प्रभु—गरुड़ के प्रभु रामचन्द्र; विश—वैश्य, वणिक; विशदभानु—चन्द्र; भानु—प्रभा, किरण; किळ्विष—पाप, रोग, सन्ताप; विषधर—सर्प; विष—कमलकी नाल; विषमताप—विरह-जनित सन्ताप; भविष्य—विपरीत। (१७)

बसि पारावत हुँकृत स्वने। वशिष्ठ आदि आसे सुखासने।
विथिरे[1] श्यामळ कमळवासी। वीथिरे[2] देखिबा अग्रोध्यावासी।
वितर्कि चित्त रे।
वितरणकृत नेत्र कातरे। १८।

सरलार्थ—नील कमल की सुगन्ध से युक्त रामचन्द्र जब इस प्रकार चिन्ता में निमग्न थे, तब कबूतरों ने हुंकार ध्वनि की। इसके लिए कि शीघ्र ही कैसे विवाहोत्सव सम्पन्न हो जाय रामचन्द्र इतने उद्विग्न थे कि कबूतरों की 'हुं' को उन्होंने अयोध्या से आने वाली शिविकाओं (डोलियों) के वाहकों के मुखों से निकलती हुई ध्वनि समझ लिया। क्या अयोध्या से वशिष्ठ आदि मुख्य व्यक्ति आ गये! चित्त की उत्कण्ठा के कारण मनमें ऐसी नाना प्रकार की कल्पना-सम्भावनाएँ करके चित्त की अस्थिरता के कारण वे अयोध्या-वासियों से भेंट करने के लिए बार-बार जा-जाकर मार्ग जोहते रहे। (१८)

पारावत—कबूतर, कपोत; सुखासने—शिविकाओं में, डोलियों में; विथिरे[1]—अस्थिर होकर; कमळवासी—पद्मगन्धा; वीथिरे[2]—मार्ग में; वितर्कि—कल्पना-जल्पना करके, विचार-तर्कणा करके। (१८)

विभ्राज पलाशहीन पलाश। विभ्रान्ति हुए पदग विळास।
बळाकापन्ति ग़ाउँ त्वकसार। बळान्ति चित्त पताका प्रसार।
विळसे सुमन।
विळम्ब तेजि कले त गमन। १९।

सरलार्थ—पत्र-विहीन पुष्पित पलाश-वृक्ष पर दृष्टि पड़ने पर (वसन्त ऋतु में पलाश वृक्षों पर पत्ते नहीं रहते, परन्तु लाल-लाल फूलों से वृक्ष भरे रहते हैं। लाल रंग से रंजित वृक्षों को देखकर) रामचन्द्र को भ्रम हुआ, शायद पदाति (पैदल सिपाही) क्रीड़ा करके आ रहे हों। बाँस वृक्षों से बगुलों की कतार को उड़ते हुए देखकर उन्होंने समझ लिया कि शायद (पैदल सिपाहियों के आगमन से) पताकाएँ फहरा रही हैं। अयोध्या के लोग निश्चय ही आ रहे हैं—यह धारणा उनके मन में दृढ़ होने पर वे शीघ्र ही मार्ग में प्रतीक्षा करने गये। (१९)

विभ्राज—कान्तियुक्त, पुष्पित; पलाशहीन—पत्रहीन; पलाश—टेसू; पदग—पैदल सिपाही, पदाति; बळाकापन्ति—बगुलों की कतार; य़ाउँ—जाते (उड़जाते); त्वकसार—बाँस। (१९)

विरळे आद्य यमके विद्यक। विभूषित ध्वनि प्रान्त य़मक।
विश्राम य़मक आद्य प्रान्तरे। विशुद्ध रूपक विंश पदरे।
वीरवर कहि।
बाळिशे विस्मय बुधङ्कु मोहि। २०।

सरलार्थ--वीरवर उपेन्द्रभञ्ज ने इस प्रकार निर्दोष आद्ययमक-शोभित, ध्वनि तथा प्रान्त-यमक-विभूषित, आद्य-प्रान्त-विश्रामकारी-यमक-युक्त तथा विशुद्ध-रूपक-अलंकार-विमण्डित बीस पदों में इस छान्द की रचना की। इस छान्द को सुनकर मूर्ख लोग विस्मित तथा पण्डित लोग मोहित होंगे। (२०)

विरळ—निर्मल, निर्दोष; बाळिशे—मूर्ख लोगों को; बुधंकु—पण्डितों को। (२०)

॥ इति द्वादश छान्द ॥

त्रयोदश छान्द

राग—भूपाळ

बसिछन्ति दशरथ सभा मध्ये ।
बेत्रहस्त द्वास्थ कहे अति श्रद्धे । १ ।

बारणारि द्वारे होइ छन्ति स्थित ।
बहि श्रीरामवार्त्ता मिथिळा दूत । २ ।

बेगे राजा आण बोलुँ नेला मुनि ।
बशिष्ठरे नमि नृपमान्य घेनि । ३ ।

सरलार्थ—महाराजा दशरथ सभा में बैठे हुए थे। उसी समय वेत्रधारी द्वारपाल ने आकर अतिशय श्रद्धा के सहित कहा, "हे महाराज ! मिथिलापुर से एक दूत श्रीराम का समाचार लाया है तथा सिंहद्वार पर खड़ा हुआ है"। 'शीघ्र ही उन्हें यहाँ ले आओ', राजा से ऐसी आज्ञा पाते ही द्वारपाल उन्हीं मुनि शतानन्द को सभा-स्थल में राजा के समीप ले गया। शतानन्द ने वहाँ पधारकर पहले मुनि वशिष्ठि को प्रणाम किया; तदनन्तर राजा दशरथ का सम्मान ग्रहण किया। (१-२-३)

बार्त्ता कहे सरूपके सतानन्द ।
विश्वामित्र गुरु संगे रामचन्द्र । ४ ।

वन व्योमे उदे करि प्रभाकर ।
विध्वंसिले ताड़का घोरान्धकार । ५ ।

सरलार्थ—अनन्तर ऋषि शतानन्द ने दशरथ से रूपक में कहा—जिस प्रकार बृहस्पति के सहित चन्द्र आकाश में उदित होकर अपनी किरणों की प्रभा से अन्धकार का नाश करते हैं, उसी प्रकार विद्यागुरु विश्वामित्र के सहित रामचन्द्र रूपी रमणीय चन्द्र ने वन में आविर्भूत होकर अपने भुजबल की प्रभा से ताड़का राक्षसीरूपी अन्धकार का विनाश किया। (४-५)

गुरु—वृहस्पति, विद्यागुरु, विश्वामित्र; रामचन्द्र—रमणीय चन्द्र, भगवान् रामचन्द्र। (४-५)

बिचेष्टित मारीच वायस करि ।
विटपति सुबाहकु से निवारि । ६ ।

सरलार्थ—जिस प्रकार रात में चन्द्र कौवों को निद्रा से अचेतन कर देते हैं और विट (जार अथवा कुमार्गी) पुरुषों के गमन को निवारण करते हैं, उसी प्रकार रामचन्द्रजी ने भी मारीच राक्षस को पवनास्त्र के द्वारा सौ योजन फेंककर अचेतन कर दिया तथा सुबाहु राक्षस का विनाश किया । (६)

विचेष्टित—चेष्टाहीन, अचेतन; वायस—कौवा; विटपति—जार पुरुष । (६)

विकशित ये यज्ञ-कुमुद कले ।
विधुशिळा अहल्याकु द्रबाइले । ७ ।

सरलार्थ—जैसे चन्द्र कुमुद को विकसित करते हैं, वैसे ही रामचन्द्र ने भी यज्ञ का विकास किया अर्थात् बिना वाधा-विघ्नों के यज्ञ कर्म को पूर्ण कराया । जिस प्रकार चन्द्रमा चन्द्रकान्त-मणि को पिघला देता है उसी प्रकार रामचन्द्र ने भी अहल्या-रूपिणी चन्द्रकान्त-मणि को पिघला कर उसे शापमुक्त कर दिया । (७)

विधुशिळा—चन्द्रकान्त-मणि; दबाइले—द्रवीभूत किया, पिघलाया । (७)

व्यवस्थिते पुण सलक्ष्मण सेहि ।
वैदेहिक जन चकोरकु मोहि । ८ ।

सरलार्थ—जिस प्रकार लक्षण-युक्त (कलंक-चिह्न-युक्त) होकर चन्द्रमा अपनी किरण-रूपी अमृत से चकोरों को मुग्ध करता है, उसी तरह रामचन्द्र ने भी लक्ष्मण के सहित विदेह के निवासियों को अपने सौजन्य से मुग्ध किया । (८)

वैदेहिक—विदेहवासी । (८)

बइदेश धैर्य्य धनु अजगब ।
विभञ्जन कले परस्परे जब । ९ ।

सरलार्थ--रामचन्द्र ने स्पर्श मात्र से ही शिवधनुष को इसी प्रकार तोड़ डाला, जैसे चन्द्रमा अपनी किरणों से विरहियों का धैर्य भंग कर देता है । (९)

बइदेशी—विदेशी, विरही; अजगव—शिवधनु; जब—सहसा । (९)

वसुपति-पद्म मुदि लज्जाबळे ।
बसाइबे सीता-रोहिणीकि कोळे । १० ।

सरलार्थ—जिस प्रकार चन्द्रमा ने पद्मों को मुद्रित करके रोहिणी-नामक तारा को अपनी गोद में बैठाया था; उसी तरह रामचन्द्रजी ने भी अपनी वीरता द्वारा समूची पृथिवी के राजाओं के नेत्र-पद्मों को (लज्जा से) मुद्रित कर दिया है और अतिशीघ्र वे सीता को अपनी गोद में बैठायेंगे। (१०)

वसुपति—राजा। (१०)

विधिरेत जनक सागर सत।
विभंगर छळे तोष उच्छुळित। ११।

सरलार्थ—जिस प्रकार चन्द्रमा समुद्र से उत्पन्न होकर अपनी किरणों से उसे उछाल देता है, ठीक उसी प्रकार रामचन्द्र ने भी सगरवंशज राजा दशरथ से उत्पन्न होकर अपनी कीर्त्तिरूपी प्रभा के द्वारा उनके आनन्द-सागर को उद्वेलित कर दिया। (अर्थात् ऋषि शतानन्द से यह वार्त्ता सुनकर राजा विशेष आनन्दित हुए)। (११)

बेळा अतिक्रमि हेले स्नेहवार।
बिहरिले संगे मीन राशिवार। १२।

सरलार्थ—जिस प्रकार समुद्र उद्वेलित होते समय (उछलते समय) मीन आदि जलचर प्राणियों को अपने वक्षपर विहार कराके तीर (किनारे) को लाँघता है; उसी तरह दशरथ का प्रेमसिन्धु उमड़ पड़ा। आनन्द से वे इतने अधीर हो पड़े कि शुभाशुभ का विचार किये बिना मीन आदि बारह राशियों तथा रवि, सोम आदि सात दिवसों को अपने साथ लिये हुए मिथिला के लिए चल पड़े। (१२)

वार्भट कि गजयूथ भेळा हय।
बहित्र कि रथ भेक पत्तिचय। १३।

सरलार्थ—समुद्र में जिस प्रकार घड़ियाल, बेड़े (भेरे), पोत तथा मेंढक दीखते हैं, उसी प्राकर दशरथ जब शान से जा रहे थे, तब उनके साथ चलते हुए हाथी, घोड़े, रथ तथा पैदल सिपाही-समूह क्रमशः उसी प्रकार दिखाई पड़ते हैं। (इससे चतुरंग सेना के चलने की सूचना मिलती है)। (१३)

बार्भट—घड़ियाल; भेळा—बेड़ा, भेरे; हय—घोड़े; वहित्र—पोत; भेक—मेंढ़क; पत्तिचय—पैदल सिपाही-समूह। (१३)

बाद्यनाद गरजन तहिँ मेळ ।
बड़ बड़ लोक निश्चे पोतपाळ । १४ ।

सरलार्थ—समुद्र में लहरें गर्जन करती हैं; यहाँ भी वाद्य गरज रहे हैं। समुद्र में पोताध्यक्ष होते हैं; उसी तरह इस दल में वशिष्ठ, सुमन्त्र आदि बड़े-बड़े आदमी हैं। (१४)

बन्दर ये मिथिळा मिळिबे याइँ ।
बिलोकिला क्षणि रामा-रत्न तहिँ । १५ ।
बोलिबे ये कि उपमाए अमूल्य ।
व्युत्पत्तिरे कवि कला एते मूल्य । १६ ।

सरलार्थ—यहाँ पर कवि ने मिथिलापुर की बन्दरगाह तथा वहाँ की रमणियों की रत्नों के रूप में कल्पना की है। राजा दशरथ मिथिलारूपी बन्दरगाह में उपस्थित होकर मिथिला के रमणी-रत्नों को वेखते ही कहेंगे कि इनकी इस जगत् में उपमाएँ हैं ही नहीं। बहुत सोच विचार करने पर भी उनका मूल्य निरूपित नहीं कर सके और मजबूरन उन्हें 'अमूल्य' आख्या दी। (जहाज के सौदागर बन्दरगाह पर मूल्य देकर रत्न खरीदते हैं। परन्तु मिथिला बन्दरगाह में प्राप्त रमणी-रत्न अमूल्य हैं)। (१५-१६)

बाकी ए दृष्टि जनक राजऋषि ।
वालमीकि, कौशिक, गौतम मिशि । १७ ।
वैखानसगण घेनि बाटे मेळा ।
वारानिधि संगम कि ऋषिकुल्या । १८ ।

सरलार्थ—राजर्षि जनक वाल्मीकि, विश्वामित्र, गौतम आदि ऋषियों को अपने साथ लिए हुए दशरथ से मिले, मानो बहुत उपनदियों सहित ऋषिकुल्या नदी समुद्र के सहित मिल रही हो। (१७-१८)

वैखानसगण—ऋषिलोग; वारानिधि—समुद्र; ऋषिकुल्या—गञ्जाम जिले में प्रवाहित एक नदी। (१७-१८)

विश्रामक सुखासन दूरे किछि ।
ब्रह्मपुत्रेक पुरुषोत्तम अछि । १९ ।

तैसे बाण सोडी रघुपती। अचूक आणि चपळत्वें। ६६ असो
चौघांचें मौंजीबंधन। गुरु वसिष्ठातें पुसोन। मिळवूनि
अपार ब्राह्मण। अजनंदन करिता जाहला। ६७ श्रीरामाचा
व्रतबंध होत। अष्टमा सिद्धि तेथें राबत। चारही दिवस-
पर्यंत। न्यून पदार्थ नसे कांहीं। ६८ यज्ञभोक्ता रघुनाथ। त्यास
ब्राह्मण घालिती यज्ञोपवीत। गायत्री मंत्र श्रीराम जपत।
वेदवंद्य महाराज जो। ६९ ऐसें जाहलिया व्रतबंधन।
वसिष्ठापासीं अनुदिन। चहूं वेदांचें अध्ययन। केलें संपूर्ण
चौघांहीं। ७० ज्यासी वर्णितां वेद वेडे। तो राम गुरूपाशीं
वेद पढे। अध्ययन सांगतां सांकडें। गुरूसी न पडे सर्वथा। ७१
यापरी द्वादश वर्षें तत्वतां। संपूर्ण जाहलीं रघुनाथा।
मग पुसोनि वसिष्ठ-दशरथा। श्रीराम तीर्था निघाला। ७२
ब्रह्मचर्य तीर्थाटण। करावें हें शास्त्रप्रमाण। हें जाणोनि
रघुनंदन। तीर्थाटणासी निघाला। ७३ तीर्थाटणा चौघे
जण। निघाले सवें अपार सैन्य। सवें दिधला सुमंत प्रधान।

अस्तु। गुरु वसिष्ठ से पूछकर अर्थात् उनसे अनुज्ञा प्राप्त कर अज-नन्दन दशरथ ने असंख्य ब्राह्मणों को एकत्रित कर (अपने) चारों (पुत्रों) का मौंजी-बन्धन (जनेऊ-समारोह) किया। ६७ जब श्रीराम का व्रतबन्ध (मौंजी-बन्धन) हो रहा था, तो वहाँ आठों सिद्धियाँ चार दिनों तक कष्ट उठा रही थीं; किसी पदार्थ की कमी नहीं थी। ६८ रघुनाथ राम (तो स्वयं) यज्ञभोक्ता हैं! (और) उन्हें ब्राह्मण यज्ञोपवीत (जनेऊ) पहनाते हैं! जो स्वयं वेदों के लिए वन्दनीय हैं, वे श्रीराम गायत्री मंत्र का जाप करते हैं। ६९ ऐसा व्रत-बन्ध होने पर, चारों (राजपुत्रों) ने वसिष्ठ के पास (रहते हुए) चारों वेदों का अध्ययन सम्पूर्ण किया। ७० जिसका वर्णन करते-करते वेद मूढ़ हो गये, वे श्रीराम गुरु से वेद पढ़ते हैं। (फिर भी) अध्ययन (के लिये पाठ) बताते हुए गुरु को बिलकुल कठिनाई नहीं हुई। ७१ इस प्रकार रघुनाथ को तत्त्वतः बारह वर्ष हो गये। फिर वसिष्ठ और दशरथ से पूछकर (अर्थात् अनुज्ञा प्राप्त कर) श्रीराम तीर्थयात्रा के लिए निकले। ७२ ब्रह्मचर्याश्रम में तीर्थयात्रा करें—यह शास्त्रों का वचन है। यह जानकर रघुनाथ राम तीर्थाटन के लिए निकले। ७३ जब चारों जने तीर्थाटन के लिए चले, तो साथ में अपार सेना (भी) निकली। (राजा ने) साथ में मंत्री सुमन्त को अपार धन बाँट देने के लिए भेज दिया। ७४

असंख्य धन वांटावया । ७४ सवत्स गायींचे भार । नाना वस्त्रें अलंकार । तीर्थीं वांटी श्रीरघुवीर । याचकांसी सन्मानें । ७५ ज्या तीर्थाचा महिमा जैसा पूर्ण । श्रीराम करी तैसेंच विधान । ज्याचेनि सकळ तीर्थें पावन । तो रघुनंदन तीर्थें हिंडे । ७६ लोकसंग्रहाकारण । तीर्थें हिंडे रघुनंदन । तीं तीर्थें करा श्रवण । संत श्रोते सर्वही । ७७ काशीविश्वेश्वर निर्मळ । त्र्यंबक उज्जनी महाकाळ । ओंकार महाबळेश्वर जाश्वनीळ । बदरी-केदार घृष्णेश्वर पैं । ७८ नागनाथ वैजनाथ थोर । मल्लिकार्जुन भीमाशंकर । सोमनाथ रामेश्वर । ज्योतिर्लिंगें द्वादश हीं । ७९ अयोध्या मथुरा हरिहर । काशी कांची अवंतिका नगर । द्वारावती गोमती-तीर । सप्त पुऱ्या अनुक्रमें । ८० तीर्थराज मुख्य त्रिवेणी । पंचप्रयाग पुण्यखाणी । ब्रह्मप्रयाग कर्णप्रयाग अघहरणी । गुप्तप्रयाग समर्थ । ८१ देवप्रयाग शिवप्रयाग पापहरण । नैमिषारण्य धर्मारण्य पंचकारण्य । ब्रह्मारण्य वेदारण्य ।

श्रीरघुनाथ राम तीर्थक्षेत्रों में याचकों को सवत्स गायों के समुदाय, अनेक (प्रकार के) वस्त्र और आभूषण सम्मानपूर्वक बाँट देते । ७५ जिस तीर्थ क्षेत्र की जैसी उच्च महिमा रही, उसके अनुसार श्रीराम विधियाँ (सम्पन्न) करते । जिनसे समस्त तीर्थक्षेत्र पावन होते हैं, वे रघुनन्दन राम (स्वयं) तीर्थक्षेत्रों में भ्रमण कर रहे हैं । ७६ लोकसंग्रह करने के हेतु श्रीराम तीर्थक्षेत्रों की यात्रा करते हैं । समस्त सन्त श्रोताओ, उन तीर्थों (के नामों) को सुनो । ७७ काशी-क्षेत्रस्थ पवित्र विश्वेश्वर (विश्वनाथ), त्र्यम्बकेश्वर, उज्जयिनी के महाकालेश्वर, ओंकार मान्धाता के महाबलेश्वर शिव, बदरी केदार, घृष्णेश्वर, नागनाथ, वैजनाथ, मल्लिकार्जुन, भीमाशंकर, सोमनाथ, रामेश्वर—ये बारह ज्योतिर्लिंग हैं (जिनकी यात्रा श्रीराम ने की) । ७८-७९ अयोध्या, मथुरा, हरिहर (माया-हरिद्वार), काशी, कांची, अवंतिका (उज्जयिनी) और गोमती-तटस्थ द्वारावती—क्रमसे ये सात पुरियाँ (नगरियाँ) हैं (जिनकी यात्रा श्रीराम ने की) । ८० मुख्य है तीर्थराज त्रिवेणी (गंगा-यमुना-सरस्वती का संगम-स्थान-प्रयाग) । पुण्य की मानो जो खानें हैं ऐसे पाँच प्रयाग —ब्रह्मप्रयाग, पाप का हरण करनेवाला कर्णप्रयाग सामर्थ्यशील गुप्तप्रयाग, देवप्रयाग, पापहारी शिवप्रयाग । नैमिषारण्य, धर्मारण्य, चम्पकारण्य,

बदरिकाश्रम पावन तो । ८२ यमुना सरस्वती भागीरथी ।
गौतमी गोमती कृष्णा भीमरथी । तापी नर्मदा भोगावती ।
प्रवरा पुण्यवती मंदाकिनी । ८३ आनंदवर्धनी पयोष्णी ।
पिनाकी तुंगा कल्मषनाशिनी । कृतमाळा कावेरी पयस्विनी ।
सुवर्णमुखी सुमाळा । ८४ कपिला ताम्रपर्णी शरावती ।
तुंगभद्रा सोमवती । सावित्री रेवा कुंकुमवती । वेण्या वेदवती
मलप्रहरा । ८५ घटप्रहरा नंदिनी नलिनी । गंडकी शरयू
वैतरणी । सोमनद शिवनद तापहरणी । सोमभद्र नदेश्वर । ८६
अरुणा वरुणा प्राची पुरंदरी । वेत्रवती सप्तउरगा कर्णकुमरी ।
स्वामिकार्तिका पंचघृताची पृथ्वीवरी । विख्यात प्रवाह जयांचे । ८७
वज्रकाळिका श्रमहारिणी । महेंद्रकाळी त्रिशूळी मंत्रवर्धिनी ।
नीरावती सुरनदी शंखोद्धारिणी । जयंती आणि अहिर्णवी । ८८
नाटकी आणि अलकनंदा । फल्गु सर्वांतका त्रिपदा । शांता
बाणनदी सुखदा । अनुक्रमें नद्या सर्वही । ८९ शेषाद्रि आणि
ब्रह्माद्रि । मूळपीठ पर्वत सिंहाद्रि । विंध्याद्रि आणि हेमाद्रि ।
मानससरोवरीं स्नान दान । ९० अरुणाचळ आनंदवन ।

ब्रह्मारण्य, वेदारण्य—ये पाँच अरण्य । वह पवित्र बदरिकाश्रम—इन तीर्थों की यात्रा राम ने बन्धुओं सहित की । ८१-८२

यमुना, सरस्वती, भागीरथी (गंगा), गौतमी, गोमती, कृष्णा, भीमरथी, तापी, नर्मदा, भोगावती, प्रवरा, पुण्यवती मन्दाकिनी, आनन्दवर्धिनी पयोष्णी, पिनाकी, तुंगा, कल्मष-नाशिनी, कृतमाला, कावेरी, पयस्विनी, सुवर्णमुखी, सुमाला, कपिला, ताम्रपर्णी, शरावती, तुंगभद्रा, सोमवती, सावित्री, रेवा, कुंकुमवती, वेण्णा, वेदावती, मलप्रहरा, घटप्रहरा, नंदिनी, नलिनी गंडकी, सरयू, वैतरिणी, सोमनद, शिवनद, तापहरणी, नदेश्वर सोनभद्र, अरुणा, वरुणा, प्राची, पुरन्दरी, वेत्रवती, सप्तउरगा, कर्णकुमारी, स्वामिकार्तिकी, पंचघृताची, (—ये नदियाँ हैं)। पृथ्वी में इनके प्रवाह विख्यात हैं। ८३-८७ श्रमहारिणी वज्रकालिका, महेन्द्रकाली, त्रिशूल, मंत्रवर्धिनी, नीरावती, सुरनदी, शंखोद्धारिणी, जयन्ती और अहिर्णवी, नाटकी-और अलकनन्दा, फल्गु, सर्वान्तका, त्रिपदा, शान्ता, बाणनदी, सुखदा—क्रम से ये सभी नदियाँ हैं, (जिनकी) यात्रा श्रीराम ने बन्धुओं-सहित की । ८८-८९

शेषाद्रि और ब्रह्माद्रि, मूलपीठ पर्वत सिंहाद्रि, विंध्याद्रि और

कमलालया चिदंबरी पूर्ण। अगस्त्याश्रम पावन। श्रीरंगपट्टण शोभिवंत। ९१ जनार्दन कन्याकुमारी। शिवकांची विष्णु-कांची सुंदरी। मत्स्यतीर्थ पक्षितीर्थ पृथ्वीवरी। शंखोद्धार वेदोद्धार। ९२ हिरण्यनदी संध्यावट। ब्रह्मावर्त धर्मस्तंभ सुभट। ब्रह्मयोनि पृथूदक वरिष्ठ। कुरुक्षेत्र बिंदुतीर्थ पैं। ९३ धर्मालय कलापग्राम। गंगासागर सिंधुसंगम। कौंडिण्यपुर अंबिका परम। प्रेमपूर मार्तंड। ९४ बाळकल्होळा कमलेश्वरी। विराट्स्वरूपिणी रक्तांबरी। भ्रमरांबिका ज्वाळामुखी सुंदरी। पीतांबरी महाशक्ति। ९५ जोगलादेवी भैरवी। करवीरवासिनी शांभवी। सप्तश्रृंगी महारुद्रा देवी। हिंगुळजा आणि कमळजा। ९६ चांगदेव मोरेश्वर। गुप्तकेदार वटेश्वर। अक्षयवट कुशतीर्थ पवित्र। त्रिकूटाचळ सुंदर पैं। ९७ हरिहरेश्वर नृसिंहपूर। मूळमाधव ज्ञानेश्वर। चक्रपाणि कदंब भुलेश्वर। जुनाट नागेंद्र गौतमेश्वर तो। ९८ सप्तयोजनें कोटेश्वर। सिद्धवट धूतपाप रामेश्वर। दक्षिणप्रयाग माधवे-श्वर। पूर्वसागर तीर्थराज। ९९ वैराट पुष्कर महाबळेश्वर। धूळखेटक शंकर नारायणपुर। मलयेश्वर पांचाळेश्वर। सत्यनाथ पूर्णालय। १०० सिंधुपुर महामुंडेश्वर। भीमाशंकर

हेमाद्रि पर्वत की यात्रा करके श्रीराम ने मानसरोवर में स्नान किया और दान दिये। ९०

(इसके पश्चात् कवि ने अनेकानेक पर्वत, नदियाँ, तीर्थक्षेत्र तथा देवियाँ आदि के नाम गिनाये हैं। उनमें से प्रमुख नीचे लिखे अनुसार हैं—)

अरुणाचल, आनन्दवन, कमलालय, चिदम्बरी, अगस्त्य ऋषि का आश्रम, श्रीरंगपट्टम, कन्याकुमारी, शिवकांची, विष्णुकांची, मत्स्यतीर्थ, पक्षितीर्थ, हिरण्यनदी, संध्यावट, ब्रह्मावर्त, पृथूदक, कुरुक्षेत्र, बिन्दुतीर्थ, कलापग्राम, गंगासागर, कौंडिण्यपुर, मार्तण्ड, कमलेश्वरी, रक्ताम्बरी, महाशक्ति, जोगलादेवी, करवीरवासिनी, सप्तश्रृंगी, हिंगुलजा, कमलजा, गुप्तकेदार, अक्षयवट, कुशतीर्थ, त्रिकूटाचल, हरिहरेश्वर, भुलेश्वर, गौतमेश्वर, कोटेश्वर धूतपापेश्वर, रामेश्वर, दक्षिणप्रयाग, वैराट, पुष्कर, महाबलेश्वर, मलयेश्वर, पांचालेश्वर, सत्यनाथ, सिंधुपुर, महामुंडेश्वर, भीमाशंकर, धोपेश्वर, सोरठी सोमनाथ, गोरक्षमठ, वेदपुर, गया,

योगेश्वर। सोरटीसोमनाथ लिंग थोर। भीमचंडी पुण्यालयें। १
शिवकांची विष्णुकांची। गोरक्षमठ आश्रम काळ हरती। वेदपुर
गया अरुणावती। उडूपी शेषशायी सर्वेश। २ त्रिपती अहोबळ
स्वामीकार्तिक सत्य। सुब्रह्मण्य किष्किधा मातंग पर्वत।
हंपीविरूपाक्ष मूर्तिमंत। पंपासरोवर निर्मळ। ३ चित्रकूट
रुक्मकूट लोणार। अंबु अयोध्या महंकापुर। काळचंद्रिका
अर्धोदय पवित्र। गोकर्ण कृष्णासागर पैं। ४ हरिहरतीर्थ
जंबुकेश्वर। अनंतशायी विमळेश्वर। मथुरा विकर्ण प्रभाकर।
विश्रांतिवन तपोवन। ५ कुंभकोण मंजरथ। मातुलिंग धूळखेट
त्रिविक्रम तीर्थ। मुद्गल मांधाता अंवढ्या-नागनाथ। पंढरी-
क्षेत्र चंद्रभागा। ६ त्रिकोण आणि कर्णमूळ। नागरगौर
रंगजुगुळ। आशापुरी नेपाळ त्रिमल्ल। मंथनकाळेश्वर
कुशतर्पण। ७ मीनाक्षी कामाक्षी मातुलिंग थोर। सीता
असीता चिदंबरेश्वर। ब्रह्मकटाह हरिद्वार। आदित्यवैश्वानर
महातीर्थ। ८ ब्रह्मानंद म्हणे श्रीकटाधर। इतुकीं तीर्थें करूनि
रघुवीर। अयोध्येसी दीनोद्धार। परतोनि आला गजरेंसीं। ९
वसिष्ठासी साष्टांग नमन। दशरथाचे चरण वंदून। तिघी
मातांसी रघुनंदन। करी नमन अभेदत्वें। ११० तीर्थें करोनि
आलिया श्रीराम। सदा विरक्त आणि निष्काम। नावडे
लौकिक संभ्रम। वैराग्य पूर्ण बाणलें। ११ षड्रस अन्न

अरुणावती, उडुपी, किष्किन्धा पर्वत, मातंग पर्वत, हंपीविरूपाक्ष, पंपासरोवर, चित्रकूट, रुक्मकूट, गोकर्ण, हरिहरतीर्थ, मथुरा, कुम्भकोण, त्रिविक्रमतीर्थ, मांधाता, आंवढ्या-नागनाथ, चंद्रभागा-तटस्थ पंढरपुर, त्रिमल्ल, मथन-कालेश्वर, मीनाक्षी, कामाक्षी, हरिद्वार, इत्यादि। ९१-१०८

ब्रह्मानन्द कहते हैं—दीनों के उद्धारक रघुवीर राम इतने तीर्थक्षेत्रों की यात्रा करके गाजे-बाजे के साथ अयोध्या लौट आये। १०९ उन्होंने वसिष्ठ को साष्टांग नमस्कार किया। दशरथ के चरणों का वन्दन कर रघुनन्दन (श्रीराम) ने अभेद-भाव (सब के प्रति समान भाव) पूर्वक तीनों माताओं को नमस्कार किया। ११० तीर्थों की यात्रा करके आने पर श्रीराम नित्य विरक्त और निष्काम (कामना-रहित) रहते हैं। उन्हें लौकिक मान-सम्मान नहीं भाता। (उनके) चित्त में वैराग्य जम गया। १११ छह रसों से युक्त भोज्य पदार्थ, उत्तम आसन,

उत्तमासन। हास्य विनोद शृंगार गायन। नावडे मृगया गमनागमन। एकांत पूर्ण आवडे। १२ नावडे स्त्रियांशीं संभाषण। नेणे कामिनींचें विलोकन। नासाग्रीं दृष्टि ठेवून। आनंदघन डोलत। १३ याचि प्रकारें तिघे बंधू। महाविरक्त निष्काम साधू। श्रीराम-सेवा करितां आनंदू। तिघांसही सर्वदा। १४ तंव तो प्रतिसृष्टि करणार। सिद्धाश्रमी गाधिपुत्र। महातपस्वी विश्वामित्र। अयोध्येसी पातला। १५ आला ऐकोनि गाधिसुत। समोरा धांवे दशरथ। साष्टांग करोनि प्रणिपात। क्षेमालिंगन दीधलें। १६ दृष्टीं देखोनि ब्राह्मण। जो न उठे करी अपमान। त्याच्या आयुष्या होय खंडण। आलें मरण जवळी त्या। १७ जो ब्राह्मणासी नेदी अभ्युत्थान। तो दुसरे जन्मीं होय श्वान। विघ्नें शोधीत येती त्याचें सदन। कोठें नांदतो म्हणोनियां। १८ तैसा नव्हे राजा दशरथ। महाराज केवळ ब्राह्मणभक्त। कौशिकाचा

हास्य-विनोद, शृंगार, गायन, शिकार के लिए आना-जाना उन्हें पसन्द नहीं आता ; (उन्हें) पूर्ण एकान्त अच्छा लगता। ११२ (उन्हें) स्त्रियों के साथ सम्भाषण (करना) नहीं भाता, कामिनी के दर्शन वे नहीं जानते। वे आनन्दघन राम नाक के अग्र पर दृष्टि लगाये झूमते (रहते)। ११३ इसी प्रकार (लक्ष्मण, भरत और शत्रुघ्न—ये) तीनों बन्धु महाविरक्त, निष्काम साधु हो गये। (उन) तीनों को हमेशा राम की सेवा करते हुए आनन्द आता। ११४

तब प्रतिसृष्टि के निर्माता, सिद्धाश्रम के निवासी, गाधि से उत्पन्न पुत्र महातपस्वी विश्वामित्र अयोध्या (में) आ पहुँचे। ११५ गाधि-पुत्र (विश्वामित्र) आये—यह सुनकर दशरथ (उनकी अगवानी के लिए) सामने दौड़े गये। उन्हें साष्टांग नमस्कार करके उनका क्षेमालिंगन किया। ११६ ब्राह्मण को दृष्टि से देखकर जो नहीं उठता, उसका अपमान करता है, उसकी आयु खण्डित हो जाती है। मौत उसके निकट आयी (आती) है। ११७ जो ब्राह्मण के स्वागत के लिए (आदर-पूर्वक) नहीं उठता, वह दूसरे (अर्थात् आगामी) जन्म में कुत्ता हो जाता है। यह कहते हुए कि वह कहाँ निवास करता है, संकट उसका घर खोजते हुए आते हैं। ११८ राजा दशरथ ऐसे पुरुष नहीं। (वे) महाराज तो मात्र ब्राह्मण-भक्त हैं। कौशिक (विश्वामित्र) का हाथ पकड़कर

धरोनि हात। सिंहासनीं बैसविला। १९ वस्त्रालंकारादि
उपचार। देऊनि पूजिला विश्वामित्र। मानसीं भावी
अजपुत्र। धन्य दिवस आजिचा। १२० ऋषीस म्हणे
दशरथ। आजि मज हर्ष वाटे बहुत। तुझे पुरवीन
मनोरथ। कांहीं इच्छित माग आतां। २१ म्हणोनि
केला नमस्कार। मग आशीर्वाद देत विश्वामित्र। सूर्यवंश-
भूषण तूं उदार। अनंत कल्याण तुजला हो। १२२
तुष्टि पुष्टि तुजलागीं बहुत। धर्म ऐश्वर्यवृद्धि अद्भुत।
सार्थकायुष्य सुख समस्त। तुजप्रति हो दशरथा। २३ विवेक-
ज्ञानसमृद्धि बहुत। विप्र-विष्णु-भक्ति घडो सतत। प्रताप
प्रज्ञा यशवंत। सुभद्र अत्यंत तुजलागीं हो। २४ तव शत्रुक्षय
हो कां बहुत। अक्षय कल्याणपद हो कां प्राप्त। भूतदया
घडो सतत। कुळवृद्धि बहुत हो कां तूतें। २५ चिंतित हो
पूर्ण मनोरथ। सर्व अरिष्ट हो कां शांत। सर्वाभीष्ट हो
तुज प्राप्त। रविकुलअवतंसा। २६ निर्दोष यश वाढो बहुत।

उन्होंने उन्हें सिंहासन पर बैठाया। ११९ उन्होंने वस्त्र, अलंकार आदि उपचार देकर (पूर्वक) उनका पूजन किया। अजपुत्र दशरथ ने (आज के) इस दिन को धन्य माना। १२० दशरथ ने ऋषि (विश्वामित्र) से कहा—'आज मुझे बहुत हर्ष (अनुभव) हो रहा है। मैं तुम्हारे मनोरथ पूर्ण करूँगा (इसलिए) अब कुछ इच्छित माँग लो।' १२१ (ऐसा) कहकर (दशरथ ने) विश्वामित्र को नमस्कार किया; फिर विश्वामित्र ने आशीर्वाद दिया कि सूर्यवंश के भूषण तुम उदार हो; तुम्हारा अनन्त कल्याण हो जाए। तुम्हें तुष्टि (सन्तोष), पुष्टि बहुत प्राप्त हो जाए; धर्म और ऐश्वर्य की अद्भुत वृद्धि हो जाए। हे दशरथ, कृतकृत्य आयु और समस्त सुख तुम्हें प्राप्त हो जाएँ। १२२-१२३ तुम्हें विवेक ज्ञान और बहुत समृद्धि का लाभ हो जाए; सतत ब्राह्मणों और विष्णु की भक्ति प्राप्त हो जाए। प्रताप, बुद्धि और यश से तुम युक्त हो जाओ। तुम्हारा अत्यन्त कल्याण हो जाए। १२४ तुम्हारे शत्रुओं का बहुत (पूर्ण) क्षय हो जाए; तुम्हें अक्षय कल्याण (कारी) पद प्राप्त हो जाए। तुमसे सतत प्राणियों के प्रति दया (का व्यवहार) हो जाए; तुम्हें कुल की बहुत वृद्धि का लाभ हो जाए। १२५ हे सूर्यकुल के भूषण, (तुम्हारे) इच्छित मनोरथ पूर्ण हो जाएँ। सब अरिष्ट शान्त हो जाएँ और सब अभीष्ट (बातें) तुम्हें प्राप्त हो जाएँ। १२६ तुम्हारी

तव कीर्ति वर्णोत साधुसंत। याचकांचे मनोरथ। पुरोत सर्व तुझेनि। २७ अनाचारीं नसो आदर। संतभजनीं होई तूं सादर। माझे आशीर्वाद समग्र। सुफळ होवोत तुज राया। २८ सुबुद्धि उपजो तुझे हृदयीं। ब्राह्मणांचे आशीर्वाद घेईं। माझें चिंतित कार्य सर्वही। हो तुझेनि समस्त। २९ मी मागत नाहीं संपत्ति धन। नलगे राज्य सिंहासन। माझा मख मोडिती राक्षस येऊन। देईं रघुनंदन रक्षावया। १३० सिद्धि न पावे कदा यज्ञ। मारीच सुबाहु ताटिका येऊन। जाती होमद्रव्यें भक्षून। देईं रघुनंदन रक्षावया। ३१ कुंड वेदिका मोडून। यज्ञपात्रें टाकिती फोडून। मखमंडपासी लाविती अग्न। देईं रघुनंदन रक्षावया। ३२ मनुष्यांचें अस्थिमांस आणून। अकस्मात टाकिती वरून। गिळिले तिहीं असंख्य ब्राह्मण। देईं रघुनंदन रक्षावया। ३३ ऐकोनि ऋषीचा वचनार्थ। भयभीत जाहला दशरथ। वाटे अंगावरी

दोष-रहित (शुद्ध) सफलता वृद्धि को प्राप्त हो जाए। साधु-सन्त तुम्हारी कीर्ति का वर्णन (बखान) करें। तुम्हारे द्वारा याचकों के सब मनोरथ पूर्ण हो जाएँ। १२७ तुम्हें अनाचार (अनीतिमय व्यवहार) के प्रति आदर न हो जाए। सन्तों के भजन (भक्ति) में तुम तत्पर हो जाओ। हे राजा, मेरे समस्त आशीर्वाद तुम्हारे प्रति सुफल हो जाएँ। १२८ तुम्हारे हृदय में सुबुद्धि उत्पन्न हो जाए। ब्राह्मणों के आशीर्वाद लो (तुम्हें प्राप्त हो जाएँ)। (मेरे) इच्छित सब कार्य तुम्हारे द्वारा सम्पूर्ण सम्पन्न हो जाएँ। १२९ मैं सम्पत्ति और धन नहीं माँगता। (मुझे) राज्य और सिंहासन की आवश्यकता नहीं है। राक्षस आकर मेरा यज्ञ ध्वस्त करते हैं। (इसलिए हे राजा, तुम उसकी) रक्षा करने के लिए श्रीराम को (भेज) दो। १३० (मेरा) यज्ञ कभी सिद्धि (पूर्णता) को प्राप्त नहीं हो रहा है। मारीच, सुबाहु और ताड़का आकर होम (के लिए एकत्रित) वस्तुओं को खाकर चले जाते हैं। (अतः उसकी) रक्षा करने के लिए राम को (मुझे) दो। १३१ (यज्ञ के) कुण्ड और वेदिका को ध्वस्त कर वे यज्ञ-पात्रों को तोड़ डालते हैं। वे यज्ञ-मण्डप में आग लगाते हैं। (अतः उसकी) रक्षा करने के लिए राम को (मुझे) दो। १३२ मनुष्यों की हड्डियाँ और मांस लाकर वे अकस्मात् ऊपर से गिरा देते हैं। उन्होंने असंख्य ब्राह्मणों को निगल डाला। (अतः उसकी) रक्षा करने के लिए श्रीराम को (मुझे) दो। १३३

नभैल सुबुद्धि इटो जनक राजार * किसक करिल हेनमत अंगीकार
धनुत लगाइबे गुण नपारिले केवे * जानिलोहो जीयेकक निबे महादेवे २८
आमि सबे गृहक नयाइबो एतिक्षण * धनुत लगाइबे गुण चाहो कोन जन
एहि बुलि गोष्ठि करि यतेक नृपति * सयम्बर सभा माजे आछन्त सम्प्रति २९
आमि चलि याओं आसा सेइ समज्याक * पारिबा धनुत तुमि गुण लगाइबाक
तोमार बिक्रम राम कहिबोहो किक * धनु भांगि बिबाह करियो जानकीक ३०
जानकीर सयम्बर शुनि अनुपाम * हासिया ऋषिक पाचे बुलिलन्त राम
शुना ऋषिराज मइ कहो स्वरूपत * पितृ पठाइ दिया आछे तोमार लगत ३१
यि कार्य्यक लागि तुमि पाञ्चाहा आमाक * अवश्येक लागे मोर ताके करिबाक
बुलिलाहा याओं तयु संगे मिथिलाक * केनमत धनुखान देखिबोहो ताक ३२
रामर बचने बिश्वामित्र रंग भैला * राम लक्ष्मणक ऋषिराज लगे लैला
कुतूहले मिथिलाक करिला गमन * पिचत चलिला असंख्यात शिष्यगण१०३३
कत दूर यान्ते भैला सूर्य अस्तगत * रहिलन्त गैया एक नदीर कुलत

कान्यकुब्ज देशर बृत्तान्त

ऋषित पुछिला राम करिया सादर * कार इटो राज्य कहियोक मुनिबर१०३४
मुनिये बोलन्त राम शुनियो हरिषि * कुशध्वज नामे आछिलन्त राज ऋषि
उपजिल तान घरे कन्या एक शत * विद्याधरी सबे सम नुहिके रूपत ३५

राजा जनक की यह कोई सुबुद्धि नहीं है। किस तरह उन्होंने ऐसी प्रतिज्ञा कर डाली। कोई भी अगर धनुष पर चिल्ला नहीं चढ़ा सका तो जान लो बेटी को महादेव ही ले जाँयगे ॥ १०२८ ॥ इस समय हम लोग घर नहीं जाएँगे। धनुष में कौन व्यक्ति चिल्ला चढाना चाहता है, यह कह कर सभी राजा लोग गुट बनाकर स्वयंवर-सभा के बीच इस समय बैठे हैं ॥ १०२९ ॥ मैं उस समाज में चलूँगा। तुम धनुष पर चिल्ला चढ़ा सकोगे। राम तुम्हारे पराक्रम के बारे में भला क्या बताऊँ। तुम धनुष तोड़कर जानकी से विवाह करना ॥ १०३० ॥ इसके पश्चात् जानकी के अनुपम स्वयंवर की बात सुनकर राम ने ऋषि से कहा, सुनो ऋषिराज, मैं आपसे साफ-साफ कहता हूँ। पिता जी ने मुझको आप के साथ भेजा है ॥ १०३१ ॥ जिस कार्य के लिए भी आप मुझे भेजोगे वह करना मेरे लिए आवश्यक है। आपने अपने साथ मिथिला चलने के लिए कहा है। वह धनुष कैसा है, मैं उसको देखना चाहता हूँ ॥ १०३२ ॥ राम के वाक्य सुनकर विश्वामित्र को बड़ा आनन्द आया। ऋषिराज ने राम-लक्ष्मण को साथ ले लिया। और कौतूहल से मिथिला के लिए चल पड़े। उनके पीछे-पीछे असंख्य शिष्य भी चले ॥ १०३३ ॥ कितनी ही दूर जाने के बाद सूर्य अस्त हो गया। वे जाकर एक नदी के तट पर ठहर गये।

कान्यकुब्ज देश का वृत्तान्त

राम ने ऋषि से सादर पूछा, हे मुनिवर बताएँ यह किसका राज्य है ॥ १०३४ ॥ मुनि ने कहा, राम आनन्द से सुनो। कुशध्वज नामक एक राजर्षि थे। उनके घर में सौ कन्याओं ने जन्म लिया। रूप में सभी विद्याधरियाँ भी उनके समान

नृत्य-गीत करि सदा थाके पुष्पबने * देखि कामे बिमोहित भैलन्त पवने
आसिलन्त बायु पाचे तासम्बार पाश * करिलन्त कन्यागणे ताहांक निराश ३६
देखि कोप करि बायु उनपंचाशत * भांगिलन्त मध्यदेह पशि शरीरत
कान्यकुब्ज नाम देश भैल सेहि धरि * कुशध्वजे मनत आछन्त चिन्ता करि ३७
ताहान पाशक आइल ऋषि ब्रह्मदत * ताहांक दिलन्त दान कन्या एकशत
तुष्ट भैला ब्रह्मदत्त पाया कन्यागण * हरिषे बुलिला कुशध्वजक बचन ३८
हैबेक तोमार एक तनय उत्तम * एहि बुलि गैया ऋषि आपोन आश्रम
हरिषे आछन्त कुशध्वज महाशय * भैलन्त सुपाशु नामे ताहान तनय ३९
कुशनाभ नामे पुत्र भैल सुपाशुर * भैलन्त ताहान गाधि नामे पुत्रबर
आमार जनक गाधि जाना महाशय * विश्वामित्र नामे आमि गाधिर तनय१०४०
वंशावली कथा राम कहिले निशेष * कान्यकुब्ज नामे आमासार निज देश

उनपंचाशत बायुर उत्पत्ति बिबरण

पुनरपि रामे कथा पुछिला ऋषित * एक लोकपाल बायु जगते बिदित१०४१
किमते पवन भैला उनपंचाशत * शुनि विश्वामित्रे कथा कहन्त राभत
आछन्त काश्यप मरीचित हन्ते हुइ * दिति आरु अदिति ताहान भार्या दुइ ४२
काश्यपक सेवा दुयो करे अनुक्षण * दुइत हन्ते उपजिल देवासुरगण
अदितित हन्ते देवगण भैला जात * दितित असुर भैला जगते प्रख्यात ४३

नहीं थीं ।। १०३५ ।। वे पुष्प-वाटिका में रहती हुई सदा नृत्य-गीत किया करती थीं। उनको देखकर पवन कामातुर हो गया। पवन उन सबके निकट आया, लेकिन कन्याओं ने उसको निराश किया ।। १०३६ ।। यह देखकर उनचासों पवन क्रोधित हो उनके शरीर में प्रवेश कर गये और उनके शरीर के मध्य भाग को टेढ़ा कर डाला। तभी से इस देश का नाम कान्यकुब्ज पड़ गया। कन्याओं को कुबड़ी देखकर कुशध्वज मन में अत्यन्त चिन्तित हो गये ।। १०३७ ।। एक बार ऋषि ब्रह्मदत्त उनके पास आए। तब उन्होंने उनको एक सौ कन्याएँ दान में दे दीं। कन्याओं को प्राप्त कर ऋषि ब्रह्मदत्त बड़े तुष्ट हुए। उन्होंने प्रसन्न होकर कुशध्वज से कहा, ।। १०३८ ।। हे राजन्! तुमको एक उत्तम पुत्र प्राप्त होगा। यह कहकर ऋषि अपने आश्रम चले गये। कुशध्वज महाशय बड़े आनन्द से रहने लगे। कुछ समय बाद उनके सुपाशु नामक एक पुत्र हुआ ।। १०३९ ।। हे राम! मैंने वंशावली की कथा पूरी कह सुनाई। कान्यकुब्ज नाम से प्रसिद्ध यह हम लोगों का देश है ।। १०४० ।।

उनचास पवनों की उत्पत्ति का विवरण

फिर राम ने ऋषि से पूछा। वायु एक लोकपाल के रूप में जगत् में विदित है ।। १०४१ ।। पवन किस प्रकार से उनचास बन गये। यह सुनकर विश्वामित्र ने राम से कहा, मरीचि राजर्षि से उत्पन्न कश्यप नामक प्रजापति थे। उनकी दो पत्नियाँ थी—दिति और अदिति ।। १०४२ ।। दोनों निरन्तर कश्यप की सेवा किया करती थीं। दोनों से देवों और असुरों का जन्म हुआ। अदिति से देवताओं ने जन्म लिया और दिति से असुरों ने, ऐसा ही संसार में प्रसिद्ध है ।। १०४३ ।।

सर्ब्बंकाले देवासुरे करय कन्दल * देवताक जिनिला असुर महाबल
पाचे देवताक शिक्षा दिला नारायण * भैल समबन्ति यत देवासुरगण ४४
करिला युगुति देवासुर निरन्तर * पाइ दिब्य अमृतक मथिला सागर
अजर अमर हैबो भुंजिया अमृत * एहि बुलि देवासुरे करि एक चित्त ४५
मथिलन्त गैया पाचे क्षीरोद सागर * करिल मथनि दांडि पर्ब्बत मन्दर
सर्पराज बासुकीक जरि करिलन्त * लांगुलर भिति देवगणे धरिलन्त ४६
दैत्यगणे टानि धरि सर्पर शिरत * उपजिल कालकूट बिष प्रथमत
देखि भय भैला देवासुर निरन्तरे * ताक पान करि जीर्ण करिलन्त हरे ४७
दिब्य नारी अपेस्वरागण भैला जात * तारे अनुचरी उपजिला असंख्यात
अपेस्वरा समस्तक देवगणे निल * देखि दैत्य सकलर असुख मिलिल ४८
उपजिल उच्चैश्रवा घोरा अनुपान * भैला जात कल्पतरु पारिजात नाम
आठ गोट दिग्गज भैलेक उपगत * उपजिल आसि गजराज ऐरावत ४९
दिब्यमणि कौस्तुभ जन्मिल तेजोमय * माधवर कंठ माजे प्रकाश करय
जगतजननी लक्ष्मी भैलन्त बेकत * बिष्णुक बरिया रहिलन्त हृदयत ५०
लैया मद्य कलस बारुणी उपजिल * गन्ध पाया दानव सकले ताक निल
अनन्तरे आसि उपजिला धन्वन्तरी * सम्पूर्ण अमृत घटे आछा हाते धरि ५१
देखि देव दानवर हरिष मिलिल * देवताक हेलि दैत्यगणे ताक निल
पाचे नारायणे दुख देखि देवतार * धरिलन्त माधवे मोहिनी अवतार ५२
कपटर छले बंचि दैत्य समस्तक * पियाइला अमृत हरि देवतासवक
अजर अमर देव भैला सेहि धरि * दैत्यक बधिला देवे घोर रण करि ५३

सदा से देव और असुर झगड़ते रहे। महाबली असुरों ने पहले देवताओं को जीत लिया। पीछे नारायण ने देवताओं को शिक्षा दी तो देव और असुर एक दूसरे के मित्र बन गये ॥ १०४४ ॥ फिर देवों और असुरों ने यह विचार किया कि सागर के मथने पर अमृत मिल सकता है। अमृत का सेवन कर हमलोग अजर-अमर बन जाएँगे—यह कहकर देवासुर एक-चित्त हो गये ॥ १०४५ ॥ इसके पश्चात् उन-लोगों ने जाकर क्षीरसागर को मथ डाला। मन्दर पर्वत को मथानी बनाकर सर्पराज वासुकी को रस्सी बना डाला। उनकी पूँछ की ओर देवतओं ने पकड़ा ॥ १०४६ ॥ दैत्यों ने साँप का सिर पकड़कर खींचा तो पहले ही काल-कूट विष उत्पन्न हुआ। यह देख कर देव और असुर दोनों डर गये। उसको शिवजी ने पीकर हजम कर डाला ॥ १०४७ ॥ फिर दिव्य नारी अप्सराएँ और उनकी असंख्य अनुचरियाँ उत्पन्न हुईं। सभी अप्सराओं को देवताओं ने ले लिया तो दैत्यों को बड़ा दुःख हुआ ॥ १०४८ ॥ फिर उच्चैःश्रवा नामक अनुपम घोड़ा उत्पन्न हुआ, पारिजात नामक कल्पवृक्ष भी उत्पन्न हुआ। पूरे आठ दिग्गज उत्पन्न हुए और गजराज ऐरावत ने भी जन्म लिया ॥ १०४९ ॥ आभामय दिव्यमणि कौस्तुभ उत्पन्न हुआ और माधव के कंठ में शोभा देने लगा। जगत्जननी लक्ष्मी आविर्भूत हुईं और विष्णु का वरण कर उनके हृदय में निवास करने लगीं ॥ १०५० ॥ फिर मदिरा का कलश लेकर वारुणी उत्पन्न हुई। गन्ध पाकर सभी दानवों ने उसे ले लिया। इसके अनन्तर हाथ में अमृत का पूर्ण-घट लिये हुए धन्वन्तरि उत्पन्न हुए ॥ १०५१ ॥ उन्हें देखकर देव-दानव दोनों हर्षमग्न हुए। देवताओं की उपेक्षा कर दैत्यों ने उस अमृत को उनसे ले लिया। बाद में जब नारायण ने देवताओं को दुखी देखा तो उन्होंने मोहिनी का रूप धारण कर लिया ॥ १०५२ ॥

शुनि दिति धरि काश्यपर चरणत * करन्त क्रन्दन देवी परम शोकत
किसक कान्दस देवी काश्यपे पुछिला * पाचे दिति काश्यपत दुख निवेदिला ५४
मोर पुत्रगणक मारिला पुरन्दर * अमृतक खाया भैला अजर अमर
नुगुचय मोर हृदयर पुत्रशोक * मोर पुत्र इन्द्र हौक बर दिया मोक ५५ ५५
बर दिया काश्यपे बुलिला हास्य करि * शुचि हुया गर्भ तुमि धरिबा सुन्दरी
नियमे थाकिबे पारा द्वादश बत्सर * हैबे तयु पुत्र इन्द्र दिलो मइ बर ५६
शुनि दिति काश्यप ऋषिक सेवा करि * शुचि हुया गर्भ पाचे धरिला सुन्दरी
हेन देखि पुरन्दर त्रास आति भैला * कपटे दितिक सेवा करिबाक लैला ५७
छिद्र पाइले आन गर्भ करिबो बिनाश * अहर्निश दितिर नछारे इन्द्र पाश
येतिक्षण येहि लागे योगान्त सकल * गर्भ नष्ट करिबाक नपावन्त छल ५८
गर्भभरे दिति नियमक पासरिला * मुक्तकेशे सन्ध्या बेला शयन करिला
शीयरे चरण दिया चरणके शिर * हेन छिद्र पाया हासिलन्त पुरन्दर ५९
माया बले गर्भत पशिला बज्र धरि * काटिलन्त छवालक सातखान करि
ताको सात सात खान करिल गर्भत * कान्दय छवाल हुआ उनपंचाशत ६०
चेतन लभिया दिति देखिला विस्मय * किसक मारस छावा इन्द्रक बोलय
शुनि इन्द्रे बुलिलन्त दितिक बचन * यि कारणे अनियमे करिला शयन ६१
सि कारणे गर्भ नष्ट करिलो तोमार * देव हुया थाकिबेक लगत आमार
बिश्बामित्रे बोले राम कहिलो बेकत * उनपंचाशत बायु भैला एहिमत ६२

अपने छल-कपट के द्वारा सारे दैत्यों को मोहित करते हुए नारायण ने सारे देवताओं को अमृत पिलाया। तभी से सारे देवता अजर-अमर बन गये। इसके बाद देवताओं ने घोर युद्ध करके दैत्यों का वध किया ॥ १०५३ ॥ यह सुनकर कश्यप के चरण पकड़कर दिति देवी परम शोक से रोने लगीं। कश्यप ने पूछा, देवी तुम क्यों रो रही हो। तब दिति ने कश्यप से अपना दुःख निवेदन किया ॥ १०५४ ॥ कि मेरे पुत्रों को इन्द्र ने मार डाला है और अमृत का सेवन कर वे अजर-अमर बन गये हैं। मेरे हृदय से पुत्र-शोक दूर नहीं हो रहा है। मुझको वर दो कि मेरा पुत्र इन्द्र बने ॥ १०५५ ॥ तब वर देकर कश्यप ने हँसते हुए कहा, हे सुन्दरी पवित्र होकर तुम गर्भ को धारण करना। यदि बारह वर्ष नियम से रह सको तो तुम्हारा पुत्र इन्द्र होगा, यह मैं वर देता हूँ ॥ १०५६ ॥ यह सुनकर दिति ने कश्यप ऋषि की सेवा की। इसके पश्चात् पवित्र होकर उसने गर्भ धारण किया। ऐसा देख कर इन्द्र बड़ा त्रस्त हो गया और छल से दिति की सेवा करने चल पड़ा ॥ १०५७ ॥ कोई भी छिद्र (कमी) मिल जाय तो गर्भ का नाश करूँगा, ऐसा सोचकर इन्द्र रातोंदिन दिति के निकट से नहीं हटता था। जब जो कुछ भी ज़रूरत पड़ती देता जाता, किन्तु गर्भ नष्ट करने का बहाना कोई भी नहीं मिल पाता ॥ १०५८ ॥ एक बार गर्भ के भार से दिति नियम भूल गई और संध्याबेला खुले बाल लेट गई। सिरहाने की ओर पैर और पैंताने की ओर सिर करके लेटी। ऐसा छिद्र (भूल) पाकर इन्द्र हँस पड़ा ॥ १०५९ ॥ माया के सहारे वज्र लेकर वह गर्भ में प्रवेश कर गया। फिर उस पुत्र को सात खंडों में काट डाला। फिर उन सात खंडों में एक-एक खंड को सात-सात बार काट डाला। रोते हुए वह पुत्र उनचास रूपों में बँट गया ॥ १०६० ॥ तब होश में आकर दिति ने विस्मय से देखा और इन्द्र से कहा तूने मेरे पुत्र को क्यों मारा ? यह सुनकर इन्द्र ने दिति से कहा, चूँकि तुम अनियम से लेटी हुई थीं ॥ १०६१ ॥ इसीलिए

बंचिला रजनी राम हेन कथा माते * तैरपरा चलि गैला रजनी प्रभाते
गौतमर आश्रमक देखि अनुपाम * कौतुके ऋषित कथा पुछिलन्त राम ६३
कार इटो आश्रम कहियो तपोधन * नाना फले-फूले देखिबाक सुशोभन
सर्ब्बशून्य आश्रम ने देखो एको प्राणी * ऋषिये बोलन्त राम शुनियोक वाणी१०६४
भाल सुमराइला राम कमललोचन * इठाइत तोमार किछु आछे प्रयोजन

अहल्यार-मुक्ति

पाचे राम लक्ष्मणक लैया ऋषिराज * प्रबेशिला गैया पाचे आश्रमर माज१०६५
गौतम ऋषिर शाप लभिया प्रचंड * आछन्त अहल्या सती हुया शिलाखंड
बिश्वामित्रे रामक बुलिला मृदुभावे * एहि शिलाखंड राम परशियो पावे ६६
शुनि रामे शिले मात्र परिशिला पाव * शाप एराइ अहल्या भैलन्त शुद्धभाव
ईश्वरर पदधूला जगत दुर्ल्लभ * महा महा महन्तर नुहिको सुलभ ६७
हेनय धूलाक सुखे अहल्या पाइलन्त * ताहान भाग्यर कोने कहिबेका अन्त
घोर ऋषिशाप एराइ प्रकाशन्त ज्योति * देखिया ऋषित रामे पुछिलन्त माति ६८
किबा नाम आन एन्ते भार्य्या बा काहार * परम सुन्दरी आति रूप चमत्कार
शिला हुया आछे केने शून्य आश्रमत * इहार कारण कहियोक स्वरूपत ६९

तुम्हारा गर्भ नष्ट कर डाला। वह देवता बनकर मेरे साथ-साथ रहा करेगा। विश्वामित्र ने राम से प्रकट रूप से कहा, इस प्रकार से पवन उनचास बन गया ॥ १०६२ ॥ इन बातों में राम ने रात्रि व्यतीत की। फिर सबेरा होते ही झटपट चल पड़े। गौतम का अनुपम आश्रम देखकर राम ने कौतुक से ऋषि से पूछा ॥ १०६३ ॥ हे तपोधन, यह बताना कि यह किसका आश्रम है। विभिन्न फल-फूलों से यह सुशोभित है। किन्तु आश्रम बिल्कुल निर्जन है, एक भी प्राणी नहीं दिखाई पड़ता। ऋषि ने राम से कहा, मेरा कहना सुनो ॥ १०६४ ॥ हे कमललोचन राम! तुमने भली याद दिलाई यहाँ तुम्हारी कुछ आवश्यकता है।

अहल्या की मुक्ति

इसके पश्चात् राम-लक्ष्मण को साथ लेकर ऋषिराज (विश्वामित्र) आश्रम के भीतर प्रवेश कर गये ॥ १०६५ ॥ गौतम ऋषि का प्रचंड शाप प्राप्त कर सती अहल्या शिला-खंड बनकर पड़ी है। विश्वामित्र ने राम से धीमे स्वर में कहा, हे राम! इस शिलाखंड को अपने पैरों से स्पर्श करो ॥ १०६६ ॥ यह सुनकर राम ने उस प्रस्तर-खंड को पैरों से स्पर्शमात्र किया, जिसके कारण शाप से मुक्त होकर अहल्या शुद्ध-सात्विक बन गई। ईश्वर की पद-धूलि संसार में दुर्लभ है—वह बड़े-बड़े महन्तों के लिए भी सुलभ नहीं ॥ १०६७ ॥ ऐसी धूलि (प्राप्त करने का) सुख जिस अहल्या को मिला, उसके भाग्य की सीमा को कौन बखान सकता है। ऋषि के भीषण शाप से मुक्त होकर (अहल्या) ज्योति फैलाने लगी। इसलिए राम ने ऋषि को बुलाकर उनसे पूछा ॥ १०६८ ॥ इनका शुभ नाम क्या है? यह किसकी भार्या हैं? यह तो परमसुन्दरी और रूपवती हैं। इस सूने आश्रम में आखिर शिला बनकर क्यों पड़ी हुई हैं? इसका कारण आप मुझे सच-सच बतावें ॥ १०६९ ॥ यह सुनकर विश्वामित्र ने राम को उत्तर दिया, इनका

शुनि विश्वामित्रे दिला रामक उत्तर * इहान अहल्या नाम भार्य्या गौतमर
महाऋषि गौतमक जगते जानय * तान तप देखि इन्द्र भैल महाभय ७०
रात्रि दिने माने तान सुख शान्ति नाइ * आन तप भंग करो कमन उपाय
इटो ऋषि येने तप करय दुर्घोर * कोन दिन इन्द्रपद काढ़ि लैबे मोर ७१
मदनक आनि पांचिलन्त पुरन्दर * येने तेने तप भंग करा गौतमर
शुनिया मदने बोले नपाओं आमि सास * जाज्वल्य वह्निन्त कोने करिबेक जास ७२
जीवन्त यमर कोने चापिबेक पाश * शुनि पुरन्दरे दीर्घ तेजिला निश्वास
दिगपाल समस्तक बुलिला सभात * करा सबे गौतमर तपक बिघात ७३
देवगणे बचन बुलिला एकेबारे * कालकूट खाया कोने मरिबाक पारे
यदि स्वर्गपद ऋषि लन्त एतिक्षणे * तथापितो आगबाढ़ि मारबो कमने ७४
देवतासबक इन्द्रे बुलिलेक बाणी * स्वर्गपद लैले तोमासार किबा हानि
येहि इन्द्र होवे तुमिसब हैबा तार * मोरेसे केवले मात्र गुचे अधिकार ७५
गौतमर तपभंग मइ करो जाइ * किन्तु तुमिसब हैबा पिचत सहाय
एहि बुलि निश्चय करिया देवराज * आसिलन्त गौतमर तपोबन माज ७६
ऋषिक देखिया महाभये भीत भैला * माया करि गृहर ओचर चापि रैला
प्रभातर कार्य्य यतकरि समापति * फल मूल आनिते गौतम महामति ७७
प्रवेशिला गैया उपबने आश्रमर * पाचे अहल्याक देखिलन्त पुरन्दर
त्रैलोक्यमोहिनी आति परम सुन्दरी * नुहिके समान विद्याधरी तपेस्वरी ७८

नाम अहल्या है। ये गौतम ऋषि की पत्नी हैं। महाऋषि गौतम को सारा संसार जानता है। उनकी तपस्या देखकर इन्द्र बड़ा भयभीत हुआ ॥ १०७० ॥ रात-दिन उसके मन में किञ्चित् शान्ति नहीं। किस उपाय से इसकी तपस्या भंग हो सकती है? यह ऋषि जैसी घोर तपस्या कर रहा है इससे तो यह किसी भी दिन मेरा इन्द्र-पद छीन लेगा ॥ १०७१ ॥ तब कामदेव को बुलाकर इन्द्र ने उसको आज्ञा दी कि किसी भी ढंग से गौतम की तपस्या भंग करो। यह सुनकर कामदेव ने कहा, मुझे साहस नहीं हो रहा है। जलती हुई आग को कौन पचा सकता है ॥ १०७२ ॥ जीवित यमराज (मौत) को कौन अपने आलिंगन में ले लेगा। यह सुनकर इन्द्र ने एक लम्बी साँस ली, और उसने सारे दिक्पालों को सभा में बुलाकर उन लोगों से गौतम की तपस्या में विघ्न पहुँचाने को कहा ॥ १०७३ ॥ देवताओं ने दो टूक कह दिया—कालकूट बिष खाकर कौन जिन्दा रह सकता है। यदि ऋषि इसी क्षण आकर स्वर्गपद भी ले ले फिर आगे बढ़कर हमलोग उसको कैसे मार सकेंगे ॥ १०७४ ॥ तब इन्द्र ने देवताओं से कहा, यदि वह स्वर्गपद ले भी ले तो तुमलोगों की क्या हानि है? जो भी इन्द्र होगा तुम लोग उसी के होकर रहोगे। केवल मेरा ही अधिकार छिन जायगा ॥ १०७५ ॥ इसलिए चलो मैं ही जाकर गौतम का तपोभंग करता हूँ, लेकिन तुम सब मेरे पीछे-पीछे मेरे सहायक बने रहना। यह कहकर और ऐसा निश्चय कर देवराज इन्द्र गौतम के तपोवन में आए ॥ १०७६ ॥ ऋषि को देखकर अत्यन्त भयभीत होकर वह इन्द्र माया का सहारा लेकर उनके आश्रम के निकट बना रहा। सबेरे का सारा कार्य समाप्त कर महा बुद्धिमान् गौतम फल-फूल लाने चले गये ॥ १०७७ ॥ तब इन्द्र ने आश्रम के उपवन में प्रवेश करके अहल्या को देखा। वह परमसुन्दरी तीनों लोकों को मुग्ध कर देने वाली थी। विद्याधरी और अप्सराएँ भी (रूप में) उसके समान नहीं ॥ १०७८ ॥ अहल्या

अहल्यार रूपे बासवक परशिल * कामे बिमोहित हुया बुलिबे लागिल
गौतमर तप भंग एखन आछोक * अहल्यार रूपे आति मोहिलेक मोक ७९
मोक्ष नुहिवेक आन संगमर सरि * कोन छार स्वर्ग बिद्याधरी अपेस्वरी
आहान अधर-मधु पिबे येवे पाय * तेवे कोटि कोटि अमृततो कार्य्य नाइ ८०
आक एरि स्वर्गे गैया कि काम करिबो * प्राणे यदि मरो आजि तथापि हरिबो
एहि बुलि इन्द्रे मने गुणिया अशेष * गौतम ऋषिर पाचे धरिलन्त बेश ८१
गृहत प्रबेश पाचे भैला छद्म करि * स्वामी आसिबार देखि अहल्या सुन्दरी
आथबेथ करिया आसन आनि दिल * करंडि पेलाया थैया आसने बसिल ८२
अहल्या मधुर बाणी पुछिला सादरे * अरण्यक नगै केने उलटिला घरे
इन्द्रे मने बोले बिधि सुप्रसन्न भैला * छद्मरूपे गौतमे मातिबे पाचे लैला ८३
कि पुछस सुन्दरी बिपाक आजि मोर * घर हन्ते याहन्ते देखिलो मुख तोर
शरत कालर पूर्णचन्द्र नुहि सरि * कामबाणे पीड़ा मोक करे सेहि धरि ८४
बिहा करि आनिबार परा कदाचित * हेनमत रूप नतो देखो बिपरीत
आजि जानो बिधाता करिल विड़म्बन * तोहोर निमित्ते पीड़ा करय मदन ८५
चल याओं शय्याक पुछस आर किक * शुनिया अहल्या सती बोलय स्वामीक
आजि देखो तुमि प्रभु केनमत भैला * लाज काज तप ब्रत पाच करि थैला ८६
त्रिजगते जाने तुमि महा मुनिबर * तोमार अकार्य्यें हासिबेक निरन्तर
समस्ते शास्त्रत तुमि आपुनि पार्गत * करिब आलाप स्त्रीक ऋतु समयत ८७

के रूप ने इन्द्र को मोहित कर लिया। वह काम से मुग्ध होकर कहने लगा। अब गौतम का तपोभंग करना रहने दो। क्योंकि अब तो अहल्या के रूप ने मुझे मोह लिया है ।। १०७९ ।। इसके साथ संगम करने (के सुख) के समान मोक्ष भी नहीं होगा। स्वर्ग की विद्याधरी और अप्सराएँ इसके सामने तुच्छ हैं। इसके अधरों का मधु जिसको पीने को मिल जाय उसको करोड़ों-गुना अमृत की भी कोई आवश्यकता नहीं ।। १०८० ।। इसको छोड़कर स्वर्ग जाकर मैं क्या करूँगा। अगर आज मैं प्राणों से भी रहित हो जाऊँ तो भी मैं उसका हरण करूँगा। यह कहकर मन में काफ़ी सोच-विचार करने के पश्चात् इन्द्र ने गौतम ऋषि का वेश-धारण कर लिया ।। १०८१ ।। छद्मवेश धरने के पश्चात् इन्द्र ने गृह में प्रवेश किया। सुन्दरी अहल्या ने पति को आते हुए देखा। आदर पूर्वक उसने आसन ला दिया। पुष्पपात्र को अलग फेंक कर वह आसन पर बैठ गया ।। १०८२ ।। अहल्या ने सादर मधुर शब्दों में पूछा, जंगल में न जाकर तुम घर क्यों लौट आए ? इन्द्र ने मन ही मन कहा, विधि मुझपर सुप्रसन्न हो गया है। तब छद्म रूप धारी इन्द्र ने कहा ।। १०८३ ।। हे सुन्दरि, तुम मेरी विपदा के बारे में क्या पूछती हो ? घर से जाते समय तुम्हारा वह मुख मैंने देख लिया। जिसके समान शरत् ऋतु का पूर्ण चन्द्र भी नहीं है, तभी से कामबाण मुझको पीड़ा देने लगा है ।। १०८४ ।। विवाह कर लाने के पश्चात् कभी भी ऐसा सुन्दर रूप नहीं देखा था। आज समझ लो विधाता ने मेरे साथ बिड़म्बना की। तुम्हारे लिए कामदेव मुझको क्लेश देने लगा है ।। १०८५ ।। अब आगे क्या पूछती हो, आओ, बिस्तर पर लेट जाओ। यह सुनकर सती अहल्या ने अपने पति से कहा। प्रभु आज तुम कैसे ऐसे हो गये कि लाज भरे कार्य के निमित्त अपनी तपस्या व व्रत की उपेक्षा कर रहे हो ।। १०८६ ।। तीनों लोक जानते हैं कि तुम महामुनि हो। तुम्हारे इस अनुचित कार्य को देखकर

ऋषि सकलर धर्म्म एहिसे निश्चय * ऋतुबाजे स्त्रीक आलापिले पाप हय
तुमि केने ऋतु बिने करिबा आलाप * नपारोहो बुजिबे तोमार किबा काप ८८
मोकेसे परीक्षा करा जानिलोहो निष्ठ * नुहि केने इबोल बुलिला तुमि शिष्ट
हेन शुनि कपट गौतमे बोले बाणी * भाल तुमि अहल्या बुलिला धर्म जानि ८९
किन्तु मोर धर्म्म तुमि करिला बिघात * तोमार रूपेसे कामे करे उतपात
यिहेतु भैलाहा तुमि परम सुन्दरी * त्रैलोक्यर रूप थैले एकस्थान करि ९०
जिकालत बिहा करि तोमाक आनिलो * हैबे मोर धर्म्म नष्ट तेखनि जानिलो
तोमार रूपत यार निमजिल मन * राखिबेक धर्म्म हेन आछे कोनजन ९१
आजि येवे प्राण रहे मदन अनले * तेवे तप धर्म्म कर्म्म पाइबोहो सकले
एखने कामिनी मोर प्राण रक्षा करा * चलियोक शय्याक बिलम्ब परिहरा ९२
पुनरपि बुलिलन्त अहल्या बचन * शुनियोक प्रभु तुमि थिर करा मन
हरिक सुमरि ब्रह्ममंत्र करा जप * कपट गौतमे बोले एरा काप-झाप ९३
बारम्बार हरि स्मरि धरिलो धियान * तोक बिने समाधितो नेदेखिलो आन
किबा मोक बुजास नजानो किबा मइ * मोत करि अधिक पंडित भैलि तुइ ९४
कामबाणे फुटि मोर प्राण संकलय * कामातुर भैले परदाराको हरय
करिलन्त ब्रह्मा निज दुहिता आलाप * तथापितो तान्त देखो निसिजिल पाप ९५
निज भार्य्या आलापिबो दोष आत बर * मोर प्राण जाय तइ पातस जगर

वे निरन्तर हँसते रहेंगे। सारे शास्त्रों में तुम स्वयं पारंगत हो। किस प्रकार तुम ऋतु के समय पत्नी से मिलित होगे ॥ १०८७ ॥ अवश्य ही यह ऋषियों का धर्म-कथन है कि ऋतुकाल में स्त्री से मिलित होने पर पाप होता है। क्यों तुम इस ऋतुकाल में मिलित होना चाहते हो? तुम्हारा रंग-ढंग कुछ मेरी समझ में नहीं आ रहा है ॥ १०८८ ॥ मैंने यह स्पष्ट रूप से जान लिया कि तुम मेरी परीक्षा ले रहे हो। हे सदाशय, तुमने यह अपने मुँह से क्यों नहीं कहा? यह सुनकर कपटी गौतम ने कहा, हे अहल्या, धर्म को जानकर यह तुमने अच्छा ही कहा ॥ १०८९ ॥ लेकिन मेरे धर्म में तुमने व्याघात पहुचाया है। तुम्हारे ही रूप के कारण काम उत्पात मचाने लगा है, चूँकि तुम परमसुन्दरी हो तुमने तीनों लोक का रूप एक ही स्थान पर लाकर रख दिया ॥ १०९० ॥ जिस समय मैं तुमको ब्याह कर लाया उसी समय जान लिया कि मेरा धर्म नष्ट होकर रहेगा। तुम्हारे रूप में जिसका मन डूब गया है, ऐसा कौन व्यक्ति है जो धर्म की रक्षा कर सकेगा ॥ १०९१ ॥ आज यदि कामदेव की आग से प्राण बच जायें तब तो तप-धर्म-कर्म सब कुछ कर सकूँगा। हे कामिनी, अब तुम मेरे प्राणों की रक्षा करो, विलम्ब त्याग कर शीघ्र शय्या पर चली जाओ ॥ १०९२ ॥ फिर अहल्या ने कहा, हे प्रभु सुनो, तुम अपने मन को स्थिर करो। हरि का स्मरण कर ब्रह्ममंत्र का जप करो। तब कपटी गौतम ने गर्व का त्याग कर कहा ॥ १०९३ ॥ मैंने बारबार हरि का स्मरण कर ध्यान लगाया, किन्तु तुम्हारे बिना समाधि में और कोई दिखाई ही नहीं पड़ा। मुझको तुम क्या समझ रही हो, मैं क्या जानता नहीं हूँ? मुझसे क्या तुम अधिक पंडित बन गईं ॥ १०९४ ॥ कामबाण से छिद कर मेरा मन तड़प रहा है। कामातुर होने पर मनुष्य अन्य की पत्नी को भी चुराता है। ब्रह्मा ने अपनी आत्मजा से संभोग किया फिर देखो उनपर पाप नहीं लगा ॥ १०९५ ॥ अपनी पत्नी से संगम करूँगा यह कौन सा बड़ा दोष है। मेरे प्राण निकले जा रहे हैं।

हुं मुनि मेळवी यज्ञ करूं छुं, ते भंग करे छे असुर,
सुबाहु मारीच ताडिका आदे, महा दुःख दे छे भूर । १५ ।
ते माटे राय पुत्र तमारा, राम लक्ष्मण छे जेह,
ते यज्ञनी रक्षा करवा आपो, हुं मागुं छुं एह । १६ ।
पूरण यज्ञ थशे त्यारे हुं, संतोष पामीश मन,
त्यारे पुत्रने पाछा कुशळ लावीने, सोंपीश तमने तन । १७ ।
एवां गाधिपुत्रनां वचन सुणीने, राय थया भयभीत,
वज्र तणो घा वागे जाणे, वीज पडे विपरीत । १८ ।
प्राणप्रिय रघुवीर ज वहाला, जाणी तन मन धन,
एवुं विचारी धीरज राखी, बोल्या राय वचन । १९ ।
अरे मुनिवर पुत्र जे मारा, बाळक छे सुकुमार,
ए शुं करी जाणे जुद्ध ते साथे, बळिया असुर अपार । २० ।
बाळकमां हजी राम रमे छे, शुं जाणे जुद्धनी वात,
जुद्ध करवाने माग्या सुतने, ए तो महा उत्पात । २१ ।
सैन्य सकळ लईने हुं आवुं, चाळो तमारी साथ,
असुर सहु संहार करुं, देखाडुं मारा हाथ । २२ ।

धन, घोड़े, हाथी, रथ और आभूषण—इनका (मेरे लिए) कोई काम नहीं है । १४ । मुनियों को इकट्ठा कर मैं यज्ञ करता हूँ, (और) असुर (राक्षस) उसे भग्न करते हैं । सुबाहु, मारीच, ताड़का आदि (हमें) बहुत दुःख देते हैं । १५ । इसलिए हे राजा, राम और लक्ष्मण, जो तुम्हारे पुत्र हैं, यज्ञ की रक्षा करने के लिए दे दो । मैं यह माँगता हूँ । १६ । यज्ञ पूर्ण होगा, तब मेरा मन सन्तोष प्राप्त करेगा । (और) तब उन पुत्रों को सकुशल लाकर तुम्हें (पुत्र) सौंप दूँगा ।' १७ । गाधि-पुत्र विश्वामित्र के ऐसे वचन सुनकर राजा भयभीत हो गये । मानो (उनपर अब) वज्र का आघात हो रहा हो, (अथवा) अनर्थकारी बिजली गिर रही हो । १८ । प्राणप्रिय लाड़ले रघुवीर राम ही को तन, मन और धन समझकर, ऐसे विचार से धीरज धारण करके राजा यह बात बोले–। १९ । 'हे मुनिवर, मेरे जो पुत्र हैं, वे सुकुमार (अति छोटे) बालक हैं, (और) राक्षस अत्यधिक बलवान हैं । उनके साथ युद्ध करना वे क्या जानें ? । २० । अभी राम बालकों के साथ खेलता है । वह युद्ध की बात क्या समझता है ? (और) तुमने युद्ध करने के लिए (मेरे) पुत्रों को माँग लिया ! यह तो महान् उत्पात है । २१ । चलो, समस्त सेना लेकर मैं तुम्हारे साथ

प्राणप्रिय रघुवीर न आपुं, ए मारुं जीवन,
गद्‌गद कंठ थया एवुं कही, आंसु आव्या लोचन। २३।
त्यारे कोपायमान थया मुनि कौशिक, बोल्या क्रोधे पर्म,
अल्या केम कह्युं जे मागो ते आपुं, ने हवे मूके छे धर्म ? २४।
तुं सूरजवंशी थईने सत्य मूके, जोने विचारी मन,
रविकुळमां लांछन लगाडे, कायर थई राजन। २५।
तारा वंशमां हरिश्चंद्र राजा, जोने केवुं सत्य पाळ्युं ?
राज तजी निज कर्म करी मने, जे माग्युं ते आप्युं ? । २६।
वळी रुक्मांगद ने शिवि राजा, तेणे पाळ्युं सत्य,
तुं हंस वंशमां प्रगट थई ने, आवुं बोले छे असत्य। २७।
श्रीरामने तुं पुत्रज जाणे, ए मूर्खता मन,
वैकुंठनाथ तारे घेर अवतर्या, साक्षात श्रीभगवन। २८।
वसिष्ठे तुजने पूर्वे कह्युं, तुं ते क्यम भूल्यो राय ?
जे निग्रह करता काळ तणुं, मूळ मायापति कहेवाय। २९।

चलता हूँ। मैं सब असुरों का संहार करता हूँ और उन्हें अपना हाथ दिखा दूँगा। २२। (परन्तु) मैं प्राणप्रिय राम को नहीं दूँगा। वह मेरा जीवन है।' ऐसा कहते हुए राजा का कण्ठ रुँध गया (और उनकी) आँखों में आँसू आ गये। २३। तब कौशिक (विश्वामित्र) मुनि कोपायमान हो गये। वे अत्यधिक क्रोध से बोले—"अरे! 'जो माँगो—वह दूँगा'— ऐसा क्यों कहा ? और अब धर्म का त्याग करते हो ? २४। तुम सूर्यवंशीय होने पर भी सत्य का त्याग करते हो ? मन में सोचकर देखो। हे राजा ! तुम कायर होकर सूर्यकुल में कलंक लगा रहे हो। २५। तुम्हारे वंश में राजा हरिश्चन्द्र ने सत्य का पालन कैसे किया ! देखो। राज्य का त्याग कर अपने कर्तव्य को (पूर्ण) करके, जो (मैंने) माँगा, सो मुझे दिया। २६। फिर रुक्मांगद और शिविराजा (हैं, उन्हों) ने वचन का पालन किया। सूर्यवंश में उत्पन्न होकर तुम ऐसा असत्य बोलते हो ? । २७। श्रीराम को तुम पुत्र ही समझते हो। यह (तुम्हारे) मन की मूर्खता है। साक्षात् श्रीभगवान वैकुण्ठनाथ तुम्हारे घर में अवतरित हैं। २८। वसिष्ठ ने तुमको पूर्वकाल में (जो) बताया, (उसे) हे राजा ! तुम क्यों भूल गये ? जो काल पर शासन करते हैं, जो आदि माया के पति कहलाते हैं, जिनका ध्यान ब्रह्मा, शिवजी, सनकादिक अभेद-भावपूर्वक करते हैं, शेष भगवान् जिनका स्तवन करते हैं, वेद जिन्हें 'पूर्ण ब्रह्म' कहते हैं, जिनके कटाक्ष से भय मानकर (अनुभव

ब्रह्मा शिव सनकादिक जेनुं ध्यान धरे छे अभेद,
स्तवन करे छे अनंत पूरण ब्रह्म कहे छे वेद। ३०।
जेना कटाक्षे लोकपति सहु, कंपे मानी त्रास,
ते रामने तुं बाळक कहे छे, जे अनंत गुण अविनाश। ३१।
तत्त्वमसि वाक्ये करी जेने, वेदान्त शास्त्र अभिराम,
सर्वव्यापक परब्रह्मने स्थापे, ते छे ए श्रीराम। ३२।
कर्मश्रेष्ठ करी माने मीमांसक, जीवनुं करवा काज,
जेने पामवा कर्म आचरे, ते छे ए रघुराज। ३३।
जीव अनेक अनित्य बंध छे, लय नव पामे प्राय,
सत्य मुक्त एक ईश्वर कर्ता, एवुं कहे छे न्याय। ३४।
तत्त्वनी संख्या सांख्य करी कहे, प्रकृति पुरुषनो विवेक,
तत्वातीत स्वरूप ज्ञाने करी, अखंड ईश्वर एक। ३५।
सप्त विभक्तिए करीने व्याकरण, शब्द अर्थने साधे,
जेना नामना अनेक अर्थ करी, ईश्वरने आराधे। ३६।
साधन अष्टांगयोगे करीने, साधे छे मति धीर,
पातंजलि जेने ईश्वर कहे छे, ते ए श्रीरघुवीर। ३७।

करके) सब लोकपाल काँपते हैं, जो अनन्त गुणों के धारी और अविनाशी हैं, उन श्रीराम को तुम 'बालक' कहते हो? । २९-३१ । अभिराम वेदान्त शास्त्र जिसकी 'तत्त्वमसि' (वह तुम हो) वाक्य द्वारा सर्वव्यापक परब्रह्म के रूप में स्थापना करता है, वह (परब्रह्म) हैं वे श्रीराम । ३२ । जीव का कार्य करने के लिए कर्म को मीमांसक श्रेष्ठ मानते हैं । और वे जिसकी प्राप्ति के लिए कर्म का आचरण करते हैं, वह हैं वे रघुराज राम । ३३ । जीव अनेक हैं; उसके बन्धन अनित्य हैं । वह जीव प्रायः लय को प्राप्त नहीं होता । एक ईश्वर (ही) सत्य, (बन्धनों से) मुक्त है—वही कर्ता है । न्याय शास्त्र इस प्रकार करता है । ३४ । सांख्य-शास्त्र तत्त्वों की संख्या बताते हुए प्रकृति और पुरुष के भेद का विवेक प्रस्तुत करता है । वह (तत्त्व) ज्ञान से ईश्वर को तत्त्वों के परे समझते हुए उसे अखण्ड मानता है । ३५ । व्याकरण शास्त्र सात विभक्तियों से (अर्थात् आधार पर) शब्दों के अर्थ सिद्ध करता है । वह जिसके नाम के अनेक अर्थ बताते हुए ईश्वर की आराधना करता है वह ईश्वर ये श्रीराम हैं । ३६ । धीर-मति पुरुष अष्टांग योग द्वारा साधना करके जिसे प्राप्त करते हैं और जिसे (योग शास्त्र के प्रणेता) पतंजलि जिसे ईश्वर कहते हैं, वह हैं ये श्रीरघुवीर राम । ३७ । हे दशरथ राजा, सुनो । इस प्रकार छः शास्त्र

एम खटशास्त्र ने उपनिषद जेने, कहे छे अखंड स्वरूप,
ते रामने तुं बाळ कहे छे, सांभळ दशरथ भूप। ३८।
एम गाधिसुते घणां वचन कह्यां, तोये हा नव कही नरदेव,
त्यारे क्रोधे रातां नेत्र थयां, ने कोप्या मुनि ततखेव। ३९।
एटले आव्या वसिष्ठमुनि, जे ज्ञानी शम दम शांत,
दशरथ ऊठया गुरुने तेडी, जई बेठा एकांत। ४०।
विश्वामित्रनुं वृत्तांत कहीने, रोवा लाग्या राज,
राम विना जे मागे ते आपीने, समजावो तमे आज। ४१।
त्यारे वसिष्ठ कहे सुणो दशरथराजा, ए समर्थ छे बळवान,
जेणे सृष्टि नवी रची, ब्रह्मा केरुं उतार्युं अभिमान। ४२।
एणे लोह-पिष्ट भक्षी तप कीधुं, संवत्सर साठ हजार,
गायत्रीनुं पुरश्चरण करीने, वळियो थयो छे अपार। ४३।
एना थकी त्रिभुवन कंपे, देव इंद्रादिक जेह,
माटे गाधिनंदन नहि माने नृप, महा हठीलो छे एह। ४४।
ते माटे राम लक्ष्मण एने, आपो भूपति आज,
भरत शत्रुघन पासे राखो, थाशे रूडां काज। ४५।

और उपनिषद जिसे अखण्ड स्वरूप ब्रह्म कहते हैं, उस श्रीराम को तुम 'बाल' कहते हो। ३८। गाधि-पुत्र विश्वामित्र ने इस प्रकार बहुत बातें कहीं, तो भी राजा ने 'हाँ' नहीं कहा। तब (मुनि की) आँखें क्रोध से लाल हो गयीं और वे तत्क्षण क्रुद्ध हो गये। ३९। इतने में वसिष्ठ मुनि (वहाँ) आ गये, जो ज्ञानी तथा शम, दम और शान्ति से युक्त थे। राजा दशरथ उठ गये और मुनि को बुला ले जाकर एकान्त में बैठ गये। ४०। (उनसे) विश्वामित्र द्वारा कही बातें कहकर राजा रोने लगे। उन्होंने कहा—राम के सिवा, वे (विश्वामित्र) जो माँगें, उन्हें देकर आज तुम उन्हें समझा दो। ४१। तब वसिष्ठ कहते हैं (बोले)—हे दशरथ राजा, सुनो। जिन्होंने नयी सृष्टि की रचना करके ब्रह्माजी का अभिमान उतारा (छुड़ाया), वे (विश्वामित्र) समर्थ एवं बलवान हैं। उन्होंने लोह-पिष्ट (लोहे का आटा) खाकर साठ हज़ार वर्ष तप किया और गायत्री मंत्र का पुरश्चरण करके वे अपार बलवान हो गये हैं। ४२-४३। इन्द्र आदि जो देवता हैं, वे और तीनों भुवन उनसे (भय से) काँपते हैं। विश्वामित्र महा हठीले हैं; इसलिए हे राजा! वे नहीं मानेंगे। ४४। अतः हे राजा। आज उन्हें राम और लक्ष्मण दो, भरत और शत्रुघ्न को (अपने)

तोये दशरथे हा कहेवाती नथी, घणुं राम उपर छे हेत,
प्राणथकी अति राम छे वहाला, वात्सल्य प्रेम समेत । ४६ ।
त्यारे गुरुए नेत्रे हाथ फेरव्यो, दशरथने ते दीश,
दीठा रामने चतुर्भुज चतुरायुध, मंडित वैकुंठाधीश । ४७ ।
शेष रूप लक्ष्मणने दीठा, सहस्र फणा द्युतिवान,
त्यारे दशरथने तत्र धीरज आवी, ओळखिया भगवान । ४८ ।
पछे गुरुने तेडी सभामां आव्या, पोते दशरथ राय,
विश्वामित्र वसिष्ठ बे मळिया, आनंद अंग न माय । ४९ ।
त्यारे भूपति कहे गाधिसुत प्रत्ये, सांभळो मुनि दयाळ,
राम लक्ष्मण तमने आपुं छुं, साचवजो बे बाळ । ५० ।

वलण (तर्ज़ बदलकर)

बे बाळक मारा प्राणवल्लभ, आपुं तमने आज रे,
एवां वचन रायनां सांभळी हरख्या कौशिक ऋषिराज रे । ५१ ।

* * *

पास रखो । (इससे) सुन्दर कार्य (सिद्ध) हो जाएँगे । ४५ । फिर भी दशरथ से 'हाँ' नहीं कहा जाता (था) । उन्हें राम के प्रति अत्यधिक प्रेम है (था) । वात्सल्य और प्रेम के कारण राम (उन्हें) प्राणों से भी प्यारे हैं (थे) । ४६ । तब गुरु ने दशरथ के नेत्रों पर हाथ फेर दिया, तो उन्होंने राम को चतुर्भुज तथा चतुरायुध (चार आयुधों) से सुशोभित वैकुण्ठाधीश के रूप में देखा । ४७ । सहस्र तेजस्वी फनों से युक्त शेष के रूप में लक्ष्मण को देखा । तब दशरथ को धीरज आया । उन्होंने भगवान को पहचाना । ४८ । तदनन्तर गुरु को बुलाकर स्वयं दशरथ राजा (राज) सभा में आ गये । विश्वामित्र और वसिष्ठ दोनों (एक-दूसरे से) मिले, तो (उनका) आनन्द अंग (मन) में नहीं समाता (समाया) । ४९ । तब राजा विश्वामित्र से कहते हैं (बोले)—हे दयालु मुनि ! सुनो । मैं राम और लक्ष्मण तुम्हें दे रहा हूँ । (उन) दो बालकों की रक्षा करो । ५० ।

(ये) दो बालक मेरे प्राण-प्रिय हैं । मैं उन्हें तुमको देता हूँ । राजा के ये वचन सुनकर ऋषिराज विश्वामित्र आनन्दित हो गये । ५१ ।

* * *

अध्याय–२२ (राम-वसिष्ठ-सम्वाद—मायाचरित्र-कथन)

राग सामेरी

सुणी वचन दशरथ रायनां, तव गाधिसुत हरख्या घणुं,
बे पुत्रने तेडाव्या राये, ते कारज करवा मुनि तणुं। १।
तव राम-लक्ष्मण सज थया, धर्या धनुष भाथां बाण,
चरण वंदी मातना, चालिया चतुर सुजाण। २।
किरीट मुगट मणिखचित कुंडळ, कडां अंगद मुद्रिका,
कटी मेखळा उरमाळ मुक्ता, तिलक केसर चंद्रिका। ३।
घनश्याम तन पट पीत अंबर, जरकसी जामा धर्या,
कटीबंध उत्तरी वस झळके, वीररस वेशे भर्या। ४।
विश्वमोहन जगत रक्षण, भक्त कारण अवतर्या,
पद पादुका मणिखचित पहेरी, सभामांहे संचर्या। ५।
रामने जोई सहु सभा उठी, हरख अंग न माय,
साष्टांग विश्वामित्र चरणे, नम्या श्रीरघुराय। ६।

अध्याय—२२ (राम-वसिष्ठ-संवाद—मायाचरित्र-कथन)

तब दशरथ राजा के वचन सुनकर गाधि-पुत्र विश्वामित्र बहुत आनन्दित हो गये। मुनिवर का वह कार्य करने के लिए राजा ने (अपने) दो पुत्रों को बुला लिया। १। तो राम और लक्ष्मण तैयार हो गये। उन्होंने धनुष, भाले और बाण धारण किये। (फिर) माताओं के चरणों का वन्दन कर वे चतुर तथा सुजान बालक (अन्दर से बाहर राजसभा की ओर) चल दिये। २। उन्होंने रत्नों से युक्त किरीट, कुण्डल, कड़े, बाजूबन्द, अंगद और अंगूठियाँ—ये आभूषण धारण किये। उनकी कमर में मेखला (करधनी) थी और छाती पर मोतियों की माला (शोभायमान) थी। उन्होंने केसर का तिलक लगाया और चन्द्रिका (बेंदी) नामक एक शिरोभूषण धारण किया। ३। श्रीराम का शरीर मेघ के समान साँवला था। (उन दोनों ने) पीले वस्त्र तथा जरकसी जामा पहन लिया। उनके कमरबन्द और उत्तरीय वस्त्र अर्थात् दुपट्टे झलकते हैं (थे)। (जान पड़ता था कि) उन्होंने वीर रस को अपने वेश में भर लिया (हो)। ४। विश्व को मोहित करनेवाले तथा जगत् की रक्षा करनेवाले श्रीराम भक्तों के कारण से अवतरित हो गये (थे)। पाँवों में रत्न-जटित पादुकाएँ पहन कर उन्होंने सभा में प्रवेश किया। ५। श्रीराम

उठाड्या कौशिके कर ग्रही, आशिष मुख अविचळ वदे,
प्रेमे गदगद थया मुनि, श्रीरामने चांप्या रुदे । ७ ।
जेम परम तत्त्वनी थाय प्राप्ति, ज्ञानीने निरधार,
कौशिक मुनि रामने मळी, एम पाम्या सुख अपार । ८ ।
निज आसन बेठा राम-लक्ष्मण, नमी गुरुने पाय,
सहु सभाजन जुए रामने, नव नेत्रतृप्ति थाय । ९ ।
आगमन कारण कह्युं मुनिए, दुःख जे पोता तणुं,
श्रीराम कहे करुं यज्ञरक्षा, दुष्ट सहु पहेलां हणुं । १० ।
पण सुणो मुनिवर एक संदेह, ऊपन्यो निरवाण,
तमो मने तेडी जाओ छो, त्यां युद्ध करवा जाण । ११ ।
ते दैत्य महाबळवंत छे, हुं करीश युद्ध अपार,
पण देह क्षणभंगुर छे, माटे कहो आत्मविचार । १२ ।
ते आत्म-प्राप्ति कहो मुजने, वासना मोह जाय,
जेने करी जन मोक्ष पामे, अन्य गति नव थाय । १३ ।

को देखकर समस्त सभा उठ गयी—सभा में बैठे हुए लोग उठ गये। उनके अंग में आनन्द नहीं समाता (था)। (तब) श्रीराम ने विश्वामित्र के चरणों में साष्टांग नमस्कार किया। ६। विश्वामित्र ने हाथ पकड़कर उन्हें उठाया, (और) वे मुख से स्थिरता-पूर्वक आशीर्वाद कहते हैं (उन्होंने आशीर्वाद दिया)। (इस समय) मुनि प्रेम से गद्गद हो गये। (तत्पश्चात्) उन्होंने श्रीराम को हृदय से लगा लिया। ७। जिस प्रकार ज्ञानी पुरुष को परम तत्त्व अर्थात् ब्रह्म की प्राप्ति हो जाती है (और उससे उसे अपार सुख प्राप्त होता है), उसी प्रकार विश्वामित्र को श्रीराम से मिलकर निश्चय ही अपार सुख प्राप्त हो गया। ८। (तदनन्तर) श्रीराम और लक्ष्मण गुरु के चरणों का नमन करके (अपने-अपने) आसन पर बैठ गये। सभी सभाजन श्रीराम को देखते हैं (थे) फिर भी उनकी आँखों की तृप्ति नहीं होती (थी)। ९। जो उनका—अपना दुःख था, वह—अर्थात् अपने आगमन का कारण—मुनि विश्वामित्र ने (श्रीराम से) कहा। तो श्रीराम ने कहा—' मैं यज्ञ की रक्षा करता हूँ (करूँगा), पहले सभी दुष्टों को मार डालता हूँ (डालूँगा)। १०। परन्तु हे मुनिवर ! सुनो, निश्चय ही मन में एक संशय उत्पन्न हुआ (है)। तुम मुझे युद्ध करने के लिए बुलाकर (ले) जा रहे हो। ११। वे दैत्य महा बलवान हैं। फिर भी मैं (उनके साथ) अपार युद्ध करूँगा। परन्तु देह क्षण-भंगुर है; इसलिए मुझे आत्म-ज्ञान सम्बन्धी विचार कहो। १२। मुझे वह

आत्म-प्राप्ति विना साधन, न शोभे वळी तेह,
ज्यम नासिका विण रूप सुंदर, प्राण विण ज्यम देह । १४ ।
दीपक विना मंदिर ज्यम, भरथार पाखे भामनी,
इंद्रियनिग्रह विण जोग मिथ्या, विधु विना ज्यम जामनी । १५ ।
एम आत्म प्राप्ति विना साधन, सकळ जाणो व्यर्थ,
ते लक्ष श्रीगुरु करावे, सरे गुरुसेवाए अर्थ । १६ ।
ते गुरुकृपा बिना कदापि, नव ऊपजे निर्वेद,
सेवाथकी गुरु प्रसन्न थाये, आपे ज्ञान अभेद । १७ ।
जेणे गुरुसेवा नव करी, घाल्यो ऊलंघी मरजाद,
पडी धूळ तेना ज्ञानमां, जेवो सुरापानीनो वाद । १८ ।
नव फळे वेद पुराण अध्ययन, बळो तेज प्रताप,
धवरहित जोबन सुंदरी, नवरूप शोभे आप । १९ ।
जेम अदातानुं ऊंचुं मंदिर, लोभीनो तत्त्व विचार,
भ्रष्टनुं कुळ गोत्र तेवुं, अत्यंजनो आचार । २० ।

आत्म (ज्ञान की) प्राप्ति (का मार्ग) बताओ, जिससे वासना और मोह निकल जाते हैं और जिसे प्राप्त कर मनुष्य मोक्ष प्राप्त करता है तथा जिससे उसकी कोई अन्य गति नहीं हो जाती । १३ । इसके अतिरिक्त बिना आत्म-ज्ञान की प्राप्ति के (कोई) साधना शोभा नहीं देती । जैसे बिना नाक के सुन्दर रूप, जैसे बिना प्राणों के देह, जैसे बिना दीपक के मन्दिर, जैसे बिना पति के स्त्री और बिना इन्द्रिय-निग्रह के योग-साधन और बिना चन्द्र के रात व्यर्थ है, उसी प्रकार आत्म (ज्ञान की) प्राप्ति के बिना समस्त साधना को व्यर्थ समझो । (अतः) श्रीगुरु को वह लक्ष्य बनाएँ । गुरु-सेवा से (धर्म-अर्थ-काम और मोक्ष जैसे) पुरुषार्थ सिद्ध होते हैं । १४-१६ । बिना उस गुरु-कृपा के निर्वेद (शान्ति) कदापि उत्पन्न नहीं होती । (जब) सेवा से गुरु प्रसन्न हो जाते हैं, तो वे अभेद भावपूर्वक (आत्मीयता से) आत्म-ज्ञान प्रदान करते हैं । १७ । जिसने गुरु की सेवा नहीं की, उसने मर्यादा का उल्लंघन कर उसे बिगाड़ डाला । जैसे मद्यपी से विवाद करना व्यर्थ है, (इसलिए उससे ज्ञान की बातें करना व्यर्थ है) उसके ज्ञान में मिट्टी पड़ी समझो—उसे व्यर्थ समझो । १८ । उसके द्वारा किया पुराणों का अध्ययन, उसका बल, तेज और प्रताप निष्फल (फलरहित) रह जाते हैं । सुन्दर स्त्री का यौवन और अभिनव रूप उसके पति-हीन होने पर अपने आप में शोभा नहीं देता; (वैसे गुरु कृपा से हीन अध्ययन, बल आदि अशोभनीय – अर्थ-हीन हैं) । १९ ।

ब्रह्मांड भांडमुल् वगुल बॆल्लुब्बि । ब्रह्मादि देवतल् भक्तितो बॊगड;
शिवुडु धरिंचिन श्रीगंग यपुडु । भुवि बामरुलकॆल्ल बुण्यंबुनीय
वच्चिति ननि तानु वरुसगा जॆप्प । वच्चिनविधमुन वरुस घोषिंचि,
सुरलु खेचरुलुनु सुमुखुलै चूड । गरुडगंधर्वुलु गरमु भूषिंप
जनुदॆन्चि बिंदुवन् सरसिलो जॊच्चि। यॆनय ब्रवाहंबुलेडयि पारॆ ।
ननघात्म! पावनि ह्लादिनि नलिनि। यनु प्रवाहमुलु मूडरिगॆ दूर्पुनकु;
सीत सुचक्षुवु सिंधुवु नाग । भातिगा मूडॆगॆ बडुमटिदॆसकु;
नडरुचु नुप्पॊन्गि यंदुलो नॊकटि । कडगि भगीरथ क्षमापालु पिरुद
घनतर विशदोदक प्रवाहंबु । विनुवीथि शरदभ्र विभ्रमंबॊलय
१२८०

दिविकेग मदिलोन दिवुरुभूजनुल । कविरळनिश्श्रेणुलमरु चंदमुन
निलयु निंगियु म्रोगुनॆड ब्रवाहंबु । गलय नानामालिका वीचु लमर
'नी भंगि द्रिप्पुदु नॆल्ल पापमुल । ना भंगि जूडुडु' ना सुडुलमर
जॆलिमि दारलतोड जेयजन् करणि। बॆलुच निंगिकि नंबुबिंदुवुलॆगय

—ब्रह्मादि देवताओं द्वारा भक्ति-पूर्वक स्तुति करते समय वह गंगा ऐसे बढ़ गई मानों ब्रह्माण्डों को फोड़ देगी। तब वह श्रीगंगा, जिसे शिव ने धारण किया था, मानों यह घोषित कर रही थी कि इस पृथ्वी के सभी पापी जनों को क्रमशः पुण्य प्रदान करने के लिए मैं स्वयं आई हूँ। सभी सुर और आकाशचारी जीव प्रसन्न मुख से देख रहे थे, गरुड और गन्धर्व अधिक प्रशंसा कर रहे थे। ऐसे समय में गंगा ने, बिन्दु नामक सरोवर में प्रवेश किया, तथा शोभायुक्त हो वहाँ से गंगा का प्रवाह सात धाराओं में बहा। हे पुण्यात्मा! पावनी, ह्लादिनी, नलिनी नामक तीन धाराएँ पूर्व दिशा की ओर गईं। सीता, सुचक्षु, सिन्धु नामक तीन धारायें पश्चिम दिशा की ओर गईं। उनमें से सातवीं धारा उत्साह से उमड़ती हुई राजा भगीरथ के पीछे-पीछे, घनतर-विशद-उदक-प्रवाह के विनुवीथि (आकाश) में शरत्कालीन मेघ का भ्रम फैलाती हुई बहने लगी ॥ १२८० ॥

—वह धारा ऐसी थी मानों स्वर्ग को जाने की इच्छा रखने वाले भूलोक-वासियों के लिए अविरल (घनी) निसेनी (सीढ़ी) सँवारी गई हो। सुन्दर और तरह-तरह की तरंग-मालिकाओं के बनने से, धारा की ध्वनि धरती और आकाश में गूँज रही थी। (उस धारा में) भँवर ऐसे पड़ रहे थे, मानों वह यह बताना चाह रही थी कि 'मैं इस प्रकार (पृथ्वी के) समस्त पापों को लौटा दूँगी (ध्वस्त कर दूँगी), मेरे ढंग को देखो'। जल की बूँदें अतिशयता से आकाश की ओर उछल रही थीं, मानों वे नक्षत्रों

'धर्मात्मुलगुवारि धर्मकीर्तुलकु । निर्मलसारमै नेरि़ बोल्तु' ननुचु
गेलि नन्यापगाकीर्तुल नव्वु । लील डिंडीरमालिक लुल्लसिल्ल
'बेक्कु गन्नुल गांतु बृथिवि पेम्पेल्ल । मक्कुव' ननुभंगि मत्स्यमुल् वोलय
जरियिंचु मकरादि जलचरावळुलु । पोरिनोप्प नेतेन्चे भूलोकमुनकु ।
नंत शतार्कमै यमरुचंदमुन । गांतिमद्बहुरत्नखचितंबुलैन
निजभूषणंबुल नेरि़ निंगि वेलुग । गजविमानादुलु गरमर्थि नेक्कि
१२९०

यमरगंधर्व सिद्धादुलु सूड । नमरंग नेतेन्चि; रजुडु नेतेन्चे ।
नट महानागंबु ला प्रवाहंबु । चटुलवेगमु जूचि सरिम्रोग्गुटयुनु
नंतयु ना निर्जरावळि सूचि । चिंतिंचि जपमुलु सेसि यालोन
ना नदि लोपल नवगाहमंदि । यानंदमुनु बोन्दि; राडिरच्चरलु;
नमरमुनींद्रादुलात्म संतोष । ममरगा बुव्वुल नर्चिचि रेलमि;
ना पुण्यनदि लोन नति पापरतुलु । शापदग्धुलु गृतस्नानुलै दिविकि
जनुचुंड सुरलु नच्चरलु गंधर्व । दनुजपन्नग यक्ष दैत्यराक्षसुलु
गिन्नरादुलु ना भगीरथु रथमु । वेन्नाडि कनुगोन्चु वेड्क नेतेर

से मित्रता करने जा रही हैं। (उस धारा में) फेन-समूह ऐसा सुशोभित हो रहा था मानों वह गंगा अन्य नदियों की कीर्ति की अवहेलना करती हुई कह रही है कि 'मैं धर्मात्माओं की धर्मकीर्तियों का निर्मलसार बन कर सदा शोभित रहूँगी'। (उस धारा में) मछलियाँ इस प्रकार शोभित हो रही थीं मानों वह कह रही हो कि 'मैं अपने अनेक नेत्रों से पृथ्वी की श्रेष्ठता को अति प्रेम से देखूँगी'। मकर आदि जलचर-समूहों के विचरण से युक्त हो (वह गंगा) क्रमशः भूलोक में आई। तब सौ सूर्य के समान प्रकाशित होने वाले बहु-रत्न-खचित अपने कान्तिमान् आभूषणों की कान्ति से आकाश को दीप्तिमान बना कर, गज, विमान आदि में आरूढ़ होकर ॥ १२९० ॥

—अमर, गन्धर्व, सिद्ध आदि बड़े कौतुक से (उस दृश्य को) देखने आए। ब्रह्मा भी आए। उस धारा के चंचल वेग को देख, महादिग्गजों ने भी घुटने टेक दिए। सभी देवों ने यह सब देखकर, चिन्तन किया, जप किया और उस नदी में स्नान कर, आनन्दित हुए। अप्सराओं ने नृत्य किया। अमर, मुनीन्द्र आदि ने आत्म-सन्तुष्ट होने पर, बड़ी प्रसन्नता पूर्वक, पुष्पों द्वारा उस नदी की पूजा की। अति पाप-रत, और शाप-दग्ध जन उस नदी में स्नान कर स्वर्ग जाने लगे। तब सुर, अप्सराएँ, गन्धर्व, दनुज, पन्नग (सर्प), यक्ष, दैत्य, राक्षस, किन्नर आदि उत्साह से उस भगीरथ के

बेंरिगि पर्वतमुलु भेदिंचुकोंनुचु । नरुग जह्नुडु जन्न मा त्रोव जेय
वरदगा नट्टवच्चिच वलगोंनि गंग । सरिचुट्टुमुट्टिन सरगुन नपुडु
यागोपकरणंबु लवि वेंल्लिवोयि । यागविघ्नंबैन नम्मुनीश्वरुडु
निंगिकि नुप्पोंन्गि नेंरि नेगुदेन्चु । गंग नार्कषिंचि कलुषिंचि क्रोलें;
अनिमिषुल् मुनिवरु ला भगीरथुनि। गनुगोंनि पल्किरि करमर्थि मीरि
'नी महागंग निट्ली मुनीश्वरुडु । ई माड्कि ग्रोलेंने ! यिप्पुडें नीवु
कोपंबुलेकुंड गोरि यी मौनि । नी पट्ल वेडिन निच्चुनु गंग'
यनि यिट्लु देवतलंदरु जेंप्प । विनयंबुतो बोयि वेड्क नम्मौनि
गनुगोंनि म्रोंक्कुचु गरमुलु मोंगिचि।विनयसंभरितुडै वेड्क निट्लनियें;
'विनवय्य मुनिचंद्र! विमलचारित्र! । घनमैन गंगनु घनमैन तपमु
चेसि युर्विकि ठीवि जेंलगुचु निपुडु । वासिमै देंच्चिचति वरुस; निच्चटनु
मोसमै नीचेत मोंनसि कोल्पडिति;। नो संयमीश्वर ! यो परब्रह्म !
दयचेसि विडिपिंपु धन्यचारित्र! । दयचेयु संयमी ! दयचेयु' मनुचु

रथ के पीछे-पीछे चलने लगे । वह नदी बढ़-बढ़कर, पर्वतों को बेधती हुई उस मार्ग से जाने लगी जहाँ जह्नु (मुनि) यज्ञ कर रहे थे । गंगा ने बाढ़ के रूप में उधर आकर उस मुनि के आश्रम को घेर लिया । तब बड़ी शीघ्रता से, ॥ १३०० ॥

—याग-उपकरणों के बह जाने पर यज्ञ-भंग हो गया । तब वह मुनीश्वर आकाश तक उमड़कर शीघ्रता से आने वाली गंगा पर क्रुद्ध हो, (उसको) आर्कषित कर पी गए । तब देवता और मुनिवरों ने उस भगीरथ को देख बड़े उत्साह से कहा—'यह मुनीश्वर इस महागंगा को इस प्रकार पी गए ! इसलिए तुम अभी उनसे क्रोध को त्यागने की प्रार्थना करो । तुम्हारे निवेदन करने से इस समय वह मुनि गंगा को दे देंगे' । सब देवताओं के ऐसा कहने पर, विनय के साथ जाकर, प्रसन्नता से उस मुनि को देखकर, प्रणाम कर, हाथ जोड़, विनय-युक्त हो, प्रसन्नता-पूर्वक (भगीरथ) इस प्रकार बोले—'हे मुनिचन्द्र ! सुनिए, आप विमल चरित्र वाले तथा महान् हैं । मैं, घोर तपस्या कर, वैभव के साथ, वरिष्ठ रूप में, क्रमशः गंगा को पृथ्वी पर लाया हूँ । यहाँ धोखा खाकर, आपके द्वारा उसे खो दिया है। अतः हे संयमीश्वर ! हे परब्रह्मा ! ॥ १३१० ॥

—हे धन्यचारित्र ! आप दया करके उसे मुक्त कर दीजिए । हे संयमी !

विनयंबुतो बल्क विनि मौनिवरुडु। मनमुन गृपवुट्ट मरियु निट्लनियें;
'नो भगीरथचंद्र! यो महाराज! । यी भंगि गंगनु निलकु देच्चुटकु
नी महत्त्वंबुनु नी तपोमहिम । नेमनि चेप्पुदु निक नीदु कीर्ति ?
विडिचेंद गंगनु, विडिचेंद निपुडु ।पुडमिलो ना कीर्ति पोलुपोंन्दु' ननुचु
नुमिसि येंन्गिलि सेय नोल्लक यतडु । रमणमै दन कर्ण रंध्रंबुनंदु
वेंडलिप नेंप्पटि विधमुन गंग । यडरुचु जाह्नवि यनुपेर बरगें;
बुरुष पुराकृत पुण्यंबु वलन । दोरकोन्न विघ्नंबु द्रोचि येतेंन्चु
वेंरवुन ना राजु वेंनुक नेतेंन्चि । शरनिधि जोच्चि या जाह्नवीदेवि
दिगि रसातलमुन दिरिगि यंदुन्न । सगरुल भस्मुल् सरिंनिड बारें १३२०
नंत नंबुजगर्भु डा भगीरथुनि । संतसंबुन जूचि 'जननाथ! विनुमु
जलनिधि नेंन्दाक सलिलंबुलंडु । दलप मी सगरुनि तनयुलंदाक
दिव्यभूषणमुलु दिव्यांबरमुलु । दिव्यमाल्यंबुलु दिव्यगंधमुलु
दिव्यमूर्तुलु नोप्पि दिविजलोकमुन। दिव्यभोगमुल वर्तिंचुचु नंदु;
रडरंग निदि मोंदलनघ! नी पेर । नडचु भागीरथी नाम मी नदिकि;

(उसे) प्रदान कर दीजिए, प्रदान कर दीजिए'। विनय के साथ राजा को ऐसा कहते सुनकर मुनिवर के मन में दया उत्पन्न हो गई और उन्होंने कहा— 'हे भगीरथचन्द्र! हे महाराज! इस प्रकार गंगा को पृथ्वी पर लाना तुम्हारे महत्त्व और तुम्हारी महिमा का द्योतक है। अब तुम्हारी कीर्ति का वर्णन कहाँ तक करूँ? मैं गंगा को छोड़ दूँगा, अभी छोड़ दूँगा। पृथ्वी पर मेरी कीर्ति शोभायमान हो जाएगी'। ऐसा कहते हुए मुँह से उगल कर उसे जूठा करना न चाहकर, उन्होंने उसे अपने कर्णरन्ध्र (कान के छेद) से सुन्दर ढंग से निकाल दिया। तब सदा की तरह, उमड़ती हुई वह नदी जाह्नवी के नाम से प्रसिद्ध हुई। उस राजा के पीछे चल कर वह जाह्नवी देवी समुद्र में इस प्रकार पैठ गई मानों पुराकृत पुण्य (के बल) से, आए हुए विघ्नों को दूर कर मनुष्य आगे बढ़ता है। इस प्रकार समुद्र में उतर कर, रसातल में घूमकर, वहाँ स्थित सगर-पुत्रों के भस्मों को बहाकर वह नदी बहने लगी। ॥ १३२० ॥

—तब उस भगीरथ को हर्ष-पूर्वक देखकर (कमलसंभव) ब्रह्माजी बोले— 'हे राजन्! सुनो। जब तक सागर में जल रहेगा, तब तक तुम्हारे पूर्वज सगर के पुत्र, दिव्यभूषण, दिव्य वस्त्र, दिव्य मालाएँ, दिव्य-गन्ध तथा दिव्य-मूर्तियों से सुशोभित हो, स्वर्गलोक में दिव्यभोगों का अनुभव करते रहेंगे। हे पुण्यात्मा! अब से यह नदी तुम्हारे नाम पर भागीरथी के नाम से अतिशय शोभा पाएगी। हे नृप! त्रिपथगा, सरिद्वरा (सरिताओं में

द्रिपथग यनम, सरिद्वरयनग, । नृप! जाह्नवि यनंग नॆगडु नी गंग;
तग बिताळ्ळकु दिलोदकमुलु नडपि । जगमुलन्निट सत्यसंधुंडवगुमु:
अनघ! मी सगरुंडु नंशुमंतुंडु । घनुडु दिलीपुडु गैकोन्न प्रतिन
नॆऱप जालरु; नीवु नॆऱपंग दिविरि । तॆऱगॊप्प नी गंग दॆच्चिति कान
गंगांबु निर्मलकमनीय परम । मंगळसितकीर्तिमहितुंडवगुमु; १३३०
काकुत्स्थकुलजुल गौरवश्रील । काकरंबगु तनयावळि गनुमु;
ललितधर्ममुल मूलस्तंभमैति; । पॊलुपार नीविंक बुण्योदकमुल
वॆलय दीर्थस्नानविधि सल्पि पुण्य । फलमु गैकॊनु' मंचु बद्मसंभवुडु
तनलोकमुन केगॆ; ददनंतरंब । तनर ना गंग गृतस्नानुडगुचु
नऱुवदि वेवुर का भगीरथुडु । नॆऱि दिलोदकमुलु निष्ठ तो निच्चॆ;
ना तिलोदकमुल नमरुलै सगरु । लातनि दीविंचि यरिगिरि दिविकि;
ननघुडै मऱि ययोध्यापुरंबुनकु । जनि भगीरथुडु राज्यमु सेयुचुन्डॆ ।
गलुषघ्न मी युपाख्यानंबु भक्ति । चॆलुवार जदिविन जॆप्पगा विनिन
नॊनर बुण्यमुल नायुष्मंतुलगुचु । धनधान्यचयमुल दनरुचु नुंदु
रॆप्पुडु वारल कॆल्लदेवतलु । नॊप्प ब्रसन्नुलै युंडुदुरॆलमि; १३४०

श्रेष्ठ), जाह्नवी के नामों से भी यह गंगा प्रख्यात होगी। समुचित रूप से पितरों को तिलोदक प्रदान कर, सभी लोकों में सत्यसन्ध बनो। हे निष्पाप! तुम्हारे पूर्वज सगर, अंशुमान् और महान् दिलीप आदि ने जो प्रतिज्ञा की थी, उसे वे पूरा नहीं कर पाए। पर तुम उस प्रतिज्ञा को पूरा करने का प्रयत्न कर, अच्छे विधान से इस गंगा को लाए। अतः गंगा-जल के समान निर्मल, कमनीय और परममंगल श्वेत कीर्ति से युक्त हो कर, तुम संसार में अत्यन्त महान् बन जाओगे ॥ १३३० ॥

—तुम काकुत्स्थ वंशवालों की गौरव-श्री की निधि के समान पुत्र-समूह को जन्म दोगे। तुम सुन्दर धर्मों के आधार बन गए हो। अब तुम शोभायुक्त हो गंगा के पवित्र जल में विधिवत् स्नान करके पुण्य-फल को प्राप्त करो'। ऐसा कहकर ब्रह्माजी अपने लोक को गए। उसके बाद, समुचित रूप से उस गंगा में स्नान करके भगीरथ ने साठ हज़ार सगर-पुत्रों को, निष्ठा के साथ तिलोदक प्रदान किये। उन तिलोदकों के कारण अमर बनकर सगर-पुत्रों ने भगीरथ को आशीर्वाद दिया और स्वर्ग को चले गए। फिर निष्पाप होकर भगीरथ अयोध्यापुरी गए और वहाँ (बहुत समय तक) राज्य करते रहे। पापों का नाश करनेवाले इस उपाख्यान को भक्ति-पूर्वक पढ़ने पर, कहने पर या सुनने पर (सभी मनुष्य) पुण्यों को प्राप्त कर, आयुष्मान (लंबी आयु वाले) बन, धन-धान्य के समूह से

नमरंग सिद्धिंचु नखिल कार्यमुलु; समकोनु संचित स्वर्गभोगमुलु;
पनुपार नट वारि पितृगणंबुलकु । ननुपमसद्गतुलनिशंबु गलुगु'
ननिन राघवुडु गंगावतारंबु । विनि कौशिकुनि जूचि विनुतुलु सेसि
'नेडु विश्वामित्र! नी चेत विंटि । बोडिमि नी गंग भूलोकमुनकु
वच्चिन तेंड्गुनु, वारि तेंड्गु । नच्चेरुवडरंग' ननि मुदंबंदि
या रात्रि यंदुंडि यखिल लोकमुल । नारूढि कैक्किन या नदि ग्रुंकि
याह्निक कृत्यंबु लन्नियु दीर्चि । जाह्नवि दाटिविश्वामित्रु तोड
नुत्तरतटमुनंदुन्न संयमुल । जित्तंबुललर बूजिंचि, वीड्कोनुचु
जनि चनि येंदुट विशालयन् पुरमु । गनि गाधिनंदनु गनुगोनि पलिकें १३४९

अमृतमथन-कथा

'यी पुरि पेरेमि ? ये राजवंश्यु । डेपुमै बालिंचु ? नेरिगिंपु' मनिन १३५०

घनुडु कौशिकुडु राघवु जूचि पलिकें । 'विनु मिंद्रुकड मुन्नु विन्नाड नेनु;

युक्त हो, सुख से रहेंगे । उनके लिए सभी देवता सदा सन्तोष के साथ प्रसन्न हो जायेंगे । ।। १३४० ।।

—उनके लिए सभी काम सिद्ध होंगे, संचित स्वर्ग-भोग प्राप्त होंगे । उनके पितृगणों को अतिशयता से सदा अनुपम सद्गतियाँ प्राप्त होंगी' । (विश्वामित्र के) मुख से, राम ने इस प्रकार गंगावतरण की कथा को सुनकर, उनकी स्तुति की और कहा 'हे विश्वामित्र ! आज तुम्हारे मुख से गंगा के भूलोक में आने के बारे में, उन (सगर-पुत्रों) के बारे में, सुन्दरता से, साश्चर्य सुना है' । ऐसा कह वे प्रसन्न हुए । वह रात वहाँ बिताई और अखिल लोकों में विख्यात उस नदी में गोते लगाकर, सभी दैनिक कार्यों से निपट कर, विश्वामित्र के साथ जाह्नवी को पार कर चित्त के प्रसन्न होने पर, उस नदी के उत्तर तट पर विराजमान संयमियों की पूजा की । (उनसे) बिदा लेकर, आगे जाकर, सामने 'विशाला' नामक पुरी को देखकर, गाधिनन्दन (विश्वामित्र) से पूछने लगे ।। १३४९ ।।

अमृतमंथन की कथा

—'इस पुरी का क्या नाम है ? किस राजवंश का राजा पराक्रम के साथ यहाँ शासन करता है ? बता दो' । ऐसा कहने पर ।। १३५० ।।

—महर्षि विश्वामित्र राम को देखकर बोले—'सुनो (यह कथा) मैंने इन्द्र के द्वारा

दितिसुतुलैन दैतेयुलु नदिति । सुतुलैन सुरलु भासुरलील दॉल्लि
नोलि रसंबुलु नोषधुल् निंचि । पालसमुद्रंबु बलुविडि द्रच्चि
क्रममॉप्प नमृतंबु गैकॉन्दमनुचु । सममैत्रि ना सुधाजलराशि डासि
कव्वंबु दरित्राडुगा मंदरंबु । नव्वासुकिनि जेसि यमृताब्धि दरुव
वॆलयंग नट बुट्टि विषमुग्रमगुचु । गलय लोकंबुल गारिंचि मिंच
बरग रोषानल परुषंबुनैन । हरुडदिगॉनि म्रिगॆ; नंत नुमियुट
नुरगमुल् धरियिंचॆ नोलि दद्विषमुः । मरि मरि तरुवंग मरियुनु बुट्टॆ
वंचन मन्मथवार्धि लोकमुल । मुंचियॆत्तगजालु मुरिपॆम्बुलमर
गांचीझणत्कारघननितंबुमुलु । निंचुकनडुमुलु निरियु जन्गवलु १३६०
जंचलतनुलतल् सरि दंतचयमु । मिंचु कन्गवयु मॆरयु मोवियुनु
गोमल भ्रूलताकोदंडुडैन । कामुनि विलुविद्यगति जूड नॉप्पु
कडगंटि चूपुलु गक्षदीधितुल । वॆडलिंचु भुजलताविक्षेपणमुलु
नमर नूतनयौवनाभिराममुल । नमरु नरुवदिकोट्ल यप्सरोगणमु;
१३६४
लीलमै नच्चरलेमलनॆल्ल । नोलि देवतलु दैत्युलुनु गैकोनिरि;

बहुत पहले सुनी थी। दिति के सुत दैतेय और अदिति के सुत सुर दोनों ने सोचा कि पहले प्रकट रूप से क्रमशः रस और ओषधियाँ भरकर क्षीर-सागर को सप्रयत्न मथकर, सुचारु रूप से अमृत को ग्रहण करें। सममैत्री से वे उस क्षीरसागर के पास गए और मंदर-पर्वत और वासुकि को क्रम से मथानी और रस्सी बनाकर, क्षीरसागर को मथने लगे। तब वहाँ विष (हलाहल) उत्पन्न हुआ, (जो) उग्र होता हुआ सर्वत्र लोकों को अधिक रूप से सताने लगा। तब रोषानल से परुष बन हर (शिव) उसे लेकर निगल गए। तब उसे थूक देने से क्रम से उरगों (सर्पों) ने उस विष को धारण किया। पुनः (सागर का) मंथन करने से साठ करोड़ अप्सराएँ पैदा हुईं जो कृत्रिम काम-रूपी समुद्र में लोकों को डुबा सकने योग्य शृंगार-चेष्टाओं से युक्त थीं, ।। १३६० ।।

—और क्वणित (मुखरित) होनेवाली करधनी से युक्त गुरु नितंबों, क्षीण कटियों, घने कुचों, चंचल तनुलताओं, सुन्दर दन्त-पंक्तियों, श्रेष्ठ नयनों, कान्तिमान अधरों, कोमल भ्रूलता-रूपी कोदण्डवाले कामदेव की शरविद्या के समान दिखाई पड़ने वाले कटाक्षों, भुजमूलों के प्रकाश को प्रकट करने वाले भुजलता-विक्षेपों से तथा अमर नूतन यौवन के सौन्दर्य से युक्त थीं। ।। १३६४ ।।

वारक दरुव ना वरुणात्मजात । वारुणि प्रभविंचे वैभवंबलर;
नासुर दितिसुतुलपुडोल्लकुन्न । नसुरुलै वर्तिल्लिरवनि नेल्लेडल;
सुर नादितेयुलु सोरिदि गैकोनग । सुरलन ब्रख्याति शोभिल्लिरपुडु;
संतसंबुन रमासति दुरंगंबु । गांति मिन्नगु दंति कौस्तुभमणियु
नमृतांशुडुनु बुट्टे; नमृतंबु सुरभि । यमरु सुधापूर्णमगु कमंडलुवु
गलिगि धन्वंतरि करमोप्प बुट्टे; । वेलयंग मरि पुट्टे विषमुग्रमगुचु; १३७१

नंत सुरासुरुलमृतंबु कोरकु । नेन्तयु दमलोन नेचि दर्पमुन
ननुपमस्थिति बोर, नसुरुल सुरल । गनुगोनि सुरलपै गर्रुणिंचि यपुडु
मानिनि रूपमै मधुमर्दनुंडु । ता नमृतमु बंचि तगनिच्चु वेळ
राहुकेतुवुलनु राक्षसुलप्पु । डूहिंचि पंक्तिलो नोंगि गूरुचुंडि
चेयि जाचि पट्टिन जेलगुचु सुधनु । मेयिचाय जूडक मेलत यिच्चुटयु
रविचंद्रुलप्पुडा रमणिनि जूचि । कवगूडि यिद्दरु गळवळंबंदि
कनुसैग नट्टु चूप गनलुचु विष्णु । वनुवोन्द जक्रंबु नट्टु प्रयोगिंचि
शिरमुलु खंडिंचि सृष्टिलोपलनु । कररकु राक्षसुतलल् कडुग्रहंबुलुग

—उन समस्त अप्सराओं को प्रसन्नता से क्रम से देवताओं और दैत्यों ने ले लिया। (फिर) रुके बिना पुनः मंथन करने पर, वैभव-युक्त रूप से वरुण की पुत्री वारुणी (मदिरा) का जन्म हुआ। उस सुरा को दिति पुत्रों ने अस्वीकार कर दिया अतः अवनि पर सब जगह वे असुर कहलाए। उस सुरा को क्रम से देवताओं ने ग्रहण किया अतः वे सुर की प्रख्याति से शोभित हुए। तब प्रसन्नता के साथ सबको प्रसन्न करते हुए लक्ष्मी, उच्चैःश्रवा नामक अश्व, कान्ति में श्रेष्ठ ऐरावत नामक गज, कौस्तुभ-मणि और चन्द्र का जन्म हुआ। इसके बाद अमृत, कामधेनु और शोभायमान सुधापूर्ण कमण्डल से युक्त धन्वन्तरि अति शोभा से पैदा हुए। फिर से उग्र होता हुआ विष उत्पन्न हुआ। ॥ १३७१ ॥

—तब अमृत के लिए सुर और असुर आपस में विजृंभित हो, अहंकार के साथ अनुपम रूप से लड़ पड़े। असुरों और सुरों को देखकर, सुरों पर करुणा करके मानिनी-रूप से मधुमर्दन (विष्णु) स्वयं अमृत बाँटने आए। उस समय राहु और केतु नामक दो राक्षस भी कल्पना के द्वारा विष्णु के माया-विधान के बारे में सोचकर पंक्ति में क्रम से बैठ गए और हाथ फैलाया। उनके शरीर की कान्ति देखे बिना उत्साह से उस नारी ने उन्हें भी सुधा दे दी। तब रवि और चन्द्र दोनों उस रमणी को देख अधिक घबराए और आँख के इशारे से उधर उन दोनों राक्षसों को दिखाया।

सामीजी कहते हैं कि अन्धों को सर्वव्यापक परमात्मा पर विश्वास ही नहीं आता है, वे विश्वास के सिवा (विश्वास-हीन) वाणी पर विचार करते हैं। पर द्वैत रहित जागृत (सब में एक ही आत्मा के देखने वाले ज्ञानी पुरुष) उसका (परमात्मा का) दीदार करते हैं। वे सारे विश्व को चेतन (परमात्मा) का ही चमत्कार मानते हैं ॥ ३२७ ॥

अन्धनि ड्रिनी आङुरि, पर्चिछन्नता जी पाण खे ।
ऊंचा सद्र अलाह खे, उथी कनि असुरि ।
सामी सुजाग्रा विया, धीरजु धारे घरि ।
पर्ची पीअनि पुरि, पाकु प्यालो प्रेम जो ॥ ३२८ ॥

सामीजी कहते हैं कि अन्धों (अज्ञानी जीवों) ने स्वयं ही (अपनी आँखों में) परिच्छिन्नता (भेदभाव) की ऊँगली डाली है (अपने को मायावी भुलावे में भुला दिया है)। वे प्रा:तकाल को शीघ्र ही उठकर परमात्मा को ज़ोर से पुकारत हैं (वास्तव में आत्मा परमात्मा का ही अंश है, उसका निवास हमारे भीतर ही है पर फिर भी अज्ञानवश जीव उसे बाहर ढूँढता एवं पुकारता है)। पर जागृत (ज्ञानी) धैर्य धारण कर (हृदय रूपी) घर में ही बैठे हैं (हृदय में ही आत्मा का दर्शन करते हैं)। वे प्रसन्न हो प्रेम का पवित्र प्याला लबालब भरकर पी रहे हैं ॥ ३२८ ॥

अन्धनि ड्रिनी ओट, अग्र्यों भेद भर्म जी ।
पाए भवनि पाणही, कल्पत जन्म कोट ।
सामी सुजाग्रनि जी, सम चेतन ते चोट ।
सटे पर्चिछन्न पोट, इस्थति थिया आकास में ॥ ३२९ ॥

सामीजी कहते हैं कि अन्धों ने अपने आगे भेद एवं भ्रम की ओट खड़ी करली है। वे स्वयं ही करोड़ों कल्पित जन्म पाकर भटक रहे हैं। पर जागृत (ज्ञानी) सदैव समान रहनेवाले चैतन्य (आत्मा) को ही अपना लक्ष्य बनाते हैं (चैतन्य आत्मा के विषय में ही सोचते रहते हैं)। वे परिच्छिन्नता (भेदभाव) की पोटली पटक कर (मायावी भुलावे से रहित होकर) आकाश में स्थित हो बैठे हैं ॥ ३२९ ॥

अन्धनि ड्रिनी ओट, पँहिंजे अग्र्यों पाणहीं ।
मारी पाइनि मति रे, जन्म जन्मी कोट ।
सामी ग्राल्हि सही कई, कँहिं घूंघट खोले घोट ।
सटे पर्चिछन्न पोट, इस्थति थियो आकास जाँ ॥ ३३० ॥

सामीजी कहते हैं कि अन्धों ने स्वयं ही अपने आगे (अज्ञान का) आरवण डाल लिया है। वे बुद्धिहीन होकर करोड़ों जन्म पाकर संसार में भटक रहे हैं। पर किसी दूल्हे (प्रेमी भक्त) ने (अज्ञान का) घूँघट हटाकर (ईश्वर का) वास्तविक रूप जान लिया है, अतः उसने परिच्छिन्नता (भेदभाव) रूपी पोटली को पटक दिया है (माया से मुक्त हो गया है); अब वह आकाश की तरह स्थिर हो गया है ॥ ३३० ॥

अन्धनि ड्रिनी ओट, रखी आश अज्ञान जी।
जा पाए भवनि पाणहीं, कल्पत जन्म कोट।
सामी सुजाग्ननि ते, कँहिंजी चले न चोट।
सटे पर्च्छिन्न पोट, माणिनि सुखु स्वरूप जो ॥ ३३१ ॥

सामीजी कहते हैं कि अन्धों ने अज्ञान की ओट लेली है। वे अज्ञान-वश आशा रखकर, करोड़ों जन्म पाकर, प्रपंच में स्वयं ही भटक रहे हैं। पर जागृतों (ज्ञानवानों) पर किसी का भी प्रभाव नहीं पड़ता है, वे परिच्छिन्नता (भेदभाव) रूपी पोटली को पटक कर (माया से मुक्त होकर) स्व-रूप का सुख भोगते रहते हैं (आत्मानंद में लीन रहते हैं) ॥ ३३१ ॥

अन्धनि ड्रिनो ओलो, अग्यां पाण अज्ञान जो।
भवनि भौसागर में, थी ढावाँढोलो।
सामी सुजाग्ननि खे, कोन्हे भउ भोलो।
क्षिम्यां खटालो, पाए सुम्हियां पदमें ॥ ३३२ ॥

अन्धों ने अपने आगे अज्ञान रूपी आवरण डाल रखा है, अतः वे डाँवाडोल (विचलित) होकर संसार रूपी सागर में भटक रहे हैं। सामीजी कहते हैं पर जागृतों (ज्ञानवानों) को किसी भी प्रकार का भय तथा भ्रम नहीं है, वे संतोष रूपी सेज बिछाकर आत्मपद में सोये हुए हैं ॥ ३३२ ॥

अन्धनि राह अन्धी, वदी मति मशाल रे।
भवनि भौसागर में, लहनि कीन कन्धी ।
सामी सुजाग्ननि जी, मति सुजाग्ी सुग्नन्धी।
वेठा ग्ंढि ब्रन्धी, अन्भय लालु अण-मुल्हो ॥ ३३३ ॥

अन्धों (अज्ञानी जीवों) ने बुद्धि रूपी मशाल-रहित, अन्धकारमय रास्ता अपना लिया है। वे संसार रूपी सागर में भटकते रहते हैं पर

किनारा नहीं ढूंढ पाते हैं। सामीजी कहते हैं कि जागृतों (ज्ञानवानों) की बुद्धि सचेत एवं (ज्ञान रूपी सुगन्ध से पूर्ण) सुगन्धित रहती है। उन्होंने अमूल्य आत्म-ज्ञान रूपी मणि को (हृदय में) गांठ बाँधकर रख लिया है (वे सदैव आत्मा का ही चिन्तन करते रहते हैं) ॥ ३३३ ॥

अन्धा अज्ञानी, सचु सुञाणनि कीन की।
खोहे मानुष देहि खे, भवनि वैरानी।
सामी सुजाग्रनि द्रिठो, दिलि में दिलि जानी।
मुशिकुलु आसानी, समुझाए कनि सिषजी ॥ ३३४ ॥

सामीजी कहते हैं कि अन्धे अज्ञानी लोग सत्य को नहीं पहचानते हैं, वे मानव-शरीर को व्यर्थ ही नष्ट कर, निर्धन बनकर (आत्म-धन गँवाकर) भटकते रहते हैं। परन्तु जागृतों (ज्ञानवानों) ने हृदय में प्राणप्यारे प्रियतम को देख लिया है, क्योंकि गुरु ने अपने शिष्य की प्रत्येक कठिनता को सरल बना दिया है ॥ ३३४ ॥

अन्धा अज्ञानी, सचु सुञाणनि कीन की।
ग़ल्हियूं कनि आकास जूँ, जोड़े ज़बानी।
सामी जुर्यो स्वरूप साँ, को हर्जनु हकानी।
निउड़ी नीशानी, सही कई जँहिं सम थी ॥ ३३५ ॥

अज्ञानी अन्धे सत्य को नहीं पहचानते हैं, वे मुख से आकाश की बातें (ज्ञानचर्चा) जोड़-जोड़ कर कहते हैं। सामीजी कहते हैं किन्तु वही एक आत्मज्ञानी हरिभक्त स्व-रूप से जा मिला है, जिसने नीचे झुककर (नम्रता से) समता अपना कर अपने लक्ष्य को जान लिया है। (आत्मा को पहचान लिया है) ॥ ३३५ ॥

अन्धा अज्ञानी, सचु सुञाणनि कीनकी।
ज़मनि मरनि मति रे, बणी अभिमानी।
सामी सुजाग्रनि द्रिठो, दिलि में दिलि जानी।
हर्दमि हकानी, माणिनि मौज मुक्ति जी ॥ ३३६ ॥

अज्ञानी अन्धे सत्य को नहीं पहचानते हैं। वे बुद्धिहीन अभिमानी बनकर जन्मते एवं मरते रहते हैं। सामीजी कहते हैं किन्तु जागृतों ने हृदय में ही प्राणप्यारे (परमात्मा) को देख लिया है। वे आत्म-ज्ञानी सदैव ही मुक्ति का आनन्द मनाते रहते हैं ॥ ३३६ ॥

अन्धा अति अनीति, भुली कनि भर्म में ।
पुठी ड्रेई पाणखे, भोगिनि था भयभीति ।
सामी सुजाग़नि जी, सभि सुजाग़ी रीति ।
करे प्रेम प्रतीति, पूर्ण ड्रिसनि पीअ खे ।। ३३७ ।।

अन्धे (अज्ञानी) भ्रमों में (अपने सच्चे स्वरूप को) भूलकर महान् अनीति करते रहते हैं। वे अपने (स्वरूप) से मुख मोड़ कर, भयभीत होकर (सांसारिक सुख) भोगते रहते हैं। सामीजी कहते हैं, परन्तु जागृत (ज्ञानी) सब कुछ सावधानी से ही करते हैं । वे पूर्ण प्रियतम (परमात्मा) को प्रेम तथा विश्वास से देखते रहते हैं ।। ३३७ ।।

अन्धा अन्धी राति, ड्रिसनि मति मशाल रे ।
पुठी ड्रेई पाण खे, कनि पराई ताति ।
सामी सुजाग़नि खे, सदाई प्रभाति ।
पाए आतम ज्ञाति, इस्थति थिया आकास जाँ ।। ३३८ ।।

अन्धा (अज्ञानी) ज्ञान रूपी मशाल का प्रकाश न पाकर सदा अन्धकारमयी रात्रि को ही देखता है। वह अपने स्वरूप से मुख मोड़कर दूसरों की चिन्ता करता रहता है। सामीजी कहते हैं परन्तु जागृतों के लिए सदैव ही (ज्ञान रूपी) प्रभात बना रहता है, अतः वे आत्मज्ञान प्राप्त कर आकाश की भाँति स्थित हो गये हैं ।। ३३८ ।।

अन्धा अन्धगुबारु, ड्रिसनि मति मर्म रे ।
भवनि भौ-सागर में, करिनि कीन क़रारु ।
सामी सुजाग़नि जो, सुजाग़ो वंहिवारु ।
अन्दरि ब्राहरि यारु, पूरणु ज्ञाणनि पंहिजो ।। ३३९ ।।

सामीजी कहते हैं कि अन्धे (अज्ञानी जीव) निर्लज्ज तथा बुद्धिहीन होकर अज्ञान को ही देखते रहते हैं। वे कभी भी चैन नहीं पाते हैं, सदैव भवसागर में भटकते ही रहते हैं। किन्तु जागृतों (ज्ञानी जीवों) का व्यवहार जागृत (ज्ञान पूर्ण) ही होता है। वे भीतर तथा बाहर अपने पूर्ण मित्र (परमात्मा) को ही देखते हैं ।। ३३९ ।।

अन्धा अन्धेरी, ड्रिसनि मति मशाल रे ।
गर्भ जूणि जे ग़ार में, पाइनि नितु फेरी ।
सामी सुजाग़नि जी, सुजाग़ी सेरी ।
मेटे मैं मेरी, इस्थति थिया आकास जाँ ।। ३४० ।।

सामीजी कहते हैं कि कि अन्धों को बुद्धि (ज्ञान) रूपी मशाल के अभाव में सदा अन्धकार ही दिखाई देता है। वे सदैव गर्भ रूपी गुफ़ा में चक्कर काटते रहते हैं; किन्तु जागृतों (ज्ञानवानों) की रक्षा जागृति (ज्ञान) करती रहती है। वे 'मैं' तथा 'मेरी' की भावना मिटाकर आकाश की भाँति स्थित हो गये हैं॥ ३४०॥

अन्धा अन्धो न्याउ, भुली कनि भर्म साँ।
रखनि न रतीअ जेतिरी, सामी सुधि समाउ।
स्याणनि सुजाग़नि जो, सुजाग़ो स्वभाउ।
लूअं लूअं मंझि लखाउ, प्रत्क्ष द्रिसनि पीअ खे॥ ३४१॥

सामीजी कहते हैं कि अन्धे (अज्ञानी) भ्रम में भूलकर अन्धा न्याय करते हैं (अन्याय करते हैं)। वे रत्ती भर भी होश तथा पहचान नहीं रखते हैं। परन्तु जागृतों (ज्ञानवालों) का स्वभाव जाग्रत (ज्ञान पूर्ण) ही होता है। वे रोम-रोम में प्रियतम की झलक प्रत्यक्ष देखते हैं॥ ३४१॥

अन्धा अनाड़ी, सचु सुञाणनि कीन की।
लाए वेहनि लोक में, तमां जी ताड़ी।
सामी सुजाग़नि जी, सम सुञाण वाड़ी।
सम थी सपाड़ी, कटे छद्रियाऊं कल्पना॥ ३४२॥

अनाड़ी अन्धे (ज्ञान से अनजान) सत्य को नहीं पहचानते हैं। वे संसार में इच्छाओं की कड़ी बाँध कर बैठे हैं। (एक इच्छा पूरी होते ही दूसरी इच्छा उत्पन्न हो जाती है)। सामीजी कहते हैं, किन्तु जागृतों (ज्ञानवानों) को समता की पहचान रहती है, अतः समता को अपना कर उन्होंने प्रपंच को जड़ सहित काट दिया है॥ ३४२॥

अन्धा अनीतो, हलनि मति मर्म रे।
पाए भवनि पाणहीं, कये जो कीतो।
सुजाग़नि सामी चए, जाग़ी मन जीतो।
पर्ची पुरि पीतो, प्यालो प्रेम अगम जो॥ ३४३॥

सामीजी कहते हैं कि अन्धे (अज्ञानी जीव) निर्लज्ज तथा बुद्धि (ज्ञान) हीन होकर अनीति करते रहते हैं। वे स्वयं ही अपने (बुरे) कर्मों का फल पाकर भटक रहे हैं। परन्तु जागृतों ने जागृत होकर (आत्मज्ञान प्राप्त कर) अपने मन को जीत लिया है, अतः वे प्रसन्न होकर अनन्त प्रेम का प्याला लबालब भर कर पी रहे हैं॥ ३४३॥

अन्धा अनुमानी, सचु सुञाणनि कीन की।
करिनि पंहिंजी पाणहीं, हैबत हकानी।
सामी सुजाग़नि खे, दिलि में दिलि-जानी।
निर्भय निशानी, द्रियनि द्रेह अगम जी ॥ ३४४ ॥

सामीजी कहते हैं कि अन्धे सत्य को नहीं पहचानते हैं, वे केवल (सत्य के विषय में) अनुमान ही करते रहते हैं वे स्वयं ही अपने को मुसीबतों का अधिकारी बनाते हैं (अज्ञान के कारण स्वयं ही मुसीबतों को मोल लेते हैं।) परन्तु जागृतों (ज्ञानवानों) के हृदय में प्राणप्यारे (परमात्मा) का निवास है, अतः वे निर्भय होकर अमरपुरी (परमात्मा के निवास-स्थान) की प्राप्ति को ही अपना लक्ष्य बनाते हैं (परमात्मा को पाने की राह पर चलते हैं) ॥ ३४४ ॥

अन्धा अनुमानी, सचु सुञाणनि कीन की।
ग़ाल्हियूं कनि बुधी सुधी, जोड़े जबानी।
सामी सुजाग़नि द्रिठो, दिलि में दिलिजानी।
सदा सैलानी, खेलिनि पंहिंजे ख़्याल में ॥ ३४५ ॥

सामीजी कहते हैं कि अन्धे (अज्ञानी) सत्य को नहीं पहचानते हैं, वे (सत्य के विषय में) केवल अनुमान ही करते रहते हैं तथा (सत्य अथवा परमात्मा के विषय में) सुनी हुई बातों में अपनी ओर से कुछ जोड़ कर बकते रहते हैं, किन्तु जागृतों (ज्ञानियों) ने प्राणप्यारे (परमात्मा) को हृदय में देख लिया है, अतः वे सैलानी सदैव अपने ही विचारों में खेलते रहते हैं (मस्त रहते हैं) ॥ ३४५ ॥

अन्धा अनुमानी, सचु सुञाणनि कीनकी।
ग़ाल्हियूं कनि गुणनि जूं, जोड़े जबानी।
सामी सुजाग़नि द्रिठो, दिलि में दिलिजानी।
सदा सैलानी, रहनि रहति सचीअ साँ ॥ ३४६ ॥

सामीजी कहते हैं कि अन्धे, सत्य को नहीं पहचानते हैं। वे (उसके विषय में) केवल अनुमान ही करते रहते हैं तथा (परमात्मा के) गुणों का बखान, अपने ही मुख से बनाई हुई बातों द्वारा करते रहते हैं। परन्तु जागृतों ने प्राणप्यारे (परमात्मा) को अपने हृदय में ही देख लिया है। वे सैलानी (सैर करनेवाले) सदैव सत्य (परमात्मा) से ही प्रसन्न रहते हैं ॥ ३४६ ॥

अन्धा अनुमानी, सचु सुञाणनि कीनकी ।
दरि दरि देवाननि जाँ, कनि कूड़ी कहानी ।
सामी सुजाग़नि ड्रिठो, दिलि में दिलिजानी ।
सदा सैलानी, पीअनि प्यालो प्रेम जो ॥ ३४७ ॥

सामीजी कहते हैं कि अन्धे (आज्ञानीजीव) सत्य को नहीं पहचानते हैं, वे (उसके विषय में) केवल अनुमान ही कहते रहते हैं। वे पागलों की तरह द्वार-द्वार जाकर झूठी कहानियाँ ही कहते रहते हैं, किन्तु जागृतों ने प्राणप्यारे (परमात्मा) को हृदय में ही देख लिया है, अतः वे सैलानी, सदैव ही प्रेम का प्याला पीते रहते हैं (परमात्मा के प्रेम में मस्त रहते हैं) ॥ ३४७ ॥

अन्धा अभिमानी, सचु सुञाणनि कीनकी ।
खंयो वतनि पाण साँ, भर्म जी भानी ।
इस्थति रहे आकास जाँ, को व्रिलो विज्ञानी ।
दिलि में दिलिजानी, सामी ड्रिठो जंहि सम थी ॥ ३४८ ॥

सामीजी कहते हैं कि अभिमानी अन्धे (अज्ञानी) सत्य को नहीं पहचानते हैं। वे अपने साथ भ्रम रूपी पोटली उठाकर घूमते रहते हैं; पर जिस विरले विज्ञानी ने सम होकर प्राणप्यारे (परमात्मा) को हृदय में ही देख लिया है, वह आकाश की भाँति स्थिर हो जाता है ॥ ३४८ ॥

अन्धा अहंकारी, सचु सुञाणनि कीनकी ।
खंयो वतनि पाण साँ, खुआरीअ जी खारी ।
सामी सुजाग़नि सटी, सिर तों पिण्ड सारी ।
बेहदि जी ब्रारी, पटे वेठा पाकु थी ॥ ३४९ ॥

सामीजी कहते हैं कि अहंकारी अन्धे (अज्ञानी) सत्य को नहीं पहचानते हैं। वे निन्दा की पिटारी अपने साथ लेकर घूमते रहते हैं (अज्ञान में अपने को व्यर्थ ही नष्ट करते रहते हैं)। लेकिन जागृतों ने अपने सिर से (अज्ञान के) सारे पिण्ड को पटक दिया है तथा पवित्र होकर अनंत की खिड़की खोले बैठे हैं। (अनंत परमात्मा में लीन हो गये हैं) ॥ ३४९ ॥

अन्धा इशारत, समुझनि कीन सज्ञण जी ।
देही ज्ञाणी पाणखे, भज्ञिनि नाना मत ।
सुजाग्रा सही थिया, कटे सभि कल्पत ।
सदा सनाखत, सामी रखनि स्वरूप जी ।। ३५० ।।

सामीजी कहते हैं कि अन्धे (अज्ञानी जीव) सज्जन पुरुष (ज्ञानी) के इशारों को नहीं समझते हैं । वे अपने को शरीर मानकर नाना प्रकार के पंथों को अपनाते रहते हैं; लेकिन जागृतों ने समस्त प्रपंच को त्याग कर, सत्य को जान लिया है, अतः वे सदैव स्व-रूप की पहचान रखते हैं ।। ३५० ।।

अन्धा उपाधी, सचु सुञाणनि कीनकी ।
खणनि पंहिंजी पाण हीं, रोई पिटे राधी ।
सुजाग्रनि सही करे, समता मति साधी ।
सदा समाधी, सामी रहनि स्वभाव में ।। ३५१ ।।

सामीजी कहते हैं कि अन्धे (अज्ञानी) भ्रमों में ही प्रसन्न रहते हैं । वे सत्य को नहीं पहचानते हैं । वे स्वयं ही अपनी पकाई हुई चीज़ें अर्थात् अपने किये हुए बुरे कर्मों का फल रो-धोकर उठा रहे हैं (भोग रहे हैं) । किन्तु जागृतों ने सत्य को पहचानकर समता का रास्ता अपना लिया है, अतः वे अपने ही भावों में समाधि लगाये बैठे हैं ।। ३५१ ।।

अन्धा उपाधी, सचु सुञाणनि कीनकी ।
देही ज्ञाणी पाणखे, रोई खणनि राधी ।
सुजाग्रा रहनि सामी चए, सदा समाधी ।
ऊन्हो अगाधी, ड्रिसनि अन्भय आत्मा ।। ३५२ ।।

सामीजी कहते हैं कि अन्धे (अज्ञानी) भ्रमों में ही प्रसन्न रहते हैं, वे सत्य को नहीं पहचानते हैं तथा अपने को शरीर मानकर अपनी पकाई हुई चीज़ें अर्थात् अपने किये हुए कर्मों के फल को रो-धोकर भोग रहे हैं (अपने बुरे कर्मों का फल भोगकर दुःखी हो रहे हैं) । परन्तु जागृत सदैव ही समाधि में स्थित रहते हैं । उन्होंने गहरे पैठकर (अर्न्तमुख होकर) आत्मा को देख लिया है ।। ३५२ ।।

अन्धा उपाधी, सचु सुञाणनि कीनकी ।
सुजाग्रनि सन्तोष सां, सुर्ति निर्ति साधी ।
सदा समाधी, सामी रहनि स्वभाव में ।। ३५३ ।।

अरुणमणि कर्णभूषण ॐपरीचि पसरिसिद रामचंद्र शरीरं
परिभविसिदुदेंळविसिला॰वरिसिदि कमनीय पुंडरीक श्रीयं ।।१२३।।
अरसिय मनदोंल कॆंजडॆ॰ दोंरॆकॊळिसुवुदुचितमॊडनॆ कज्जलरुचियोंळ्
पोंरॆद नयनोत्पलंगळ् ॰दोंरॆकॊळिपुदु चित्रमल्तॆ रागोत्सवमं ।।१२४।।
धात्रियोंळन्यर तेजो ॰ मात्रमनां सलिसॆनॆंब तॆरदिं पोय्यल्
धात्रियं कय्यि निमिर्व॰ क्षत्रशिश्वामणि मणिप्रदीपंकुरमं ।।१२५।।

किविगिनिदॆनिप्प वीणा
रवदोंळनादरमनुंटुमाडित्तु तनू-
भवन तळर्नडॆयोंळ् पों-
ण्मुव मृदुपद कनक किंकिणी झणझणितं ।।१२६।।

श्रवणक्कर्थव्यक्तिय ॰ नवटयिसदॆ नॆगळ्वि वश्यमंत्राक्षरदं-
तॆवोंलॆल्लरुमं सोलिसि- ॰दुवु तोंदलंनुडिव रामचंद्रन नुडिगळ्।।१२७।।
तिळिगोंळदोंळगॆडॆयाडुव॰कळहंसन बालकेळि पुदुवॆनॆ मधुपा-
टळनेत्र धवलांगं ॰पळिकिन कुट्टिमदमेलॆ दट्टडियिट्टं ।।१२८।।
नडॆगल्वदुं विण्पिं ॰ कोंडॆ नॆगॆदपुदुर्वियॆंदु पासुगि पलवुं
पॆडॆयं शिशुनडॆवॆडॆयोंळ् ॰ पडॆदांतु सहस्रफणनॆनल् पॆसर्वडॆदं ।।१२९।।

लाल रत्न के कर्णाभरण की कांति को प्रस्फुटित करनेवाला राम का शरीर बालसूर्य के ताप से थके पुंडरीक पुष्प (सफ़ेद कमल) की तरह था। १२३ रानी के मन के हर्षोत्सव से मुख का लाल होना सहज स्वाभाविक है, लेकिन काजल से काली हुई आँखों का प्यार से लाल होना आश्चर्य है न? । १२४ परिचारिका के (द्वारा) उठा लेने पर उसके हाथों से उछल-उछलकर क्षत्रियकुल-शिखामणि बालक रत्नदीप-शिखा पर इस तरह से मार रहा था कि वह शायद यह संकेत कर रहा था कि संसार के अन्य राजाओं के अहंकार को वह सहन नहीं करेगा। १२५ उस बालक द्वारा धारण की हुई पैंजनी का किंकिणी-स्वर माता-पिता के कानों में सदा मधुर वीणानाद के प्रति अनादर जगाता था। १२६ कानों से सुनते समय अर्थ पैदा न करनेवाली रामचंद्र की तुतली बातें वशीकरण-मंत्र-सा सबको मोहित कर देती थीं। १२७ शुद्ध जल के सरोवर में तैरते हुए कलहंस की बालक्रीडा ही मानो जोड़ी है, श्वेतवर्ण का रामचंद्र, स्फटिक के फ़र्श पर अटपट पग रखकर चल रहा रहा था। १२८ चलना सीखते समय, अलकें बिखेरकर, छाता लेकर चलने के कारण वासुकी (सर्प) की तरह सहस्रफन नाम पड़ा है। १२९ बालक की

मणियेरं चेंबोन्नुडे ※ मणियुलिगेले गेल्दनंगरुचियिंदैरा-
वणमं कुमार चूडा-※ मणि लालाजलदोळं चतुर्दंतदोळं ॥१३०॥
अमृतांशुपेर्चे पेर्चुव ※ समुद्रमेंतंते रामचंद्रं दिवस
क्रमदिनभिवृद्धिवेत्ता ※ क्रमिसिदनति मुग्धभावमं शैशवमं ॥१३१॥

अंतु रामचंद्रनादिन्यनंते नित्योदयमनप्पुकेय्वुदुं—

बालत्ववोळमुदात्त गु-
णालयमेनिसिद तनूज मुखचंद्रमनं
लीलेयिनीक्षिसि दशरथ
नोलाडिदनधिक रागरसवारिधियोळ् ॥१३२॥

अंतु संतोषद परमपदमनेय्दिर्पुदुमदल्लदेयुमा महीवल्लभन मोहवल्लरिगळे पूतुवेंबंते पुष्पवतिथरागि नाल्कुनीमिंदु बेळ्वसनद पोसदेसे विलासंबडेये सूळ्गेवंदु शुभस्वप्न दर्शनानंतरं केलवु दिवसमिर्पिनं—

कुलदोदविंगी सनियरे ※ कुलदेवतेयर्कळेंब बगे पुट्टुविनं
तलेदोरे गर्भचिह्नं ※ तलेदोरिदुदवनिपतिगे रागोद्रेकं ॥१३३॥

आगळाकेगळ पसुवे सेवसिय बासे लावण्यनदिय शैवाललतेय लास्यमनपहास्यंगेय्येयुमाकेगळ करंगिद कुच चूचुकंगळिंदेसेदु

पहनी हुई सुवर्ण-करधनी की घंटिका-ध्वनि घंटाघोष से भी अधिक थी; उसकी देहकांति के सम्मुख ऐरावत का धवलवर्ण फीका प्रतीत होता था। चार दाँतों से युक्त राम लार बहाता हुआ (दिन-दिन) बढ़ रहा था। १३० चंद्रोदय के कारण उमड़नेवाले समुद्र की तरह रामचद्र ने दिन-प्रतिदिन बढ़ते-हुए अपने शैशव को बिताया। १३१ इस तरह, नियमित रूप से उगनेवाले सूरज के समान वह बड़ा होता जा रहा था कि—बाल्यकाल में गुणों के भंडार-से पुत्र के मुखचंद्र को प्यार से निरखकर दशरथ वात्सल्य-सागर में तैरने लगे। १३२ इधर दशरथ संतोष की परमावधि का अनुभव कर रहे थे, और उधर उसकी मोहलता का पुष्प खिला-सा—अन्य तीनों रानियाँ पुष्पवती बनीं। चौथे दिन के स्नान के पश्चात् धवल (सफ़ेद) वस्त्रों से सजकर प्रसन्न होकर बारी-बारी से शुभ स्वप्न देखते हुए कुछ दिन बात जाने के पश्चात्—जब उनके गर्भधारण के चिह्न दिखाई पड़े और यह स्पष्ट हुआ कि ये रानियाँ कुलाभिवृद्धिके लिए कुलदेवियाँ हैं, तब उन पर दशरथ का मोह (प्यार) बढ़ गया। १३३ तब उनके हरे वर्ण की लहराती हुई रोमराजियाँ (रोमावली) सौंदर्य-सागर में तैरते हुए नीलरत्नों की लताओं के सौंदर्य का उपहास करने लगीं।

तोळमोर्दलि जक्कुलिसुव पेर्मोर्ले कर्नेय्दिलेसळं नलिदु कर्चुव जक्कवक्किय विलासमनिक्कि मेट्टियुमाकेगळ मुखरसदोळ्मूडि मुळ्काडुव कपोलयुगळं तिळिगोळदोळगण बिळिय तावरेयेसळं सरसवाडेयु माकेगळ पेरेनोसलं मेट्टि निमिर्द तोरगुरुळ तोंगलेळवेरे-यनंधकारमावरिसिदंते तोरेयुं, अनंतरमवर्गे पुंसवन सीमंतोन्नय-नादिसकल मंगळमं दशरथनरनाथमाळ्पुदुमनुक्रमदिं शुभदिन-मुहूर्तदोळ सुमित्रे लक्ष्मणनं, कैके भरतनं, सुप्रभे शत्रुघ्ननं पडेवुदुं—
पसरिसे पूवलिगळ् बा- * जिसे बद्दवणंगळोडने मिळ्ळिसे गुडिगळ्
देसेबिद्दवाडे तरुणिय * रोसगेयमेलोसगेयादुदंदरमनेयोळ् ।।१३४।।

आ समयदोळ् दशरथं सुतमुखदर्शनोत्सुकं कतिपयाप्त परिजन परिवृतं सुमित्रादेविय सूतिकासदनमं पोक्कु—

सिरिसिंहक्कभिषेकमं पडेवुदं रत्नाकरं सुत्तिदु-
र्वरेयं भासुरचक्रमं कनसिनोळ् पोंबेट्टवेरिर्दुदं
हरिणीनेत्रे सुमित्रे कंडुदरिनाळ्गुं बेळ्ळिवेट्टंबरं
भरतक्षेत्रमनेंदु कण् तणिविनं सौमित्रियं नोडिदं ।।१३५।।

बालार्क मरीचियेनल् * बालकन शरीरकांति पसरिसे हर्षो-
न्मीलनदिं दशरथ नर * पालक मुखकमळमें मनंगोळिसिदुदो ।।१३६।।

बाहुमूल से लेकर फैले हुए उनके स्तनों के काले अग्रभाग तो कमल के दल को काटनेवाले चक्रवाक की भंगिमा को भी मात कर रहे थे। उनके लावण्य (सौंदर्य) रसमें डूबते-तैरते (गोता खाते हुए) कपोल तो शुद्ध पानी के तालाब के श्वेतकमल-दल की दिल्लगी उड़ा रहे थे। अर्धचंद्राकृति के ललाट पर फैली हुई केशराशि, चंद्र पर आवृत्त रात के समान प्रतीत हो रही थी। दशरथ ने उनके लिए 'पुंसवन', 'सीमंत', 'उन्नयन' आदि सभी प्रकार की विधियाँ कराईं। शुभ दिन शुभ मुहूर्त में सुमित्रा से लक्ष्मण, कैकेयी से भरत और सुप्रभा से शत्रुघ्न ने जन्म लिया तो—बाजे बज उठे (बजाये गये), फूलों की वर्षा हुई; दिशा-दिशाओं में ध्वज लहराने लगे; राजमहल में सबके सब सजधज गए। १३४ —उस समय राजा दशरथ उत्सुक होकर परिजनों के साथ बच्चों को देखने के लिए सुमित्रा के सूतिका-गृह में प्रविष्ट हुए। हरिणीनेत्रा सुमित्रा ने स्वप्न में सिंह का अभिषेक होते हुए, समुद्र द्वारा आवृत्त समुद्र को तथा, चक्र एवं स्वर्ण पर्वतारोहण देखा, इससे प्रतीत हुआ कि यह बालक (लक्ष्मण) रजत पर्वत तक व्याप्त भरतखंड (भूमि) पर शासन करेगा। ऐसे (योग्य) पुत्र को दशरथ आँखें तृप्त होने तक देखते रहे। १३५ बालक की

अनंतर भरत शत्रुघ्नर जन्मोत्सव मंगळमनाचरिसि—

मनुवंशांबर भानु कल्पतरु कैवंदंतें रैवृष्टि प-
ळ्कनें कोंडंतें सुरेंद्रधेनु करेदंतार्तित्तु कूतित्तु स-
म्मर्नदिदित्तु सुहृज्जनं परिजनं विद्वज्जनं जीयेंनल्
तनयर् मूवर जातकर्ममुमनत्युत्साहदिं माडिदं ॥१३७॥

अंतु दशरथमहीनाथं संतान समृद्धियिनतिप्रवर्धमानसुखाधीन मानसनागिर्पुदुं—

अवनीवल्लभ तनयर् ❋ नव शशिकलेयंतें पडेंदु नयनोत्सवमं
दिवसक्रमदिंदं वृ- ❋ द्धिवडेंदरमरावनीजदगेयेंबिनेगं ॥१३८॥

नसुनगें कमळद सिरियं
नसुनगें जननियर लोचनभ्रमरंगळ्
मुसुरिदुवु मोहवल्लरि
पसरिसि पर्विदुदु सुतर लालाजलदिं ॥१३९॥

तळरडि यिडुवत्तलें परि
देंळसुव जनयिर दिट्टि मणिकुट्टिममं
बळसें पोंसतलदें नेंय्दि-लर्गोळदाळगण
राजहंसनं नेंनेंयिसिदर् ॥१४०॥

शरीरकांति सूर्यप्रकाश के समान सुशोभित हुई तो दशरथ का मुखकमल हर्ष से खिल उठा। १३६ तत्पश्चात् भरत-शत्रुघ्न का जन्मोत्सव सम्पन्न कर—आकाश सदृश मनुवंश के लिए सूर्यरूपी दशरथ मानो कल्पवृक्ष ही फलित हुआ हो, मानो मूसलाधार सुवर्ण-वर्षा हुई हो, मानो कामधेनु ने ही दूध दिया हो; विद्वज्जनों को, परिजनों को, सुहृदमित्रों को बुलाकर, दान देकर, तृप्तकर, उत्साह और उल्लास से तीनों पुत्रों की जातकर्म-विधियाँ सम्पन्न कराईं। १३७ इस तरह दशरथ महाराज संतान पाकर सुख-समृद्धि के साथ प्रसन्न चित्त थे कि—उनके बच्चे शुक्लपक्ष के चंद्र के समान दिन-प्रतिदिन बड़े होते हुए, देवताओं के प्रतिस्पर्द्धी के समान सुशोभित हुए। १३८ उनकी हँसी कमलसौंदर्य को लजा देती थी और माताओं की भ्रमररूपी आँखें (उन्हें देखकर) खिल जाती थीं। बच्चों के मुँह से बहते (टपकते) हुए लार-रस से मोह रूपी लता बढ़ने और फैलने लगी। १३९ बच्चों के कोमल पद जहाँ-जहाँ पड़ते वहाँ-वहाँ माताओं की सजग आँखें रत्नफ़र्श फैलाने लगीं। तब वे ऐसे प्रतीत होते मानो सरोवर में अभी अभी खिले कमलों के साथ राजहंस विहार कर रहे हों। १४० कपास के पत्ते,

अरळेले मत्तिगाय पुलियुगुर् नवरत्नद कंकणंगळुं
गुरमुडेनूल पोन्न मणिकिंकिणि रन्नद घंटे नूपुरं
वर वलयंगळेंब पलवंदद चंदद बालवंदमो-
प्पिरे पितृमातृगळ्गे पडेदर् तनयर् नयनोत्सवंगळं ॥१४१॥

अंतु दशरथ महीनाथन साम्राज्यश्रीय मणिमयाभरणदंते सोगयिसुव सुतर बालकेळीदर्शनदिं सुमित्रेय नयनपुत्रिके नलिदु नर्तिसेयुं, कैकेय तनुलतिके पुळक कळिकेयं तळेयेयुं, सुप्रभेय मनःप्रमोदमुदि तोदितमागेयुं राम-लक्ष्मण भरत-शत्रुघ्नरनुक्रमदिं शैशवमनतिक्रमिसे—

वसुमतिवेसरन्वर्थं
वसुधेगेनल करेदु पोन्न मळेयं दान
व्यसनि दशरथनदें पोस
यिसिदनो चौलोपनयन महिमोत्सवमं ॥१४२॥

परम प्रेमं जन्मां- ※ तरदिंदोडवंदुदेनिसि गेडेबेच्चवोल-
च्छरियागे राम लक्ष्मी- ※ धररोळमादत्तु भरतशत्रुघ्नरोळं ॥१४३॥

अमळ्गळिवरेंबिनं तम
गमळ्वेसरमदें्सेये ताय तंदेय चित्त-
कक्मर्दिन मळेयं कळेदर्
कुमारकर् मूर्तिगोंड पुरुषार्थदवोल् ॥१४४॥

कच्चे अंजीर और बाघ-नख के आकर के और रत्नजटित कंगन, अँगूठी, करधनी, सुवर्णमेखला (आभूषण) आदि बच्चों के लिए उचित अनेक आभरणों से सुसज्जित (सुशोभित) बालकों ने पिता-माताओं की आँखों को आनंदोत्सव प्रदान किया। १४१ इस तरह दशरथ साम्राज्य-वैभव के लिए रत्नाभरण सदृश सुशोभित अपने बच्चों की बाल-लीलाओं को देखते रहते। सुमित्रा की आँखों की पुतली (बाल-क्रीड़ाओं को देखकर) नाच उठती; कैकेयी की लतारूपी देह, रोमांचन-रूपी कलियों को खिला देती; सुप्रभा का मन आनंदविभोर हो जाता। इसी तरह राम, लक्ष्मण, भरत, शत्रुघ्न का शैशव (इस प्रकार) बीता। दशरथ, दान-गुण ही जिसका व्यसन था, ने सोने की वर्षा बरसवाकर, सज्जनों को दान करके, यह सिद्ध कर दिया कि पृथ्वी के लिए वसुमती नाम अन्वर्थ (सार्थक, समुचित) है; और बड़े धूमधाम से अपने बच्चों का चौल-यज्ञोपवीत संस्कार करवाया। १४२ पुत्रों में राम और लक्ष्मीधर (लक्ष्मण), भरत और शत्रुघ्न जन्मांतरों के

सुरधेनु स्तनभारदंते पुरुषार्थ मूर्तिगोंडंते ना-
ल्वरुमोंदागिरे नंदनर दशरथं नाल्कुं समुद्रंबरं
धरेयं कूडे निर्मिचि नाल्देसेयोळं नाल्कुं जयस्तंभमं-
चरितार्थर् निलिसल् समर्थरिवरेंदुत्साहमं ताळ्दिदं ॥१४५॥

मत्तं निज तनूभवर निर्जित मनोजकारमुमं तिळमसूरिकादि शुभ व्यंजनरंजित प्रशस्तावयवंगळुमं, हल कुलिश शंक चक्र लांछनंगळप्प कर चरणंगळुमं नोडि सकल साम्राज्यश्रीयनप्पु-कॆय्दंते संतोषदंतनॆय्दि—

सविववसरमिदु विद्या- ❋ युवतिय वदनारविंद मधुवेंदुत्तुं
विविध कळाचार्यरना- ❋ यॆवर्यरं गुरू नियोगदोळ् योजिसिदं ॥१४६॥

शुभदिन मुहूर्तदोळ् पु-
ण्यभागिगळ् कलिसॆ गुरुगळोडवंदुदो पू-
र्व भवोपार्जित विद्या-
विभवमॆनल् सकलशास्त्र परिणितरादर् ॥१४७॥

परम स्नेही की भाँति, दो देह होते हुए भी एक मन-सा, अन्योन्य (स्नेहबंधन में) आबद्ध हुए। १४३ वे जुड़वों की तरह अपने नामों को भी समुचित मानकर अपने माता-पिता के मन में अमृत की वर्षा करके ऐसे सुशोभित हुए, मानो चतुर्विध पुरुषार्थ ने ही मूर्तिरूप धारण कर लिया हो। १४४ वे चारों बालक कामधेनु के स्तन के भार की तरह, मूर्तिवान् पुरुषार्थ जैसे थे। (यह देखकर) दशरथ इस कल्पना से उत्साहित हुए कि ये चारों पुत्र चार समुद्रों तक व्याप्त भूमि को जीतकर चारों दिशाओं में अपने कीर्तिस्तंभ गाड़ने में समर्थ हैं। १४५ कामदेव को (सौंदर्य में) पराजित करनेवाले (अपने पुत्रों के) शरीर का आकार, उनके प्रशस्त अंगोपांगों को हल, कुलिश, शंख, चक्र से युक्त उनके हाथ-पैरों को देखकर दशरथ ऐसे प्रसन्न हुए मानो समस्त साम्राज्य-श्री को सीने से लगा लिया हो—इस विचार से कि विद्या-युवती के वदनारविंद-मधु का स्वाद लेने के लिए यह समय उपयुक्त है, (बच्चों को पढ़ाने के लिए दशरथ ने) विविध विद्याओं में पारंगत आचार्यों को नियुक्त किया। १४६ शुभमुहूर्त में पुण्यशील गुरुओं ने पढ़ाया, तो बालक सकल शास्त्रों में ऐसे परिणत हुए मानों पूर्वजन्म में अर्जित समस्त विद्यावैभव उनके साथ ही आया हो। १४७ राम, लक्ष्मण, भरत, शत्रुघ्न—चारों की अध्ययन-रीति रोमांचन करा देनेवाली थी। उन्होंने चौसठ विद्याओं को ऐसा (आसानी से और शीघ्र) सीख लिया कि अन्यों के मन (मत्सर से) जल उठे। १४८ ज्योति से

रोमांचमोडरिसेयुं- ✻ रामन लक्ष्मण भरत शत्रुघ्नर वि-
द्यामहिमे चतुषष्टिक-✻ ला महितर मनदोळीश्र्येयं पुट्टिसुगुं ॥१४८॥

सोडरं पोत्तिसिकोंडु पोगे सोडरोळ् तेजं गुणाधिक्यदिं
कडुगोवं पडेवंते तम्म विशदप्रज्ञा गुणोत्कर्षदिं
पडेमानेनरूवत्तुनाल्कु कळेयुं तत्कोविदर् मेच्चे नू-
र्मडि मेलादुवु रामलक्ष्मणरोळें सत्सेवे सामान्यमे ॥१४९॥

कलितनमुं महाबलमुमुळ्ळन कय्दुवे कय्दु पंदे दु-
र्बलनेनिसिर्दवं पिडिद कैदुवदेनर कैदुवेंबिनं
कलिसिद भार्गवात्मजरनोडिद तज्ञर मुय्वु नेत्तियं
गेले सले रामलक्ष्मणरदें नेरे कल्तरो कैदुवेल्लमं ॥१५०॥

मिगे वंदेल्लर बिल्ल बिन्नणद बिण्पं रामनेंबिनं
मिगे तन्नेसुपमासमादुदेने राम कल्त बिल्बल्मेयं
पोगळल्वेळ्पुदे रामनोळ सदृशवेंबन्नं धनुर्विद्येयिं
जगमं मोच्चिसि चाप चापलतेयं कोंडाडिदं लक्ष्मणं ॥१५१॥

अंतवर् सकलशस्त्र शास्त्रविद्याविशारदरागि कुमार दशाति-
शयमनप्पुकेय्वुदुं—

(अन्य) ज्योति जलाते रहने से जिस तरह दीप में गुणाधिक्य होता है और उसका प्रकाश बढ़ता है, उसी तरह अपने में निहित प्रतिभा-विशेष से दशरथ के पुत्र समस्त विद्याओं में ऐसे पारंगत हुए कि गुरुजन (अतिशय) प्रसन्न हुए। १४९ जिनमें वीरत्व और शक्ति हो, उनके हाथों में रहनेवाला आयुध ही (वास्तव में) आयुध है; दुर्बलों द्वारा धारण किये हुए आयुधों का क्या महत्व? राम और लक्ष्मण के युद्ध-चातुर्य (युद्ध-कौशल) ने गुरुजनों और धनुर्विद्या-विशेषज्ञों को आश्चर्यचकित कर दिया। १५० कहाँ राम की तीरंदाज़ी की कला! और कहाँ अन्यों की तीरंदाज़ी की कला! राम इस कला में अद्वितीय रहा। उसकी धनुर्विद्या की कुशलता के लिए मानो वही एकमात्र उपमान हो, उसके लिए मानो स्वयं वही सदृश हो। राम की शरसंधान-कला से संतुष्ट होकर लक्ष्मण ने प्रशंसा की। १५१ इस तरह वे समस्त शास्त्रों में विशारद होकर कुमारावस्था को प्राप्त हुए तो—रघुराम का धवल शरीर इस तरह सुशोभित हुआ मानो वह चंद्रबिंब से निर्मित हुआ हो, या स्फटिक से उत्पन्न हुआ हो, या पुष्पों से निर्माण किया गया हो, अथवा चंद्रकांतमणि

हिमकर बिंबदिं कडॆदुदो पळिकिं पडॆदत्तो पूगळिं
समॆदुदो चंद्रकांतमणियिं बॆसकॆय्दुदोमौक्तिकंगळिं
समनिसिदत्तो कोमलमृणाळिकॆयिं परिपूर्णमाय्तो पॆ-
ळिमिदॆनॆ रंजिसित्तु राघुरामन पांडुरदेहमंडलं ॥१५२॥

उन्नत ललाट पट्टं- * मन्निसदष्टमिय चंद्रनं नगॆगण्गळ्
मुन्नडॆविदुवु कमळम- * निन्नॆवण्णिपुदो रामनभिरामतॆयं ॥१५३॥

तॆरॆ करॆगण्मिदिगडल गाडियनॆळिसॆ तोरमुत्तिनै-
सरद मरीचियिं सिरियं ताय्वनॆ रामन पेरुरं मनो-
हरमॆनिसित्तु वारवनिताजन वश्यविधान बेदियॊळ्
दोरॆयॆनिसित्तु धैर्यगुण रोहण शैल शिलातलोपमं ॥१५४॥

ऒळिसिदुवु लक्ष्मणन वि- * शाळ विलोचन युगंगळं प्रभॆयिं
मॆळिसि नगॆयंपाळिसि- * काळिंदियॊळलर्द पुंडरीक श्रीयं ॥१५५॥

हरिनील रत्नमं कं- * डरिसिद कण्दॆरविगॆय्दॆ जीवंबॊय्दं-
तिरॆतोर्प गंडगाडिगॆ- * पुरुषोत्तमनॆंदु कॊंडु कॊनॆदुदु लोकं ॥१५६॥

मनमनलर्चिदत्तु पुरुषोत्तमनुच्च ललाट लेखॆ कृ-
ष्णन कुरुळोळि विष्णुविन पेरुरमायतिवॆत्त वारिजा-
क्षन धवलेक्षणं पुरुषसिंहन सिंहकटीतटं जना-
र्दनन भुजंग भीम भुजमंबुजनाभन नाभिमंडलं ॥१५७॥

से निर्मित हो, या मोतियों से बना हो, या मृदुल कमलनालों से पूर्ण हुआ हो। १५२ उन्नत ललाट-पट्ट ने अष्टमी के चंद्रमा को लजा दिया और उसकी हँसी से युक्त आँखें कमलों के लिए मार्गदीप बनीं। ऐसे राम के अभिराम (मनोहर) रूप का वर्णन कैसे करें ? । १५३ राम के विशाल वक्षस्थल पर सुशोभित पाँच लड़ियों का हार अत्यधिक उभरे हुए समुद्र की लहरों का परिहास कर रहा था; उसका धैर्य-गुण कनकपर्वत के समान उन्नत था। सबके मन को मोहित (आकर्षित) करते हुए वह सुशोभित हुआ । १५४ लक्ष्मण के विशाल नेत्र शरीरकांति के साथ उभरकर यमुना में खिले पुण्डरीक पुष्प (श्वेतकमल) को उपहास (की दृष्टि) से देखने लगे। १५५ इंद्रनील रत्न को काटते समय उत्पन्न होनेवाले प्रकाश की तरह आँखे खोलने पर प्रकाश से परिपूर्ण दिखाई देनेवाले और पराक्रम से युक्त राम को संसार ने पुरुषोत्तम कहकर प्रशंसा की। १५६ उस पुरुषोत्तम का विशाल ललाट, कृष्ण की केशराशि, विष्णु का विशाल वक्ष, वारिजाक्ष की दृष्टि, पुरुषसिंह का मध्यभाग, जनार्दन की पुष्ट भुजाएँ,

लक्ष्मण्ले पनि यो हुकूम् सुनि तहाँ बिन्ति गऱ्या क्या करूँ ।
जो दुर्वाच्य गरिन् सबै भनुँ भन्या सक्तीनँ मेलै बरु ।।
मारीच्का छलका वचन् सुनि बहुत् दुर्वाच्य बोलिन् जसै ।
सम्झायाँ भरसक् अपेक् तरहले लागेन बिन्ती कसै ।।९४।।

फेर् उत्तर् प्रभुले दिया अनुचितै हो यो गऱ्या तापनि ।
छोड्नू कत्ति थियेन दुर्वचनले स्त्री हुन् ति सीता भनी ।।
येती बात् गरि राम आश्रमविषे जल्दी कदम् ली गया ।
देख्यानन् र सिताजिलाइ बहुतै शोक् गर्न लाग्दा भया ।।९५।।

की राक्षस्हरुले हऱ्या कि वनमा की दुष्टले पेट् भऱ्या ।
एक् थोक् क्या त भयो अवश्य म गयाँ कुन् दुष्टका खेल् परचा ।।
वन्देवीहरुलाइ मालुम भया विस्तार् बताऊ यहाँ ।
सीता मेरि पियारि देख्तिनँ म ता जान्छू सिता छन्जहाँ ।।९६।।

यस्ता रीत्सित सोधि सोधि रघुनाथ् ज्ञानै स्वरूपी पनि ।
जस्तो मानिस गर्छ सोहि रितले हा मेरि सीता ! भनी ।।
फिर्थ्या तेस् वनमा बडा विरहले सोध्या नपाई उसै ।
यै बीच्मा वनमा त रथ् र धनुको देख्या अनेक् टुक् तसै ।।९७।।

यह आज्ञा सुनकर लक्ष्मण ने भी विनती की कि मैं क्या करूँ, मारीच की छलपूर्ण चीख को सुनकर सीताजी ने अनेक दुर्वचनों का प्रहार किया और मैंने अनेक प्रकार से समझाने की चेष्टा की, परन्तु सब व्यर्थ हुआ। ९४ प्रभु ने फिर उत्तर दिया कि यह तो अनुचित ही हुआ है। स्त्री के दुर्वचनों को सुनकर भी उसे स्त्री समझकर अकेला नहीं छोड़ना चाहिए। इतना कहकर राम ने शीघ्रता से आश्रम में देखा। सीता को न देख कर अत्यन्त शोकाकुल हुए। ९५ किन्हीं राक्षसों ने हरण किया होगा या वन में किसी दुष्ट ने अपने पेट का आहार बनाया होगा—कुछ तो अवश्य ही हुआ है। मेरे चले जाने पर किस दुष्ट ने यह खेल किया ? वनदेवियो ! यदि तुम्हें विदित हो तो मुझे विस्तारपूर्वक बता दो। मेरी प्यारी सीता कहीं दृष्टिगोचर नहीं होती। मैं तो सीता जहाँ होंगी, वहीं जा रहा हूँ। ९६ ज्ञान-स्वरूपी होने पर भी सीता को न देखकर रघुनाथ अत्यन्त व्याकुल हो उसी प्रकार हा मेरी सीते ! कहकर पुकारते हुए उस वन में भटकने लगे, जिस प्रकार मनुष्य किया करता है। उसी बीच वन में रथ एवम् धनुष के टुकड़े देखे। ९७ लक्ष्मण से कहते हैं, भाई ! तुम यहाँ देख रहे हो—क्या हुआ है, कोई और ही आकर विजय प्राप्त कर ले गया

भन्छन् लक्ष्मणलाइ भाइ ! तिमिले देख्यौ यहाँको कुचाल् ।
अर्को आइ जिती लियेछ बिचमा मैले त देख्याँ कुचाल् ॥
येती बात् गरि राम् अलिक् पर गया देखछन् त पल्टी रही ।
चिन्नैलाइ कठिन् जटायुकन ता दूवै पखेटा गई ॥९८॥

अज्ञान् कत्ति थियेन तापनि तहाँ लीला नरैको गरी ।
चीन्याको नचिन्ह्यै गरेर भगवान् भन्छन् अगाडी सरी ॥
हे भाई ! धनु देउ दुष्ट मिलिगो मार्छू म वाणै धरी ।
खान्या येहि रहेछ हेरि बुझियो पल्टेछ खुब् पेट् भरी ॥९९॥

सून्या बात् र जटायुले पनि हवाल् वृत्तान्त बिन्ती गर्‍या ।
सूनी पूर्ण दया भयो नजिक गै छाम्यार सब्ताप् हर्‍या ॥
सीताको समचार् खबर् कहि तहाँ साम्ने जटायू मर्‍या ।
स्नान् दाहा गरि मांसपिण्डह रुदी क्रीया प्रभूले गर्‍या ॥१००॥

सायुज्यै मुक्ति पाई स्तुति पनि बहुतै भक्ति राखेर लाई ।
पौंच्या धाम्मा जटायू प्रभु पनि नरको ठिक्क लीला जनाई ॥
वन्वन्मा फिर्न लाग्या विरह गरि गरी सोद्धछन् जाँहि ताँहि ।
दोस्रादेखन्यामिल्याननसकलबढुडचाएक् पनी काँहि नाहीं ॥१०१॥

है। मैं तो कुछ अनर्थ के लक्षण ही देखता हूँ। इतना कहकर राम ने कुछ दूर जाने पर पख कटे हुए जटायु को अचेत अवस्था में पड़ा देखा, जिसे पहचानना भी कठिन था। ९८ प्रभु अज्ञानी नहीं थे, तथापि मनुष्य की ही लीला करके अपरिचित की भाँति आगे बढ़कर भगवान कहते हैं, हे भाई ! दुष्ट मिल गया। धनुष दे दो, मैं बाण से इसका बध करता हूँ। इसी ने सीता को खाया है और पेटभर खाकर लेटा हुआ है। ९९ इन बातों को सुनकर जटायु ने भी विनती-स्वरूप सारा वृत्तान्त कह सुनाया। वृत्तान्त सुनकर दया से पूर्ण हो राम ने उसके निकट जाकर उसका स्पर्श किया और उसके दुख-ताप का हरण किया। सीता के विषय में सारा समाचार ज्ञात करने के पश्चात् जटायु का प्राणान्त हो गया। स्नानोपरान्त दाहसंस्कार कर मांस-पिण्डादि देकर प्रभु ने उसका क्रिया-कर्म किया। १०० अत्यन्त भक्तिपूर्वक स्तुति करने के बाद, मुक्ति पाकर जटायु स्वर्ग-धाम को पहुँचे। प्रभु भी मनुष्य के समान लीला करते हुए, विरह व्यक्त करते तथा सीता के विषय में पूछ-ताछ करते हुए, वन-वन भटकने लगे, परन्तु दूसरा और कोई ऐसा नहीं मिला, जिसने सीताजी को देखा हो। १०१ राम की भेंट एक कबंध नामक राक्षस से हुई,

छातीमा मुख् भयाको शिर पनि नहुँदा नाम् कबन्धै रह्याको ।
चार्चार्कोश् सम्म पुग्न्या दुइ अति बलिया दीर्घ बाहू भयाको ॥
राक्षस् थीयो तहाँ एक् बसि बसिकन सब् हातले खैंचि खान्या ।
तेसैका बाहु बीच्मा रघुपति पुगदा रोकियो मार्ग जान्या ॥१०२॥

राक्षस्ले घोरियाको बुझिकन रघुनाथ् भन्दछन् भाइलाई ।
हे लक्ष्मण् ! आज देख्यौ अब बिच परियो निल्छ की हामिलाई ॥
ठाकुर्जीका वचन् ई सुनिकन विनती ताहिं लक्ष्मण्जि गर्छन् ।
हे नाथ्! क्या डर् छ यस्को दुइ भइ दुइ हात् काटियूँ याहिं झर्छन् ॥३॥

येती बात् गरि हात् दुवै सहजमा काटी खसाल्या जसै ।
राक्षस्ले पनि हात् गिऱ्या जब तहाँ आश्चर्य मान्यो तसै ॥
सोध्यो आज म वीरका पनि सहज् हातै खसाल्यौ यहाँ ।
को हौ क्या मनमा लियेर वनमा डुल्छौ छ जानू कहाँ॥१०४॥

उत्तर् श्री रघुनाथले पनि दिया हाँसेर विस्तार गरी ।
सून्यो राम भनी तहाँ र मनले चीन्ह्यो इनै हुन् हरि ॥
ठाकुर्जीकन चीन्हि खुश् अधिक भै विस्तार आफ्नू गऱ्यो ।
हे नाथ्! आज चिन्ह्याँ हजूर्कन यहाँ पायाँ र सब् ताप् टऱ्यो ॥१०५॥

जिसका मुख उसकी छाती में था और सिर था ही नहीं। उसकी भुजाएँ चार-चार कोस की लम्बाई में थीं और बहुत ही बलिष्ठ थीं। वह अपनी उन्हीं बलिष्ठ भुजाओं से अपना आहार खींच कर खाता था। उसकी दोनों भुजाओं के बीच में रघुपति आ गये, जिसके कारण उनका आगे जाने का मार्ग रुक गया।१०२ राक्षस से घिरा हुआ समझकर राम भाई से कहते हैं, हे लक्ष्मण! आज देखो, कदाचित् यह राक्षस हमें निगल न ले। ठाकुर के इन वचनों को सुनकर लक्ष्मणजी विनती करते हैं, हे नाथ, इसका क्या भय है, दोनों मिलकर दोनों भुजाओं को काट डालें, बस यह यहीं गिर जायेगा। १०३ ऐसा कहकर जैसे ही दोनों भुजाओं को सहज ही काटकर गिरा दिया। यह देखकर राक्षस को भी अपनी भुजाओं के कटकर गिरने से आश्चर्य हुआ। अतः उसने पूछा, आज मुझ-जैसे वीर की भुजाओं को सहज ही में गिराने-वाले तुम कौन हो, किस उद्देश्य से वन में घूम रहे हो और कहाँ जाना है ? १०४ रघुनाथ ने भी हँसकर धीरे से उत्तर दिया, राम कहकर पुकारे जाते हैं, और मन में हरि समझकर पहचाने जाते हैं। ठाकुरजी को पहचानकर, अत्यन्त हर्षित हो उसने विनती की—हे नाथ! आज आपको यहाँ पहचानकर मेरे सब पापों का नाश हुआ। १०५ गन्धर्व होने पर

ब्रह्मादेखि अवश्य पाइ वरदान् गन्धर्व हूँ तापनि।
राम्रो छू भनि गर्व भो र ऋषि ता साह्लै नराम्रा भनी॥
हाँस्याँ कोहि र अष्टवक्र ऋषिले राक्षस् भयास् लौ भनी।
पैले श्राप गरी दिया पछि त फेर् मुक्ती बताया पनि॥१०६॥

राक्षस् भैकन फिर्दथ्याँ म रिसले शिर् इन्द्रजीले हऱ्या।
ब्रह्माको वरदान् थियो र म जियाँ इन्द्रादि सब् छक् पऱ्या॥
शीरै गै पनि यो जियो अब कसो गर्ला भनी खुप् दया।
आयो इन्द्रजिका र खानकन मुख् छाती विषे दी गया॥१०७॥

चार्‌चार् कोश तलक् समाउन भनी लामा त हातै दिया।
सो हात् आज गिराइबक्सनुभयो याहीं तलक् ई थिया॥
जस्तो मुक्ति ति अष्टवक्र ऋषिले पैले बताया यहाँ।
तस्तो ठिक्क भयो इ हात् गिरिगया मुक्ती त पायाँ यहाँ॥१०८॥

क्याबात् धन्य रहेंछु आज म प्रभू! आस्रा गऱ्याँथ्याँ जति।
रातोदिन् रटना थियो चरणको भैगो शरण्‌को गति॥
खाडल् खुप् गहिरो खनेर उसमा यो देह मेरो धरी।
पोली भस्म गराइबक्सनु हवस् जान्छू म संसार तरी॥१०९॥

भी ब्रह्माजी से वरदान पाकर, अपनी सुन्दरता पर गर्व करने पर, ऋषियों को कुरूप कहकर उनकी हँसी उड़ाने पर, अष्टावक्र ऋषि ने मुझे राक्षस होने का शाप दिया, साथ ही इस शाप से मुक्ति पाने का भी मार्ग बताया। १०६ मैं राक्षस बनकर घूमने लगा था। क्रोधित होकर इन्द्र ने मेरे सिर का हरण कर लिया। ब्रह्मा के वरदान से मैं जीवित रहा और इन्द्रादि सभी आश्चर्य-चकित हुए। सिर कट जाने पर भी यह जीवित रहा, अब क्या करेगा, यह सोचकर इन्द्रजी को अत्यन्त दया उत्पन्न हुई और भोजन करने के लिए उन्होंने मेरे वक्षस्थल में मुँह बना दिया। १०७ चार कोस लम्बी भुजाएँ शिकार को पकड़ने के लिए दीं। वे हाथ भी अब गिरा दिये गये। शाप का प्रभाव भी यहीं तक के लिए था। जिस प्रकार अष्टावक्र ऋषि ने पहले ही बता दिया था, ठीक वैसा ही हुआ। हाथों के गिरने पर उन्होंने मुक्ति पाने को बताया था। १०८ क्या बात है! मैं धन्य हूँ कि जो कुछ आशा करता था और रात-दिन इन्हीं चरणों की रट लगाये था और प्रभु की शरण में मुझे गति प्राप्त हो गयी। मेरे शरीर को भस्म करके एक गहरा गड्ढा खोदकर भूमि को अर्पित करने की कृपा करें, जिससे मैं संसार से मुक्ति पा जाऊँ। १०९ सीता को प्राप्त करने का भी उचित

सीता पाउनको उपाय विनती गर्न्याछु साँचो गरी ।
भन्न्या या बिनती सुन्या र हरिले पोलीदिया खाक् गरी ।।
सुन्दर् शुद्ध स्वरूप् धर्‍यो प्रभुजिले खुश् भै दिया वर् पनि ।
भक्तीले बहुतै गर्‍यो स्तुति र त्यो पौंच्यो परम् धाम् पनि।।११०।।

हे नाथ्! सीताजि मिल्निन् अब तिमि शबरी छन् जहाँ ताहिं जाऊ ।
साह्लै भक्ती छ तिम्रा चरणकमलको ताप तिन्का छुटाऊ ।।
येती बिन्ति जगन्नाथ् सित गरि जब धाम् त्यो गयो राम फेरि ।
आश्रम्मा पौंचि दर्शन् शबरिकन दिया खुप्कृपा राखिहेरी ।।१११।।

आसन्देखि उठेर जल्दि शबरी राम्का चरण्मा परिन् ।
सक्भर्को बहुतै पुजा गरि तहाँ हात् जोरि बिन्ती गरिन् ।।
हेनाथ्! हीन् कुलकी स्त्री जाति म गरीब् जान्दीनँ तिम्रो स्तुति ।
आधार् मात्र फगत् छ यै चरणमा यस्तै छ मेरो गति ।।११२।।

विस्तार् सब् गुरुदेखि सूनि गुरुको आज्ञा मनैमा लिई ।
कैले देख्छु हजूरलाइ भनि खुप् तन् मन् हजुर्मा दिई ।।
पूजा नित्य हजूरको गरि यहाँ स्वामित्! बस्याकीथियाँ ।
हे नाथ् आज दया भयो हजुरको प्रत्यक्ष देखीलियाँ ।।११३।।

उपाय मैं आपको बताऊँगा । कबंध की ऐसी विनती सुनकर हरि ने उसके शरीर को भस्म कर दिया । तदुपरान्त एक सुन्दर शरीर प्रकट हुआ और प्रभुजी ने भी हर्षित होकर उसे आशीर्वाद दिया । भक्तिपूर्वक स्तुति कर वह परमधाम को पहुँच गया । ११० कबंध प्रभुजी से कहता है, हे नाथ! जहाँ शबरी रहती है, आप वहीं चले जायें, अब आपको सीताजी मिल जायेंगी । उसकी आपके चरणों में अगाध भक्ति है; आप जाकर उसके तापों का अन्त करें । जगन्नाथ से इतनी विनती कर जब वह परम-धाम पहुँच गया, तब राम ने भी आश्रम में पहुँच कर शबरी को कृपापूर्वक दर्शन दिये । १११ शबरी राम को देखकर तुरन्त आसन से उठ बैठी, और राम के चरणों पर गिर पड़ी । अपनी शक्ति के अनुसार पूजाकर हाथ जोड़कर विनती की—हे नाथ ! मैं एक नीच कुल की दीन स्त्री हूँ । आपकी स्तुति किस प्रकार करूँ, यह ज्ञान नहीं है, हमें केवल आपके चरणों का ही सहारा है, चाहे मेरी जैसी गति हो । ११२ गुरु की बतायी हुई विधि को सुनकर और उनकी आज्ञा मन में धारणकर कभी आपको देखती हूँ, तन-मन लगाकर नित्य आपकी पूजा करके मैं यहाँ रह रही हूँ । हे नाथ! आज आपकी इतनी कृपा हुई कि मैं साक्षात् आपके दर्शन पा रही

क्याले आज बहुत् प्रसन्न हुनुभो कुन् कर्म मैले गर्‍याँ ।
योगीको मनले नभेटि सकिन्या मैले त दर्शन् गर्‍याँ ।।
यस्तो बिन्ति सुनी दया बहुत भो हेतू प्रभूले कह्या ।
उच् नीच् स्त्री र पुरुष् विचार् दिनँ म ता खुश् हुन्छु भक्तीभया।।११४।।

नौ साधन् कि त भक्ति छन् ति नवमा पैलो त सत्संग हो ।
पैलो साधन् पो भयो पनि भन्या बाँकी रह्याका ति जो ।।
आठ् साधन्हरू हुन् ति ता क्रमसितै मिल्छन् असल् सङ्गले ।
सत्को संग भया सबै बनिगया क्या हुन्छ कुन् सङ्गले।।११५।।

सत्को सङ्ग भै रह्याकी दिनदिन न उपर् भक्ति ठूलो भयाकी ।
सज्जन्को सङ्ग पाईकन सग गुणमा पार पौंची गयाकी ।।
देख्याँ मैले र दर्शन् दिन भनि खुशिले आज आफैं म आई ।
दीयाँ दर्शन् र पायौ तिमि अधम भया पाउँथ्यौ क्या मलाई।।११६।।

मुक्ती भो आज तिम्रो अब फजिति छुट्या खुशि भै आज जाऊ ।
मेरी सीता कहाँ छन् कछु खबर भया त्यो पनी सब् बताऊ ।।
हूकूम् जस्सै सुनिथिन् तब तहिं विनती गर्दछिन् क्या बताऊँ ।
सर्वव्यापी हजूर्ले बुझि त नसकिन्या एक् रती छैन ठाउँ ।।११७।।

हूँ । ११३ पता नहीं, कैसे आज आप इतने प्रसन्न हो गये । आज मैंने कौन-सा ऐसा सुकर्म किया । आज मैंने आपका दर्शन पा लिया, जिसे बड़े-बड़े योगी नहीं पा सकते हैं । शबरी की ऐसी विनती सुनकर, प्रभु का हृदय दया से भर उठा । उन्होंने कहा—मैं ऊँच-नीच तथा स्त्री-पुरुष का विचार नहीं रखता, मैं तो प्राणिमात्र की भक्ति से प्रसन्न होता हूँ । ११४ भक्ति के नौ साधन हैं, जिनमें प्रथम तो सत्संग है । प्रथम साधन हो जाने पर जो भी शेष आठ हैं, अच्छी संगत से भी कठिनता से प्राप्त होते हैं । सत् के संग होने पर सब बनता है, जो कुसंग से नहीं बनता । ११५ सत्संग में रहकर प्रतिदिन मेरी भक्ति में तल्लीन, सज्जनों के सम्पर्क से सभी गुणों से परिपूर्ण देखकर, प्रसन्न होकर मैं आज स्वयं दर्शन देने के लिए आया हूँ । तुम्हें दर्शन मिल गया, अन्यथा तुम अधम होती तो क्या मुझे पा सकती थीं । ११६ आज तुम्हारी मुक्ति हुई । आज तुम्हारे संकट दूर हो गये हैं । मेरी सीता कहाँ है, यदि तुम्हें कोई सूचना हो तो वह भी मुझे बताओ । राम की यह आज्ञा सुनते ही, शबरी विनती करने लगी, मैं क्या बताऊँ, आप तो स्वयं सर्वव्यापी हैं, आपसे छिपा हुआ कोई स्थान नहीं । ११७ यह मैं सत्य ही कह रही हूँ, परन्तु आज मनुष्य-रूप

साँचो बिन्ती गर्‍याँ यो तर पनि नरको आज यो रूप धारी ।
आज्ञा भो ता म बिन्ती पनि हजुरविषे गर्दछू काल् विचारी ॥
सीता लङ्काविषे छन् अब त हजुरले भेट सुग्रीवलाई ।
बक्स्याजावस् ति गर्नन् जतिजति अरु काम् बिल्कुलै पार लाई॥११८॥

पम्पा भन्न्या तलाऊ पनि नजिक हुन्या ऋष्यमूक् पर्वतैका ।
टाकूरैमा ति बस्छन् अति फजिति सही दिन् बिताई सधैंका ॥
बालीको डर् हुनाले तहिं बहुत बस्या बालि जाँ दैन ताहाँ ।
बालीलाई नजानू भनिकन छ सराप् सब् गर्‍याँ बिन्ति याहाँ॥११९॥

सुग्रीव् सीत मित्यारि गर्न सब काम् हून्याछ सीता पनि ।
मिल्निन् आज म देह खाग् गरि यहीं पोल्छू नजीक् भै भनी ॥
बिन्ती पारि चिताविषे पसि शरीर् त्यो जो छ सब् खाग् गरिन्
ठाकुर्‌को अति भक्तिले ति शबरी संसार सागर् तरिन्॥१२०॥

क्या दुर्लभ् रघुनाथ् खुशी हुन गया जात्‌की अधम् भै पनि ।
श्रीराम्‌का अगि देह छाडिकन पार् पौंचिन् सहज्मै तिनी ॥
ब्राह्मण् भैकन भक्ति गर्दछ भन्या उस्का त झन् क्या कुरा ।
जो कोही पनि भक्ति भो भनि भन्या योगी ति हुन्छन् पुरा॥१२१॥

धारण कर यह आज्ञा की है, तो मैं अवसर को विचार करके आपसे विनती करती हूँ—सीताजी लंका में हैं। जब आप सुग्रीव से भेंट करेंगे तो जो काम होगें, सब अवश्यमेव पूर्ण होंगे। ११८ वह सुग्रीव पंपा नामक तालाब के निकट ऋष्यमूक पर्वत के शिखर पर अत्यन्त संकटयम तथा दुखी जीवन व्यतीत कर रहा है। बालि के भय से वह वहीं रहता है। बालि को शाप है, इसलिए वह वहाँ नहीं पहुँच सकता। ११९ सुग्रीव से मित्रता होने पर पर जब सब कार्य पूर्ण होंगे, तब सीता भी मिल जायेंगी। आज मैं आप के निकट इस देह को भस्म करती हूँ। ऐसी विनती करके शबरी ने चिता में प्रवेश किया और अपने शरीर को अग्नि को अर्पित कर दिया। इस प्रकार की भक्ति से शबरी ने संसार-सागर पार कर लिया। १२० नीच जाति की होकर भी शबरी का साहस देखकर, रघुनाथ अत्यन्त प्रसन्न हुए। जब ऐसे लोग श्रीराम के ही समक्ष देह त्याग कर परम-धाम को प्राप्त कर सकते हैं, तो फिर ब्राह्मण होकर भक्ति करने पर तो उसका कहना ही क्या ! जो कोई भी हो, उनका भक्त होने पर मनुष्य पूर्ण योग्य होता है। १२१ हे मनुष्यो ! रघुनाथ के चरणों की भक्ति मोक्ष दिलानेवाली है, यह जानकर कामधेनु के समान राम का मन

हे लोक् हो ! रघुनाथका चरणको भक्ती छ मुक्ती दिन्या ।
यो जानीकन कामधेनु सरिका राम् नाम् मनैमा लिन्या ॥
क्या गर्छौं अरु मंत्र-तंत्रहरुले छोडेर सब् राममा ।
तन्मन्लाइ अवश्य जान मनले सार् मिल्छ यै काममा ॥१२२॥

अरण्यकाण्ड समाप्त

में ध्यान करने से अन्य मंत्र तथा यंत्रों का प्रयोग करके क्या करेगा ? मन से निश्चित ही जानो कि तन-मन से एकान्त में ध्यान धरकर चिन्तन करने से ही सार प्राप्त होता है । १२२

किष्किन्धा काण्ड

जस्सैमुक्त भइ गइन् ति शबरी सब् बात् सुनी राम् पनि ।
जान्छू आज म ऋष्यमूक गिरिमा सुग्रीव भेट्छू भनी ॥
जान्थ्याकोश् भरिको तलाउ मिलिगो पम्पा भन्याको पनि ।
चीन्ह्या श्रीरघुनाथले शबरिले यै हो भन्याको भनी ॥१॥

माछा कच्छप चल्दछन् कमलको सब् गिर्छ केसर् तहाँ ।
केसर्ले जब छोपियो पनि भन्या देखिन्छ जल् पो कहाँ ॥
नीला लाल सफेद् कमल् पनि अनेक् रङ्गा भयाका तहाँ ।
बोल्छन् हाँस चकोर सारसहरू लाटाकुस्यारा जहाँ ॥२॥

जैसे ही शबरी चुप हुई, राम ने सारी बातें सुनने के पश्चात् ऋष्यमूक पर्वत पर सुग्रीव से भेंट करने के लिए तत्काल ही जाने की इच्छा प्रकट की । लगभग एक कोस दूर जाने के बाद पम्पा नामक एक ताल उन्हें मिला, जिसे शबरी के कथनानुसार श्रीरघुनाथ ने पहचाना । १
उस ताल में मछली और कछुए रहते थे और कमल के केसर गिरकर जल को पूर्णरूप से ढके हुए थे, जिससे जल कहीं भी दिखायी नहीं देता था । उस ताल के कमल लाल, नीले तथा सफेद अनेक रंगों में खिले हुए थे, जहाँ हंस, चकोर तथा सारस समूह बोलते रहते थे । २

ज़लन छुस नारु व्यगनुकि नेंशि बोंद ज़न ।
वुछन छुख ना शंतुर छिम पतु सुह ज़न ।।
ज़ें वोंनुमुत छुत सुहस अथि गाव चावन ।
हरी हरुह कोनु छुख दरशुन में हावन ।। ४ ।।

वनय क्याह ख्योंल पंहल्य डंल्य अथु त्रोवमुत ।
शरीरुक चोंर छु शालस अथि आमुत ।।
ज़ें वोंनुमुत छुत चंरिस अथि शाल ख्यावन ।
हरी हरुह कोनु छुख दरशुन में हावन ।। ५ ।।

बु कस वनु छुख ज़ुह बोज़न वोल म्योनुय ।
वदन छुय लूक शुर छुख मोल म्योनुय ।।
ज़ुह छुख तिम ज़ूरि ह्यचथ दोंद दामु चावन ।
हरी हरुह कोनु छुख दरशुन में हावन ।। ६ ।।

बु कोताह चानि दरशनु पुछ्य वोंदासी ।
वोंदासी कोनु तिम यिम बक्त आंसी ।।
अंशिस सुत्य रथ छु ना प्रह्लाद हारन ।
हरी हरुह कोनु छुख दरशुन में हावन ।। ७ ।।

विघ्नों की आग से (डरकर) मैं निर्बुद्धियों (अविवेकियों) की तरह विचलित हो रहा हूँ। क्या आप नहीं देख रहे हैं कि किस तरह शत्रु शेर के समान मेरे पीछे लगे हुए हैं। आप ने तो कहा है कि मैं शेर से गाय को दुहाऊँगा। हे हरिहर! तब आप मुझे भी दर्शन क्यों नहीं दे रहे हैं ? । ४ क्या कहूँ, चरवाहे (पशु चराने वाले) ने अपने पशुओं को ढीला छोड़ दिया है और मेरा शरीर रूपी (छोटा) बकरा गीदड़ के हाथ लग गया है। आपने तो कहा है कि मैं बकरे से गीदड़ को खिलाऊँगा, हे हरिहर ! तब मुझे भी दर्शन क्यों नहीं दे रहे हैं ? । ५ मैं किसे (यह दुःख) कहूँ। आप ही तो मेरे सुनने वाले हैं। यह आपका लोक-रूपी शिशु (पुत्र) रो रहा है। आप ही तो इसके पिता हैं। आप तो (अपनी संतान को लुक-छिपकर) दूध पिलाने के लिए प्रसिद्ध हैं। हे हरिहर ! तब आप मुझे भी दर्शन क्यों नहीं दे रहे हैं ? । ६ मैं आपके दर्शनों की ख़ातिर कितना उदास हूँ ! (और फिर) जो आपके भक्त हैं वे उदास क्यों न हों ? (आपका यह भक्त) प्रह्लाद की तरह आँसुओं के बदले रक्त बहा रहा है। हे हरिहर ! तब आप मुझे भी दर्शन क्यों नहीं दे रहे हैं ? । ७

सु कस वनि येंम्य नु वौन पनुनिस मनस ज़ात ।
बु छुस खोज़ान तंमिस लोंगमुत परुद्य गात ।।
तवय कर छुस अमिस निश सीर बावन ।
हरी हरुह कोनु छुख दरशुन में हावन ।। ८ ।।

यि कासिद मन दपुस अन ख़त किताबत ।
येंत्युक तोंत या तत्युक योंत अनि शेंछ कथ ।।
करन अथ गोश तु ख्यथ च्यथ ओंश छु त्रावन ।
हरी हरुह कोनु छुख दरशुन में हावन ।। ९ ।।

अंमिस ज़िमु आस कामाह ख़त ज़े निश न्युन ।
यि मा गव ख़त रंटिथ बन्दुत ज़टित ग्युन ।।
अंकिस कथि हथ पनुनि छुस मिलु नावन ।
हरी हरुह कोनु छुख दरशुन में हावन ।। १० ।।

बु रटुनावन गंजिम तन छुम यि कूह मन ।
ग्रज़न सुह ज़न दज़न छम नारुह हन हन ।।
दज़न छुम वर रज़न रूदन तु वावन ।
हरी हरुह कोनु छुख दरशुन में हावन ।। ११ ।।

वह भला (अपना दुःख) किससे कहे जिसका मन ही साथ न दे रहा हो। मुझे डर है कि मेरा मन भी परायी ठौर पकड़ रहा है (बेक़ाबू होता जा रहा है) इसीलिए मैं उसपर अपने रहस्य प्रकट नहीं कर रहा हूँ। हे हरिहर ! तब आप मुझे भी दर्शन क्यों नहीं दे रहे हैं ? । ८ मैंने अपने मन रूपी क़ासिद (पत्रवाहक) से ख़त-किताबत करने (समाचार लाने-लेजाने) को कहा था, ताकि यहाँ की ख़बर उधर और वहाँ की इधर आ जाती। मगर वह बात को टालकर खाने-पीने में और (कृत्रिम) आँसू बहाने में लग गया। हे हरिहर ! तब आप मुझे भी दर्शन क्यों नहीं दे रहे हैं ? । ९ इस (मन) के ज़िम्मे एक काम रखा था कि वह मेरा ख़त लेकर आप तक पहुँचाये। मगर वह ख़त को लेकर आपके और मेरे सम्बंधों को तोड़ने लगा। एक बात में उसने अपनी ओर से सौ बातें मिला दीं। हे हरिहर ! तब आप मुझे भी दर्शन क्यों नहीं दे रहे हैं ? । १० मैं इसे (मन को) पकड़वाऊँगा। मेरा तन इसी अविश्वासी मन के कारण गलता जा रहा है। मेरे चारों ओर जैसे शेर गर्ज रहे हैं और मेरा अंग-अंग अग्नि में झुलस रहा है। मेरी (शरीर रूपी) रस्सी की एेंठन (शक्ति) वर्षा और प्रभंजन के कारण

बु छुस ज़ंगल रंटिथ ओंन राखिसव ग्यूर ।
वुछिव सा वोंन्य यि बद मन कोर कुन फ्यूर ॥
तिछुय गथ छय छु हंसितिस मोंह पावन ।
हरी हरुह कोनु छुख दरशुन मे हावन ॥ १२ ॥

यि मन ज़ानी तिथुय लांगित वोंपर गाथ ।
ओंगजि सुतिन करान दोंन परबतन वाठ ॥
बेंहन अदुह अन्दु योंतताम मन्दुह छावन ।
हरी हरुह कोनु छुख दरशुन मे हावन ॥ १३ ॥

यि मन कति छुय पथर कुनि पंर्य थावन ।
छु मुच़ुरन मोंहरु वासन बांगुरावन ॥
खरस सुन्द मांछ ह्यु ख्यावन तु चावन ।
हरी हरुह कोनु छुख दरशुन मे हावन ॥ १४ ॥

न छस रातस नेंन्दुर न छुस दोंहस कार ।
च़लन दंरुयाव ह्यु लब तशनु कुनि तार ॥
शिन्याहस प्यठ यि छुय बस्ती बसावन ।
हरी हरुह कोनु छुख दरशुन मे हावन ॥ १५ ॥

क्षीण हो रही है। हे हरिहर ! तब आप मुझे भी दर्शन क्यों नहीं दे रहे हैं ? । ११ मैंने जंगल की शरण ले रखी है और राक्षसों ने मुझे दुविधा में डाल दिया है। और देखिए, यह मेरा बद (दुष्ट) मन किस ओर फिर रहा है। आपकी गति तो ऐसी है कि आप मच्छर के भेस में हाथी तक को पछाड़ देते हैं। हे हरिहर ! तब आप मुझे भी दर्शन क्यों नहीं दे रहे हैं ? । १२ यह मन पराया भेस धारण कर (बेकाबू होकर) दो पर्वतों को उंगली से मिला देता है—(उन्हें आपस में भिड़ा देता है।) और खुद दूर-दूर बैठकर तमाशा देखता है। हे हरिहर ! तब आप मुझे भी दर्शन क्यों नहीं दे रहे हैं ? । १३ यह (मन) कहीं एक स्थान पर कहाँ टिका रहता है। यह सबको मूर्ख बनाता है और तरह-तरह की वासनाओं को जन्म देता है। गधे की तरह मधु को खाये-पिये जाता है। हे हरिहर ! आप भी मुझे भी दर्शन क्यों नहीं दे रहे हैं ? । १४ यह (मन) न रात को नींद लेता है और न दिन में ही कुछ करता है। बस, दरिया की भाँति प्रवाहित होता है और उसको पार करना मुश्किल हो जाता है। शून्य में वह अपनी बस्ती बसाता है। हे हरिहर ! तब आप मुझे भी दर्शन क्यों नहीं दे रहे हैं ? । १५ यह रात-दिन न जाने कितने

दोँहस रातस छु कम कम ज़ाल वोनन ।
सुवन कपटन च्रटन वोनन तु वोनन ॥
होँनर कांत्रा छि हेँछमुत्र अँम्य हवावन ।
हरी हरुह कोनु छुख दरशुन मे हावन ॥ १६ ॥

च्रटन वाटन यि कर छु काँसि हुंज़ काँम ।
यि छुय नोँशि वनु नावन हशि कुन ज़ाँम ॥
पखन प्यठ वुफ नखन प्यठ शुर छु रावन ।
हरी हरुह कोनु छुख दरशुन मे हावन ॥ १७ ॥

अमा येँलि सुतरुह खाँरन खुर छु कासन ।
ग्यद वनु नांव्य पोँफन पेँचिन्यन त मासन ॥
दियि मेँतरुथ कँरिथ कुक्चल्यन तु कावन ।
हरी हरुह कोनु छुख दरशुन मे हावन ॥ १८ ॥

यनु यन्दुराजु डोल गोतम रेँशुन गव ।
तनु प्यठु च्रँदुरमस च्रामुत सोँनस ज़व ॥

जाल बुनता-उधेड़ता रहता है । तराशता रहता है, काटता एवं बुनता रहता है । इस सूक्ष्म पदार्थ ने कितने ही हुनर सीखे हैं । हे हरिहर ! तब आप मुझे भी दर्शन क्यों नहीं दे रहे हैं ? । १६ यह (मन) तो काम काटता (बिगाड़ता) ही है । उन्हें जोड़ता (बनाता) कब है ? यह तो वधू को सास व ननद के प्रति उकसाता है । इसके पंख सदैव फड़कते रहते हैं और मालूम ही नहीं पड़ता कि यह कब भाग जाता है । हे हरिहर ! तब आप मुझे भी दर्शन क्यों नहीं दे रहे हैं ? । १७ (समय पड़ने पर मीठा बोलता है) और फूफी, चाची और मौसी को भी माँ-माँ कहकर यह अपने उलझे हुए कार्यों को सुलझा देता है । (इसी मीठी बोली से) यह कोकिल और कौए तक में मित्रता करा देता है । हे हरिहर! तब आप मुझे भी दर्शन क्यों नहीं दे रहे हैं ? । १८ जब देवराज इन्द्र का मन डोल गया और वह गौतम ऋषि के यहाँ गया, तभी से (बेचारे) चन्द्रमा का सुनहरा बदन जग खा गया (उसपर धब्बा लग गया) । और क्या कहूँ । यह सब इस (सीमाब की तरह चंचल) मन की करतूत है । हे हरिहर ! तब आप मुझे भी दर्शन क्यों नहीं दे रहे हैं ? । १९ हे हरिहर ! अब आप स्वयं आ जाइए और मेरा मन साफ़ कर दीजिए । बस, ऐसा कीजिए जैसा श्रावण की धूप बर्फ़ के साथ करती है । इस (मन) पर जो अवाँछित पर उगे हैं, उन्हें काट दीजिए । इन्हीं से यह

वनय क्याह् कोरुम येम्य सीमाब खावन ।
हरी हरुह् कोनु छुख दरशुन मे हावन ॥ १९ ॥
सदाशिवु पानु यिम योत मन करुम साफ़ ।
करुस शीनस करान यि श्रावनुन ताफ ॥
व्रटुस यिम पर वोपर छुम लरि सावन ।
हरी हरुह् कोनु छुख मे दरशुन हावन ॥ २० ॥
वुछन लूसिम नेथुर योत यिख परबातन ।
गोवुय क्याह् व्रेर वुनि छुख कोनु वातन ॥
मे छम यी आश यिख प्रकाश त्रावन ।
हरी हरुह् कोनु छुख मे दरशुन हावन ॥ २१ ॥

कीकी हुन्द ज़ारु पारु तु बरथस ख्राव दिन्य

गंयस कीकी बरुथ हृयथ बेयि वन्यानस ।
वोदुन त्युथ युथ छु रंग फमवारुह् आबस ॥
गंयस कीकी तोतुय वोनुनस स्यठाह् ज़ार ।
मे बख़्शुम यंत्र गंयस पापन गिरफ़्तार ॥
ख़बर केंह छम नु वन्य क्याह् वनु दयस बो ।
करुन तस ओस यी पाप्य गंयस बो ॥
ख़बर केंह छम नु यथ बोज़नु क्याह् आम ।
सपुन दिल सोख़्तु बाज़ा पोख़्ता गव ख़ाम ॥

मुझे पतित करता है । हे हरिहर ! तब आप मुझे भी दर्शन क्यों नहीं दे रहे हैं ? । २० आप प्रभात-वेला में पधारेंगे, आपको देखते-देखते मेरे नेत्र मुरझा गए । आपको न जाने देरी क्यों हो गई और अभी तक आप पधारे क्यों नहीं ? मुझे यही आशा है कि आप प्रकाश फैलाते हुए ज़रूर आयेंगे । हे हरिहर ! तब आप मुझे भी दर्शन क्यों नहीं दे रहे हैं ? । २१

कैकेयी की अनुनय-विनय और भरत को खड़ाऊँ देना

भरत को साथ लेकर कैकेयी ने (रामचन्द्र जी से) ख़ूब कहा और ऐसे रोने लगी जैसे पानी का फुहारा फूटता है । कैकेयी उनके पास जाकर ख़ूब अनुनय-विनय करने लगी—मुझे बख़्शिए, मैं पापों में बुरी तरह गिरफ़्तार हो गई हूँ । मुझे कुछ भी ख़बर (सूझता) नहीं है कि भगवान् के पास जाकर क्या कहूँगी (क्या मुँह दिखाऊँगी)। उसे ऐसा ही करना था जो मैं पापिन बन गई ।

दिच़ुम पानय बंरिथ गर्दन ब शमशेर ।
दोंपुम पानय ज़ुवस पनुनिस न्यबर नेर ॥ ५ ॥
दपन छस वोंन्य ज़मीनस तल गंछ़ुम जाये ।
छसय पालुन्य च़ुह केंछ़ा वन्य करुम पाये ॥
वोंथुम थोंद पोशि थंर छस बरुह गांमुच़ ।
वुछन छुखना बु ज़न आकाशि प्येमुच़ ॥
असन दोंपनस च़ुह गछ़ छख म्यांन्य माता ।
कुनुय ल्युख क्याह च़ुह कीकी क्याह कोंशल्या ॥
च़ुह केंह दोंख बंरिज़ि नु येंमि च़लनु साने ।
दपन यी ल्यूखमुत ओस करमु लाने ॥
च़ुह योंत तान ज़िन्दु छख तोंत तान्य छम माये ।
मंरिथ आसी च़े वयकोंठस अन्दर जाये ॥ १० ॥

विलाप

शामरूपु रामच़ंदुरु लांजिथस पामन ।
कामन छम चानि दरशनु ची ॥

मुझे कुछ भी ख़बर न रही, कुछ भी दिखाई न दिया। मेरा दिल अब सोख्ता (विदग्ध) हो गया है और भरी-पूरी बाज़ी हाथ से निकल गई है। मैंने स्वयं अपनी गर्दन पर शमशेर चलाई और स्वयं अपने प्राणों को बाहर निकलने के लिए कहा। ५ बस, अब यही चाहती हूँ कि इस ज़मीन के नीचे समा जाऊँ। अब आप ही मुझे पाल (उद्धार कर) सकते हैं, इसके लिए आपको कोई उपाय करना होगा। उठिए, मैं शाख़ से कटी कली के समान हो गई हूँ। आप देख नहीं रहे हैं, मैं जैसे आकाश से नीचे गिर गई हूँ। (इसपर रामचन्द्र जी ने) मुस्कराते हुए कहा—आप लौट जाइए, आप तो मेरी माता हैं। मेरे लिए क्या कैकेयी और क्या कौशल्या, दोनों एक ही हैं। आप हमारी इस कठोर तपस्या (सहनशीलता) को देख मन में कोई दुःख न करना—हमारे कर्म-लेख में यही तो लिखा था। आप जब तक ज़िन्दा रहेंगी तब तक मुझे आप पर प्रीति रहेगी और मरने के बाद आपकी जगह वैकुंठ में होगी। १०

विलाप

हे श्याम-रूप रामचन्द्र ! आपने मुझे यह किन उलाहनों के लिए छोड़ दिया। मुझे तो बस, आपके दर्शनों की कामना है। आपकी दूरी अब

दूर्यर चोन वौन्य बु छस न ज्ञालन ।
ललुवुन थौवथम ज़लु वुन नार ।।
छ्रारुनि द्रायि सय शहरन तु गामन ।
कामन छम चानि दरशनु ची ।। १ ।।

क्रानि बो द्रायस ब्रह्मतौत छ्रारन ।
मायायि पुछि कवुह गंयस बदनाम ।।
पामन लांजिथस तु लगयो नामन ।
कामन छम चानि दरशनु ची ।। २ ।।

पानु छु रामुजुव ईशर आसन ।
लंखिमन शंखि च्रंकुर बासानी ।।
शतुरगुन बरथजी गदादर आसन ।
कामन छम चानि दरशनु ची ।। ३ ।।

तसन्दी तीज़ुह सोर अगन्यान गालुन ।
मूहु मायि अगन्यानु दूर युस गव ।।
सन्तान असि ज़ाख तु सीर छुख नु बावन ।
कामन छम चानि दरशनु ची ।। ४ ।।

रामचंन्दुरु लगयो सहसरुह नामन ।
च्रे रौस ज़ांह मे छुम नु मौकलन पाय ।।

मैं सहन नहीं कर सकती हूँ । आपने तो मुझे भड़कती विरहाग्नि में धकेल दिया है । मैं आपको ढूँढने के लिए शहरों और गाँवों में निकल पड़ी—मुझे तो बस, आपके दर्शनों की कामना है । १ मैं घर से ब्रह्म-स्तुति के लिए निकल पड़ी थी, मगर माया के कारण बदनाम हो गई । बलिहारी जाऊँ नाम पर ! आपने मुझे उलाहने सहने के लिए छोड़ दिया—मुझे तो बस, आपके दर्शनों की कामना है । २ आप (रामचन्द्रजी) तो स्वयं ईश्वर हैं । लक्ष्मण शंख और चक्र के समान हैं तथा शत्रुघ्न व भरत जी गदाधारी के समान हैं—मुझे तो बस, आपके दर्शनों की कामना है । ३ आपके तेज से सारा अज्ञान गल सकता है और मोह-माया व अविद्या को दूर किया जा सकता है । आप तो हमारी ही सन्तान हैं (हमारे यहाँ जन्म लिया है) मगर फिर भी अपना रहस्य प्रकट नहीं कर रहे हैं—मुझे तो बस, आपके दर्शनों की कामना है । ४ हे रामचन्द्र जी ! आपके सहस्रनामों पर बलिहारी जाऊँ । आपके विना मेरा कभी निस्तार नहीं हो सकता है । आ, इच्छापूर्वक (भावमग्न होकर) आपको दूध पिलाऊँ—मुझे तो

यॅछिह सुत्य दिमयो दोंद च्रॅ दामन ।
कामन छम चानि दरशनु ची ॥ ५ ॥

रावनु संजिह वेरि ज़नम आख दारन ।
बूमि बार कासुनि आमुत च्रुय ॥
लॅखिमी छि सीता लॅखिमन छु वाहन ।
कामन छम चानि दरशनु ची ॥ ६ ॥

दयि नाव टोठ छुय स्यदन तु सादन ।
रामुजुव वोंन्य खोंश आसतम चुय ॥
रोज़तम सहा छम मे मुहरु वासन ।
कामन छम चानि दरशनु ची ॥ ७ ॥

मोंक्तु मालु मुकुठी शेर छी आसन ।
सारिनी आबरन बासॉनी ॥
परज़लु वुनि असि कोनु अनिगोंट कासन ।
कामन छम चॉनि दरशनु ची ॥ ८ ॥

तोंता कीकी गरिह गरिह बासन ।
वोंन्दुह दोद छुम नो कासॉनी ॥
शिवुहजी छुय ना च्रॅ सुत्य सुत्य आसन ।
कामन छम चानि दरशनु ची ॥ ९ ॥

बस, आपके दर्शनों की कामना है । ५ आपने रावण की ख़ातिर यह जन्म धारण कर लिया और भूमि के भार को सहने के लिए आप आये । सीताजी लक्ष्मी हैं और लक्ष्मण जी वाहन हैं—मुझे तो बस, आपके दर्शनों की कामना है । ६ आपका महिमाशाली नाम सिद्धों को, साधुओं को (अतीव) प्रिय है । हे रामचन्द्रजी ! अब आप मुझ पर खुश हो जाइए । मेरे सहायक बनिए, मुझे आपका ही भरोसा है—मुझे तो बस, आपके दर्शनों की कामना है । ७ आपके सिर पर मुक्ताओं की मालाओं से युक्त मुकुट रहता था और सभी तरह के आभूषण (आभरण) रहते थे । हे प्रज्वलित होनेवाले (देदीप्यमान) ! आप हमारा भी अन्धेरा दूर क्यों नहीं कर रहे हैं ? मुझे तो बस, आपके दर्शनों की कामना है । ८ कैकेयी तो बार-बार आपकी स्तुति कर रही है, फिर भी आप उसके हृदय का दर्द दूर नहीं कर रहे हैं । शिव जी भी आपके साथ-साथ रहते हैं—मुझे तो बस, आपके दर्शनों की कामना है । ९ दशरथ ने कश्यप के रूप में जन्म लिया था और कौशल्या ने अदिति के रूप में । (आप) जब सीता को वरण करने गये तो उसे भी ऐसा ही लग रहा था—मुझे तो बस,

जाणु न चुकई मरि जनमै होय खुआरु ॥ ३ ॥ चंदनु मोलि अणाइआ कुंगू मांग संधूरु । चोआ चंदनु बहु घणा पाना नालि कपूरु । जे धन कंति न भावई त सभि अडंबर कूड़ु ॥ ४ ॥ सभि रस भोगण बादि हहि सभि सीगार विकार । जबलगु सबदि न भेदीऐ किउ सोहै गुरदुआरि । नानक धंनु सुहागणी जिन सह नालि पिआरु ॥ ५ ॥ १३ ॥

श्रीराग महला १--गुरुदेव कहते हैं--धिक्कार है ऐसे जीवन को, जो द्वैत भाव और तृष्णा की आग में जलता रहता है। यह शरीर तो क्षणभंगुर है, जिसे सुख केवल गुरूपदेश से ही प्राप्त हो सकता है। हे जीव-रूपी मूर्ख स्त्री ! पति के बिना तेरा बनाव-श्रृंगार क्या अर्थ रखता है ? अर्थात् निरर्थक एवं व्यर्थ है और इस लोक तथा परलोक दोनों में तू सांसारिक क्रियाओं से झूठी साबित होती है। वह परमेश्वर स्वयं बुद्धिमान एवं कभी न भूलनेवाला हर एक को याद रखता है, उसकी देख-भाल करता है; प्राणिमात्र की बुद्धि को साफ-स्वच्छ करके सच्चे नाम का दान देता है, जिससे ऋद्धियाँ-सिद्धियाँ सभी प्राप्त हो जाती हैं। यह सब जानते-बूझते भी जो गुरु-चरणों में नतमस्तक नहीं होते, गुरु की शरण नहीं लेते, वे अज्ञान-रूपी अंधकार में ठोकरें खाते फिरते हैं--आवागमन के चक्करों में ही भटकते रहते हैं। जो बनाव-श्रृंगार, सुगंधियाँ, पहनावा पति को न भावे, वह व्यर्थ है—भले ही चंदन, कपूर, सिंदूर, पान आदि वस्तुओं से आडम्बर रचा गया हो। सभी खान-पान, बनावट-सजावट दुखदायी बन जाते हैं—यदि उनमें पति की प्रसन्नता न हो। अत: गुरूपदेश सुनना-मानना ही यथार्थ है। उसी के सुनने-मानने से गुरु के द्वार पर शोभा प्राप्त होती है, वही सुहागिन जीव-रूपी स्त्रियाँ धन्य हैं, जिनका पति-परमेश्वर से सच्चा प्यार है।

सिरीरागु महला १

सुंञी देह डरावणी जा जीउ विचहु जाय । भाहि बलंदी विझवी धूउ न निकसिउ काय । पंचे रुंने दुखि भरे बिनसे दूजै भाय ॥ १ ॥ मूड़े रामु जपहु गुण सारि । हउमै ममता मोहणी सभ मुठी अहंकारि ॥ १ ॥ रहाउ ॥ जिनी नामु विसारिआ दूजी कारै लगि । दुबिधा लागे पचि मुए अंतरि तृसना अगि । गुरि राखे से उबरे होरि मुठी धंधै ठगि ॥ २ ॥ मुई परीति पिआरु गइआ मुआ वैरु विरोधु । धंधा थका हउ मुई ममता माइआ क्रोधु । करमि मिलै सचु पाईऐ गुरमुखि सदा

निरोधु ॥ ३ ॥ सची कारै सचु मिलै गुरमति पलै पाय। सो नरु जंमै ना मरै ना आवै ना जाय। नानक दरि परधानु सो दरगहि पैधा जाय ॥ ४ ॥ १४ ॥

श्रीराग महला १—प्राण-रहित देह कैसी डरावनी लगती है। जब जीव आत्मा से निकल जाता है और तृष्णा-रूपी अग्नि जलते-जलते बुझ जाती है। शरीर के सभी संबधी—माँ-बाप, भाई-बहन, स्त्री-पुत्रादि बाद में रोने-धोने लगते हैं और द्वैत भावना रखनेवाले जीव आवागमन के चक्करों में भटकते रहते हैं। अतः गुरुदेव कहते हैं—हे मूर्खो ! सर्वोत्तम गुणसागर ईश्वर का नाम जपो, जिससे तुम्हारा अहं मर जावे—माया-जाल से मुक्त हो सको। जिन्होंने प्रभू-सुमिरन (प्रभु-स्मरण) को त्याग अन्य कार्यों में अपने आपको रुझा लिया है, वे दुविधा में पड़े तृष्णा की अग्नि में जल रहे हैं—केवल गुरु की चरण-शरण वाले बचे हैं, अन्य सभी मायावी चक्करों में ठगे जा रहे हैं। सांसारिक क्रिया-कलापों में लिप्त रहनेवालों की प्रीति-प्यार, वैर-विरोध, आहार-विहार, ममता-माया, क्रोध आदि सब उनकी सांसारिक यात्रा-समाप्ति के साथ-साथ समाप्त हो जाते हैं, केवल ईश्वर के कृपा-प्राप्त जीव ही सच्चे नाते-रिश्ते बनाते और निभाते हैं। विषय-वासनाओं पर रोक लगा, सांसारिक झूठे रिश्ते से दूर रहते हुए सत्य को प्राप्त करते हैं, आवागमन के चक्करों में नहीं भटकते ईश्वर के दरबार में शोभा एवं स्थान प्राप्त करते हैं।

सिरीरागु महला १

तनु जलि बलि माटी भइआ मनु माइआ मोहि मनूरु। अउगण फिरि लागू भए कूरि व जावै तूरु। बिनु सबदै भरमाईऐ दुबिधा डोबे पूरु ॥ १ ॥ मन रे सबदि तरहु चितु लाय। जिनि गुरमुखि नामु न बूझिआ मरि जनमै आवै जाय ॥ १ ॥ रहाउ ॥ तनु सूचा सो आखीऐ जिसु महि साचा नाउ। भै सचि राती देहुरी जिहवा सचु सुआउ। सची नदरि निहालीऐ बहुड़ि न पावै ताउ ॥ २ ॥ साचे ते पवना भइआ पवनै ते जलु होय। जल ते त्रिभवणु साजिआ घटि घटि जोति समोय। निरमलु मैला ना थीऐ सबदि रते पति होय ॥ ३ ॥ यहु मनु साचि संतोखिआ नदरि करे तिसु माहि। पंच भूत सचि भै रते जोति सची मन माहि। नानक अउगण वीसरे गुरि राखे पति ताहि ॥ ४ ॥ १५ ॥

श्रीराग महला १—गुरुदेव कहते हैं—यह शरीर तो जल कर मिट्टी में मिल जाता है, परन्तु मन माया के छल-बल से मैल एकत्र करता रहता है। अवगुण सभी दुश्मन-रूप हो सामने आ जाते हैं और गुरूपदेश के बिना दुविधा में पड़े लोग चौरासी की योनियों में भटकने लगते हैं। अतः हे मन! एकचित्त होकर गुरु के चरणों में रहकर गुरु शब्द की ओट ले; अन्यथा तू भी जन्म-मरण के चक्करों में ही घिरा रहेगा। केवल वही शरीर, नेत्र एवं जिह्वा पवित्र हैं, जिसमें ईश्वर का वास, सत्य-स्वरूप का दर्शन एवं सच्चे प्रभू का गुणगान होता है। गुरुनानक देव जी सृष्टि की रचना के बारे में बताते हुए कह रहे हैं कि सत्य-स्वरूप परमात्मा से ही पवन, पानी, आकाश-पाताल, अग्नि आदि पैदा हुए; फिर सृष्टि के सृजन में प्राणिमात्र की रचना हुई। हर एक के हृदय में प्रभू की ज्योति प्रगट की गयी, जिससे सब मैल-रहित होकर पवित्र बन जायँ; (सबके हृदय में) सत्य एवं संतोष का वास हो। पवन, पानी, पृथ्वी, आकाश-पाताल आदि पंच तत्वों से मिलाकर पाँच ज्ञान-इन्द्रियों को बनाया, जो ईश्वर के भय से आपस में प्रेम-सहित रहें। इस प्रकार अवगुणों का नाश करके गुरूपदेश को मानकर मनुष्य को इस असार संसार में भेजा कि प्रभू की शरण में जाकर प्रभू का स्मरण करो, तभी कल्याण संभव है।

सिरीरागु महला १

नानक बेड़ी सच की तरीऐ गुर वीचारि। इकि आवहि इकि जावही पूरि भरे अहंकारि। मनहठि मती बूडीऐ गुरमुखि सचु सु तारि॥ १॥ गुर बिनु किउ तरीऐ सुखु होय। जिउ भावै तिउ राखु तू मै अवरु न दूजा कोय॥ १॥ रहाउ॥ आगै देखउ डउ जलै पाछै हरिओ अंगूरु। जिस ते उपजै तिस ते बिनसै घटि घटि सचु भरपूरि। आपे मेलि मिलावही साचै महलि हदूरि॥ २॥ साहि साहि तुझु संमला कदे न विसारेउ। जिउ जिउ साहबु मनि वसै गुरमुखि अंमृतु पेउ। मनु तनु तेरा तू धणी गरबु निवारि समेउ॥ ३॥ जिनि एहु जगतु उपाइआ त्रिभवणु करि आकारु। गुरमुखि चानणु जाणीऐ मनमुखि मुगधु गुबारु। घटि घटि जोति निरंतरी बूझै गुरमति सारु॥ ४॥ गुरमुखि जिन्ही जाणिआ तिन कीचै साबासि। सचे सेती रलि मिले सचे गुण परगासि। नानक नामि संतोखीआ जीउ पिंडु प्रभ पासि॥ ५॥ १६॥

श्रीराग महला १—गुरु नानकदेव जी कहते हैं—सत्य नाव के समान है, जिस पर गुरूपदेश के सहारे विचार-सागर में मनुष्य गोते लगाता है। इस प्रकार संसार में एक आता है, एक जाता है। अहंकार से भरी दुनियाँ जन्म-मरण के चक्करों में भटक रही है, केवल सत्य पर विश्वास रखने वाले ही पार उतरते हैं। गुरुदेव कहते हैं—ईश्वर की कृपा के बिना कैसे उद्धार-संभव है ? अत: हे प्रभू ! जैसी आपकी इच्छा हो, आप मेरी उसी प्रकार रक्षा करें। आपकी कृपा-दृष्टि के बिना जब मैं आगे देखता हूँ तो श्मशान-भूमि और पीछे देखता हूँ तो जलता हुआ जगत दिखायी देता है। जिस प्रभू के कारण हम उत्पन्न होते हैं, उसी की आज्ञा से हमारा विनाश भी होता है। अत: हर जर्रे-जर्रे में वही प्रभू विद्यमान है; जिसे वह चाहता है, अपने दर्शन कराता है। अत: हे प्रभू ! ऐसी कृपा करो कि मैं प्रत्येक श्वास से तेरा ही स्मरण-भजन करता रहूँ; तेरा नाम-रूपी अमृत पीता रहूँ, तेरे द्वारा प्रदत्त तन-मन सब कुछ तुझ पर अर्पण कर सकूँ; अंहकार एवं अज्ञान का नाश कर सकूँ, तेरी ज्योति जो हर एक के मन-मंदिर में प्रज्वलित है, उसके दर्शन कर सकूँ। जो गुरुमुख सज्जन ऐसा जानते-समझते हैं, उनको शाबास है (वे धन्य हैं) वे सत्य-स्वरूप परमात्मा की आराधना करते, उसी में समा जाते हैं और संतोष-जैसे परम निधि (खजाने) को प्राप्त करके ईश्वर के समक्ष अपना सर्वस्व अर्पण कर देते हैं।

सिरीरागु महला १

सुणि मन मित्र पिआरिआ मिलु वेला है एह। जब लगु जोबनि सासु है तबलगु इहु तनु देह। बिनु गुण कामि न आवई ढहि ढेरी तनु खेह ॥ १ ॥ मेरे मन लै लाहा घरि जाहि। गुरमुखि नामु सलाहीऐ हउमै निवरी भाहि ॥ १ ॥ रहाउ ॥ सुणि सुणि गंढणु गंढीऐ लिखि पड़ि बुझहि भारु। त्रिसना अहिनिसि अगली हउमे रोगु विकारु। ओहु वेपरवाहु अतोलवा गुरमति कीमति सारु ॥ २ ॥ लख सिआणप जे करी लख सिउ प्रीति मिलापु। बिनु संगत साध न ध्रापीआ बिनु नावै दूख संतापु। हरि जपि जीअरे छुटीऐ गुरमुखि चीनै आपु ॥ ३ ॥ तनु मनु गुर पहि वेचिआ मनु दीआ सिरु नालि। त्रिभवणु खोजि ढंढोलिआ गुरमुखि खोजि निहालि। सतगुरि मेलि मिलाइआ नानक सो प्रभु नालि ॥ ४ ॥ १७ ॥

श्रीराग महला १—मन को मित्र-रूप में सम्बोधित करते हुए गुरुदेव कहते हैं—हे मेरे मित्र मन ! सुन, ईश्वर से मिलने का यही सुअवसर है। यौवन-काल से पूर्व ही अपने आपको गुरु-चरणों में अर्पित कर दे। अच्छे गुणों के अतिरिक्त और कुछ दुनियाँ में काम आने वाला नहीं है। अतः कुछ लाभकारी सौदा कर। अंह का नाश कर, और गुरुमुख बन के प्रभू-स्मरण में जुट। ईश्वर स्वयं बेपरवाह है; वह इस बात से अनभिज्ञ है कि कोई उसका स्मरण करता है अथवा तृष्णा की अग्नि में जलकर अंहकारी बन उसे भुला देता है। वह तो केवल गुणों का ही ग्राहक है। यदि लाख चतुराइयाँ करके मेल-मिलाप बढ़ा लें तो भी सत्संग के बिना दुख-क्लेश का नाश नहीं हो सकता। गुरुदेव कहते हैं—ईश्वर के चरणों में सर्वस्व अर्पण कर दे, उसका भजन-कीर्त्तन कर, उसकी याद में खोया रह, तभी तेरा कल्याण संभव है।

सिरीरागु महला १

मरणै की चिंता नही जीवण की नही आस। तू सरब जीआ प्रतिपालही लेखै सास गिरास। अंतरि गुरमुखि तू वसहि जिउ भावै तिउ निरजासि॥ १॥ जीअरे राम जपत मनु मानु। अंतरि लागी जलि बुझी पाइआ गुरमुखि गिआनु॥ १॥ रहाउ॥ अंतर की गति जाणीऐ गुर मिलीऐ संक उतारि। मुइआ जितु घरि जाईऐ तितु जीवदिआ मरु मारि। अनहद सबदि सुहावणे पाईऐ गुर वीचारि॥ २॥ अनहद बाणी पाईऐ तह हउमै होय बिनासु। सतगुरु सेवे आपणा हउ सद कुरबाणै तासु। खड़ि दरगह पैनाईऐ मुखि हरिनाम निवासु॥ ३॥ जह देखा तह रवि रहे सिव सकती का मेलु। त्रिहु गुण बंधी देहुरी जो आइआ जगि सो खेलु। विजोगी दुखि विछुड़े मनमुखि लहहि न मेलु॥ ४॥ मनु बैरागी घरि वसै सच भै राता होय। गिआन महारसु भोगवै बाहुड़ि भूख न होय। नानक इहु मनु मारि मिलु भी फिरि दुखु न होय॥ ५॥ १८॥

श्रीराग महला १—गुरु नानकदेव जी कहते हैं, कि प्रभू-भक्तों को न न तो मरने की चिंता है, न जीवन की इच्छा। हे ईश्वर! तू सर्वप्रतिपालक है और हर एक का लेखा-जोखा रखने वाला है। तू अपने भक्तों के हृदयों में वास करता है और जैसा चाहता है, वैसा निर्णय करता है। अतः हे जीव ! अहर्निश ईश्वर का नाम जप, जिससे तू तृष्णा की अग्नि बुझा सके।

निश्शंक होकर अन्तर्ध्यान हो वासनाओं को त्याग, और प्रभू से मिलने के प्रयत्न कर, तभी गुरुपदेश प्राप्त होगा और अहं का नाश होगा। गुरुदेव कहते हैं—मैं ऐसे प्रभू-भक्तों पर बलिहार होता हूँ। जो सदैव प्रभू का यशगान करते हैं, उसके दरबार में सराहे जाते हैं, मान-सम्मान प्राप्त करते हैं—शांति और शक्ति का सामजंस्य करते हुए प्रकृति में प्रभू के दर्शन करते हैं। जगत में आये हुए सभी लोगों को यहाँ से जाना है, परन्तु केवल मनमुख अर्थात् प्रभू से बिछुड़े लोग ही कष्टप्रद यात्रा को प्राप्त करते हैं, दुख उठाते हैं और उनका ईश्वर से कभी मिलाप नहीं होता। केवल सत्य आचरण वाले ही ज्ञान-रूपी प्रकाश के सहारे असली घर (प्रभू-दर) को प्राप्त करते हैं और इन्द्रियों को वश में कर सकते हैं।

सिरीरागु महला १

एहु मनो मूरखु लोभीआ लोभे लगा लोभानु। सबदि न भीजै साकता दुरमति आवनु जानु। साधू सतगुरु जे मिलै ता पाईऐ गुणी निधानु ॥ १ ॥ मन रे हउमै छोडि गुमानु। हरिगुरु सरवरु सेवि तू पावहि दरगह मानु ॥ १ ॥ रहाउ ॥ रामनामु जपि दिनसु राति गुरमुखि हरि धनु जानु। सभि सुख हरि रस भोगणे संतसभा मिलि गिआनु। निति अहिनिसि हरि प्रभु सेविआ सतगुरि दीआ नामु ॥ २ ॥ कूकर कूड़ कमाईऐ गुरनिंदा पचै पचानु। भरमे भूला दुखु घणो जमु मारि करै खुलहानु। मनमुखि सुखु न पाईऐ गुरमुखि सुखु सुभानु ॥ ३ ॥ ऐथै धंधु पिटाईऐ सचु लिखतु परवानु। हरि सजणु गुरु सेवदा गुर करणी परधानु। नानक नामु न वीसरै करमि सचै नीसाणु ॥ ४ ॥ १६ ॥

श्रीराग महला १—गुरु नानकदेव जी कहते हैं—कि हे मूर्ख लोभी ! तू गुरूपदेश में आस्था नहीं रखता, इसीलिए आवागमन के चक्करों में भटका करता है। तू साधु-संगति कर, जिससे प्रभू की प्राप्ति हो, अंह का नाश हो और प्रभू के द्वार पर मान-सम्मान मिले; अहर्निशि राम-नाम का अर्थात् ईश्वर का स्मरण कर। संतों की संगत से ज्ञान प्राप्त कर रात-दिन प्रभू भक्ति में लीन रह, और हर प्रकार के सुख भोग, सांसारिक माया-जाल से बाहर निकल, झूठ और निन्दा का त्याग कर, भ्रम का नाश कर, सत्य पर विश्वास रख, प्राणिमात्र की सच्ची लगन से निष्काम सेवा कर, सच्ची कृति (क्रियाएँ) कर, ईश्वर को याद रख, तभी तेरा इहलोक और परलोक—दोनों स्थानों पर कल्याण संभव है।

सिरीरागु महला १

इकु तिलु पिआरा वीसरै रोगु वडा मन माहि। किउ दरगह पति पाईऐ जा हरि न वसै मन माहि। गुरि मिलिऐ सुखु पाईऐ अगनि मरै गुण माहि ॥ १ ॥ मन रे अहिनिसि हरिगुण सारि। जिन खिनु पलु नामु न वीसरै ते जन विरले संसारि ॥१॥ रहाउ ॥ जोती जोति मिलाईऐ सुरती सुरति संजोगु। हिंसा हउमै गतु गए नाही सहसा सोगु। गुरमुखि जिसु हरि मनि वसै तिसु मेले गुरु संजोगु ॥ २ ॥ काइआ कामणि जे करी भोगे भोगणहारु। तिसु सिउ नेहु न कीजई जो दीसै चलणहारु। गुरमुखि रवहि सोहागणी सो प्रभु सेज भतारु ॥ ३ ॥ चारे अगनि निवारि मरु गुरमुखि हरि जलु पाय। अंतरि कमलु प्रगासिआ अंमृतु भरिआ अघाय। नानक सतगुरु मीतु करि सचु पावहि दरगह जाय ॥ ४ ॥ २० ॥

श्रीराग महला १—गुरुदेव कहते हैं हे प्राणी ! ईश्वर को सदैव याद रख, एक पल के लिए भी उसे भूलने न दे। तुझे प्रभू के द्वार पर इज्जत तभी मिलेगी, जब तू उसे हमेशा याद रखेगा। गुरूपदेश से तृष्णा-रूपी अग्नि को ठंडा कर दे। ईश्वरीय गुणों को रात-दिन सँभाल कर रख, याद कर और उन विरले मनुष्यों की श्रेणी में शामिल हो जा, जो उस प्रभू को अहर्निशि याद रखते हैं। ज्ञान के प्रकाश से एकरूप हो जा, अहिंसा में विश्वास कर, और अंह को पास फटकने भी न दे। पूर्व कर्मों के आधार पर गुरु की कृपा से जो प्रभू को जपने हृदयों में बसा लेते हैं तथा नाशवान वस्तुओं से अर्थात् शरीर और सांसारिक पदार्थों से मोह नहीं करते, वे ईश्वरीय ज्योति को प्राप्त कर लेते हैं; प्रभू की गोद का आनन्द प्राप्त करते हैं; काम, क्रोध, लोभ, मोह एवं अहंकार का नाश कर आवागमन से बच जाते हैं; कमल की भाँति खिलकर सुख भोगते हैं, और प्रभू के द्वार की प्राप्ति कर, उस सच्चे परमात्मा के मित्र बन आनन्दित होते हैं।

सिरीरागु महला १

हरि हरि जपहु पिआरिआ गुरमति ले हरि बोलि। मनु सच कसवटी लाईऐ तुलीऐ पूरै तोलि। कीमति किनै न पाईऐ रिद माणक मोलि अमोलि ॥ १ ॥ भाई रे हरि हीरा गुर माहि। सतसंगति सतगुरु पाईऐ अहिनिसि सबदि सलाहि ॥ १ ॥ रहाउ ॥

सचु वखरु धनु रासि लै पाईऐ गुर परगासि । जिउ अगनि मरै जलि पाइऐ तिउ त्रिसना दासनिदासि । जम जंदारु न लगई इउ भउजलु तरै तरासि ॥ २ ॥ गुरमुखि कूड़ु न भावई सचि रते सच भाय । साकत सचु न भावई कूड़ै कूड़ी पांय । सचि रते गुरि मेलिऐ सचे सचि समाय ॥ ३ ॥ मन महि माणकु लालु नामु रतनु पदारथु हीरु । सचु वखरु धनु नामु है घटि घटि गहिर गंभीरु । नानक गुरमुखि पाईऐ दइआ करे हरि हीरु ॥ ४ ॥ २१ ॥

श्रीराग महला १—गुरुदेव कहते हैं कि हे भाइयो ! ईश्वर का नाम जपो, उसकी शिक्षाओं पर अमल करो, अच्छे और नेक कर्म करो तथा उन्हें पूरी तरह से कसौटी पर तौल लो; केवल तभी तुम्हें अमूल्य नाम-रूपी माणिक प्राप्त होगा । सत्संग में दिन-रात ईश्वर के गुण गाओ, सत्व की कमाई करो, तृष्णा-रूपी अग्नि को बुझा दो; फिर तुम्हें यम का भी भय नहीं रहेगा और भवसागर से पार हो जाओगे । जो गुरूपदेश ग्रहण करनेवाले लोग हैं, उन्हें झूठ जरा भी नहीं भाता; परन्तु जो शक्ति के उपासक हैं, उन्हें सांसारिक माया और झूंठी प्रशंसा ही अच्छी लगती है । वास्तविकता तो यह है कि सत्य आचरण करनेवालों को ही प्रभु-दर की प्राप्ति होती है । उन्हें नाम-रूपी हीरे-जवाहरात-माणिक आदि सभी पदार्थ उपलब्ध हो जाते हैं । गुरु नानकदेव जी कहते हैं—यह सब तभी होता है, जब उस प्रभू परमात्मा की कृपा-दृष्टि हो जावे ।

सिरीरागु महला १

भरमे भाहि न विझवै जे भवै दिसंतर देसु । अंतरि मैलु न उतरै ध्रिगु जीवणु ध्रिगु वेसु । होरु कितै भगति न होवई बिनु सतिगुर के उपदेस ॥ १ ॥ मन रे गुरमुखि अगनि निवारि । गुर का कहिआ मनि वसै हउमै त्रिसना मारि ॥ १ ॥ रहाउ ॥ मनु माणकु निरमोलु है रामनामि पति पाय । मिलि सतसंगति हरि पाईऐ गुरमुखि हरि लिव लाय । आपु गइआ सुखु पाइआ मिलि सललै सलल समाय ॥ २ ॥ जिनि हरि हरि नामु न चेतिओ सु अउगुणि आवै जाय । जिसु सतगुरु पुरखु न भेटिआ सु भउजलि पचै पचाय । इहु माणकु जीउ निरमोलु है इउ कउडी बदलै जाय ॥ ३ ॥ जिंना सतगुरु रसि मिलै से पूरे

यदा भवानी सम्प्राप्ता जनकस्य निकेतनम् । तदा तत्र न सम्मेने त्रासाद्दक्षस्य कोऽपि ताम् ।।
अमिलत् केवलं माता त्वेका यद्यपि सादरम् । भगिन्यस्तां मिलन्ति स्म पर्याप्तस्मितसंयुताः ।।
क्षेमप्रश्नानपि तदा दक्षः पप्रच्छ नैव ताम् । विपरीतं किन्तु तस्य तां दृष्ट्वाङ्गानि जज्वलुः ।।
ततो गत्वा सती देवी यज्ञकर्म ददर्श तत् । किन्तु तत्र न कुत्रापि शम्भोर्भागं ददर्श सा ।।
यदुक्तं शम्भुना पूर्वं चित्तमारोहति स्म तत् । प्रभोर्ज्ञात्वापमानञ्च तस्या हृदयमज्वलत् ।।
पूर्वदुःखं न हृदयं तस्या व्याप्तं तथाकरोत् । महातापं ददिदं तस्या व्याप्तं यथाकरोत् ।।
विश्वस्मिन् दारुणानीह नाना दुःखानि यद्यपि । जात्यवज्ञातिकठिना तेषु सर्वेषु वर्तते ।।
सती तत् सकलं ज्ञात्वा बभूवातिरुषान्विता । प्राबोधयत् तां जननी प्रकारैर्बहुभिस्ततः ।।

शक्यो न सोढुं गिरिशावमानश्चित्ते प्रबोधोऽप्यभवन्न सत्याः ।
हठात् सभां तां सकलां प्रतर्ज्य सक्रोधमूचे वचनं ततः सा ।। ६३ ।।

सभासदाः सर्व एव शृण्वन्तु च मुनीश्वराः । यैर्निन्दा शङ्करस्यात्र विहिताप्यथवा श्रुता ।।
सकलैरपि तैस्तस्याः क्षणादेवाप्स्यते फलम् । तातोऽपि मे सर्वथैव पश्चात्तापं करिष्यति ।।
अपवादः सज्जनस्य शम्भोर्नारायणस्य च । श्रूयते यत्र तत्रास्ति मर्यादा त्वीदृशी ध्रुवा ।।
निन्दाकर्तुः कर्तनीया जिह्वैव स्ववशे यदि । पिधाय श्रवणौ नूनं पलायेत ततोऽथवा ।।
महेश्वरः पुरारातिर्जगदात्मैव निश्चितम् । जगतो जनकः कर्ता सर्वेषां श्रेयसस्तथा ।।
तस्यैव निन्दां कुरुते पिता मन्दमतिर्मम । बीजाद् दक्षस्यैव जातं कलेवरमिदं मम ।।
अत एव क्षणादेव त्यक्ष्यामीदं कलेवरम् । धृत्वा स्वहृदये देवं चन्द्रमौलिं वृषध्वजम् ।।
इत्युक्त्वा ज्वालयामास सती योगाग्निना तनुम् । सर्वस्मिन्नेव यागे च हाहाकारः क्षणादभूत् ।।

सत्या मृतिं शम्भुगणा निशम्य मखस्य विध्वंसनमारभन्त ।
मखस्य विध्वंसनमाकलय्य चक्रे मुनीशो भृगुरस्य रक्षाम् ।। ६४ ।।

अमुं सर्वं समाचारं शङ्करः प्राप्तवान् यदा । कोपं कृत्वा वीरभद्रं तदा प्रेषयति स्म सः ।।
वीरभद्रस्तत्र गत्वा यज्ञविघ्नं समाचरत् । देवेभ्यश्चापि सर्वेभ्यो यथाकर्म फलं ददौ ।।
नूनं जगत्प्रसिद्धाभूत् सैव दक्षस्य दुर्गतिः । यादृशी कापि भवति विमुखस्य शिवादिह ।।
इतिहासमिमं सर्वं जानाति सकलं जगत् ।सर्वोऽप्ययं वर्णितोऽस्ति तस्मात् सङ्क्षेपतो मया।।
इतः सती मृत्युकाले हरिं वरमयाचत । प्रतिजन्मानुरागोऽस्तु यत् तस्याः शिवपादयोः ।।
हेतोस्तस्मादेव गत्वा हिमाचलगृहं ततः । पार्वतीनामकं देहं प्राप्य जग्राह जन्म सा ।।
उमा यमारभ्य कालं सम्प्राप्ता गिरिमन्दिरम् । व्याप्ताः सर्वास्तमारभ्य सिद्धयस्तत्र सम्पदः ।।
तस्मिन् रम्यान् यत्र-तत्र मुनयश्चक्रुराश्रमान् । तेभ्यश्च वासमुचितं प्रददौ हिमभूधरः ।।

सदा सुपुष्पैः सुफलैश्च युक्ताः सर्वेऽपि वृक्षा विविधा नवीनाः ।
आविर्बभूवुश्च गिरौ मनोज्ञा बहुप्रकाराः खनयो मणीनाम् ।। ६५ ।।

जलं पवित्रं सर्वासु सरित्सु प्रावहत् तदा । सर्वे खगा मृगा भृङ्गाः सुखिनः सर्वथाभवन् ।।
सर्वैर्जीवैः परित्यक्तो विरोधः सहजो निजः । सर्वेऽप्यकुर्वन् सुप्रीतिं गिरौ तस्मिन् परस्परम् ।।
शैलाधिपः शोभते स्म शैलजाया गृहागमात् । यथागमाद् रामभक्तेः सततं शोभते जनः ।।
तस्य गेहे भान्ति नित्यं मङ्गलानि नवानि च । ब्रह्मादयो गिरेर्यस्य प्रगायन्ति यशः सदा ।।
समाचारं सर्वमेव प्राप्तवान् नारदस्ततः । ततश्च कौतुकाद् गेहं शैलेशस्य ययौ मुनिः ।।
अकरोदादरं तस्य समुत्कृष्टं गिरीश्वरः । प्रक्षाल्य चरणौ तस्य ददौ तस्मै वरासनम् ।।
स पत्न्या सहितस्तस्य चरणौ शिरसानमत् । सर्वत्रासिञ्चयच्चैव स्वगेहे चरणोदकम् ।।
अवर्णयद् गिरिवरः सौभाग्यं बहुधा निजम् । सुतामाहूय च तया मुनेः पादावनामयत् ।।

दो०—त्रिकालग्य सर्बग्य तुम्ह, गति सर्बत्र तुम्हारि।
कहहु सुता के दोष-गुन, मुनिबर हृदयँ बिचारि॥ ६६॥

कह मुनि बिहसि गूढ़ मृदुबानी। सुता तुम्हारि सकल गुनखानी॥
सुंदर, सहज सुसील, सयानी। नाम उमा, अंबिका, भवानी॥
सब लच्छन-संपन्न कुमारी। होइहि संतत पियहि पिआरी॥
सदा अचल ऐहि कर अहिवाता। ऐहि तें जसु पैहहिं पितु-माता॥
होइहि पूज्य सकल जग माहीं। अहि सेवत कछु दुर्लभ नाहीं॥
ऐहि कह नामु सुमिरि संसारा। त्रिय चढ़िहहिं पतिब्रत-असिधारा॥
सैल! सुलच्छन सुता तुम्हारी। सुनहु जे अब अवगुन दुइ-चारी॥
अगुन, अमान, मातुपितु-हीना। उदासीन, सब संसय-छीना॥

दो०—जोगी, जटिल, अकाम मन, नगन, अमंगल-बेष।
अस स्वामी ऐहि कहँ मिलिहि, परी हस्त असि रेख॥ ६७॥

सुनि मुनि-गिरा सत्य जियँ जानी। दुख दंपतिहि, उमा हरषानी॥
नारदहूँ यह भेदु न जाना। दसा एक, समुझब बिलगाना॥
सकल सखीं, गिरिजा, गिरि, मैना। पुलक सरीर, भरे जल नैना॥
होइ न मृषा देवरिषि-भाषा। उमा सो बचनु हृदयँ धरि राखा॥
उपजेउ सिव-पद-कमल-सनेहू। मिलन कठिन, मन भा संदेहू॥
जानि कुअवसरु प्रीति दुराई। सखी-उछँग बैठी पुनि जाई॥
झूठि न होइ देवरिषि-बानी। सोचहिं दंपति, सखीं सयानी॥
उर धरि धीर, कहइ गिरिराऊ। कहहु नाथ, का करिअ उपाऊ॥

दो०—कह मुनीस, हिमवंत सुनु, जो बिधि लिखा लिलार।
देव, दनुज, नर, नाग, मुनि, कोउ न मेटनिहार॥ ६८॥

तदपि एक मैं कहउँ उपाई। होइ, करै जौं दैउ सहाई॥
जस बरु मैं बरनेउँ तुम्ह पाहीं। मिलिहि उमहि तस संसय नाहीं॥
जे-जे बर के दोष बखाने। ते सब सिव-पहिं मैं अनुमाने॥
जौं बिबाहु संकर-सन होई। दोषउ गुन-सम कह सबु कोई॥
जौं अहि-सेज सयन हरि करहीं। बुध कछु तिन्ह कर दोषु न धरहीं॥
भानु, कृसानु सर्ब रस खाहीं। तिन्ह कहँ मंद कहत कोउ नाहीं॥
सुभ अरु असुभ सलिल सब बहई। सुरसरि कोउ अपुनीत न कहई॥
समरथ कहुँ नहिं दोषु गोसाईं। रबि, पावक, सुरसरि की नाईं॥

दो०—जौं अस हिसिषा करहिं नर, जड़ बिबेक-अभिमान।
परहिं कलप भरि नरक महुँ, जीव कि ईस समान॥ ६९॥

सुरसरि-जलकृत बारुनि जाना। कबहुँ न संत करहिं तेहि पाना॥
सुरसरि मिलें सो पावन जैसें। ईस-अनीसहि अंतरु तैसें॥
संभु सहज समरथ भगवाना। ऐहि बिबाहँ सब बिधि कल्याना॥
दुराराध्य पै अहहिं महेसू। आसुतोष पुनि किएँ कलेसू॥
जौं तपु करै कुमारि तुम्हारी। भाविउ मेटि सकहिं त्रिपुरारी॥

त्रिकालवेत्तास्ति च सर्ववेत्ता सर्वत्र लोके भवतो गतिश्च ।
ब्रवीतु दोषान् सुगुणान् सुतायाः विचार्य चित्ते मुनिवर्य नूनम् ॥ ६६ ॥

इति श्रुत्वा विहस्याह गूढं मृदु वचो मुनिः । गिरे तव सुता सर्वगुणानां खनिरद्भुता ॥
सुशीला सुन्दरी चैषा चतुरापि स्वभावतः । उमाम्बिका भवानीति त्वस्या आख्या प्रकीर्तिता ॥
सर्वैः सुलक्षणैरेषा सम्पन्नास्ति कुमारिका । भविष्यति सदैवैषा प्रियस्य परमा प्रिया ॥
स्थास्यत्यस्या नूनमेव सौभाग्यमचलं सदा । सम्प्राप्स्यतोऽनया त्वस्या जननीजनकौ यशः ॥
सर्वस्मिन्नेव जगति पूजनीया भविष्यति । इमां संसेवमानानां किमप्यस्ति न दुर्लभम् ॥
एतस्या नाम संस्मृत्य संसारे सर्वमङ्गलम् । पातिव्रत्यं खड्गधारामारोहन्ति स्त्रियो व्रतम् ॥
शैलराज सुता तेऽस्ति ध्रुवमेव सुलक्षणा । येऽधुनावगुणा द्वौ वा चत्वारः श्रृणु तानपि ॥
अगुणो मानहीनश्च पितृभ्यां रहितस्तथा । उदासीनश्च निश्शेषसंशयैरपि वर्जितः ॥

योगी जटी कामविहीनचित्तो नग्नस्तथामङ्गलवेषधारी ।
एतादृशं प्राप्स्यति नाथमेषा यदीदृशी हस्तगतास्ति रेखा ॥ ६७ ॥

श्रुत्वा मुनेस्तद् वचनं ज्ञात्वा सत्यञ्च मानसे । दुःखिनौ दम्पती जातावुमा तु मुदिताभवत् ॥
न ज्ञातवान् नारदोऽपि रहस्यमिदमुत्तमम् । यतो बाह्यदर्शक्येऽपि स्थितो बोधः पृथक्-पृथक् ॥
सर्वालीनां शैलपुत्र्याश्चासन् शैलेशमेनयोः । रोमाञ्चितानि वर्ष्माणि साश्रूणि नयनान्यपि ॥
भवितुं नार्हति मृषा देवर्षेर्वचनं क्वचित् । इति कृत्वा शिवा सर्वं चित्ते स्थापयति स्म तत् ॥
शिवाङ्घ्रिकमलस्नेहस्तस्याश्चेतस्यजायत । किन्त्वजायत शङ्कापि कठिनाप्तिः शिवस्य यत् ॥
ततोऽनवसरं ज्ञात्वा सा प्रीतिं समगूहयत् । गत्वा स्वसख्या उत्सङ्गे उपाविशदसौ पुनः ॥
भविष्यति मृषा नैव देवर्षेर्वचनं क्वचित् । इति शोचन्ति चतुराः सख्यस्तौ दम्पती तथा ॥
आश्रित्य हृदये धैर्यं प्रोवाचाद्रिपतिस्ततः । हे नाथ! वद कर्तव्यः प्रयत्नोऽस्माभिरत्र कः ॥

ऊचे मुनीशः श्रृणु शैलराज यदस्ति भाले लिखितं विधात्रा ।
नरर्षिनागामरदानवाश्च न केऽपि तन्मार्जयितुं समर्थाः ॥ ६८ ॥

तथाप्येकमुपायं त्वां विषयेऽस्मिन् वदाम्यहम् । यर्हि दैवं सहायं स्यात् तर्हि सिद्धो भविष्यति ॥
मया तव समीपेऽद्य वर्णितो यादृशो वरः । निश्शङ्कमेव पार्वत्या लप्स्यते तादृशो वरः ॥
यान् यान् वरगतान् दोषानिह वर्णितवानहम् । सर्वे ममानुमानेन ते वर्तन्ते सदाशिवे ॥
माङ्गल्यदो विवाहोऽस्या भवेत् सह शिवेन चेत् । तर्हि सर्वेऽपि वक्ष्यन्ति दोषानपि गुणैः समान् ॥
यथा हरिश्शेषशय्यामधिशेते पयोनिधौ । तथापि दोषं कमपि मन्यन्ते तस्य नो बुधाः ॥
लोके भानुः कृशानुश्च गृह्णीतः सकलान् रसान् । तथापि तौ जनः कोऽपि मन्दाविति न मन्यते ॥
शुभाशुभं प्रवहति गङ्गायां सकलं जलम् । अपवित्रां न मनुते कोऽपि देही तथापि ताम् ॥
नास्ति दोषः समर्थस्य भद्र! क्वापि कदापि च । यथा दोषो नास्ति भानोर्वह्नेस्त्रिस्रोतसोऽपि च ॥

स्पर्धां मनुष्या विदधत्यमूञ्चेद् बोधाभिमानाज्जगतीह मन्दाः ।
आकल्पमेते निरये पतन्ति जीवोऽपि किं स्यात् क्वचिदीशतुल्यः ॥ ६९ ॥

गङ्गाम्भसापि रचिता विज्ञाता यदि वारुणी । कदापि सज्जनास्तस्याः पानं कुर्वन्ति न क्वचित् ॥
गङ्गाप्रवाहे मिलिता सैव पूता यथा मता । जीवेशयोस्तथैवास्ति भेदः सामर्थ्यसङ्गतः ॥
स्वाभाविकः समर्थोऽस्ति शम्भुः स भगवान् हरः । अतोऽनेन सहोद्वाहे हितं सर्वप्रकारकम् ॥
किन्त्वसौ वर्तते नूनं दुराराध्यो महेश्वरः । पुनरस्त्याशुतोषोऽपि तपःक्लेशे कृते सति ॥
यदि कुर्यात् तपश्चर्यां गिरे तव कुमारिका । भावि नाशयितुं शक्तस्तर्हि त्रिपुरसूदनः ॥

जद्यपि बर अनेक जग माहीं। ऐहि कहँ सिव तजि दूसर नाहीं ॥
बरदायक प्रनतारति - भंजन। कृपासिंधु सेवक - मन - रंजन ॥
इच्छित फल, बिनु सिव अवराधें। लहिअ न कोटि जोग-जप साधें ॥

दो०—अस कहि नारद सुमिरि हरि, गिरिजहि दीन्हि असीस।
होइहि यह कल्यान अब, संसय तजहु गिरीस ॥ ७० ॥

कहि अस ब्रह्मभवन मुनि गयऊ। आगिल चरित सुनहु जस भयऊ ॥
पतिहि ऐकांत पाइ कह मैना। नाथ न मैं समुझे मुनि - बैना ॥
जौं घरु, बरु, कुलु होइ अनूपा। करिअ बिबाहु सुता - अनुरूपा ॥
न त कन्या बरु रहउ कुआरी। कंत ! उमा मम प्रानपिआरी ॥
जौं न मिलिहि बरु गिरिजहि जोगू। गिरि जड़ सहज, कहिहि सबु लोगू ॥
सोइ बिचारि पति ! करेहु बिबाहू। जेहिं न बहोरि होइ उर दाहू ॥
अस कहि परी चरन धरि सीसा। बोले सहित - सनेह गिरीसा ॥
बरु पावक प्रगटै ससि माहीं। नारद - बचनु अन्यथा नाहीं ॥

दो०—प्रिया ! सोचु परिहरहु सबु, सुमिरहु श्रीभगवान।
पारबतिहि निरमयउ जेहिं, सोइ करिहि कल्यान ॥ ७१ ॥

अब जौं तुम्हहि सुता पर नेहू। तौ अस जाइ सिखावनु देहू ॥
करै सो तपु, जेहिं मिलहिं महेसू। आन उपायँ न मिटिहि कलेसू ॥
नारद - बचन सगर्भ, सहेतू। सुंदर, सब गुन - निधि बृषकेतू ॥
अस बिचारि तुम्ह तजहु असंका। सबहि भाँति संकरु अकलंका ॥
सुनि पति-बचन हरषि मन माहीं। गई तुरत उठि, गिरिजा-पाहीं ॥
उमहि बिलोकि नयन भरे बारी। सहित सनेह गोद बैठारी ॥
बारहिं बार लेति उर लाई। गदगद कंठ, न कछु कहि जाई ॥
जगत - मातु सर्बग्य भवानी। मातु सुखद बोलीं मृदु बानी ॥

दो०—सुनहि मातु ! मैं दीख अस, सपन सुनावउँ तोहि।
सुंदर गौर सुबिप्रबर, अस उपदेसेउ मोहि ॥ ७२ ॥

करहि जाइ तपु सैलकुमारी। नारद कहा सो सत्य बिचारी ॥
मातु-पितहि पुनि यह मत भावा। तपु सुखप्रद, दुख-दोष नसावा ॥
तपबल रचइ प्रपंचु बिधाता। तपबल बिष्नु सकल जग-त्राता ॥
तपबल संभु करहिं संघारा। तपबल सेषु धरइ महिभारा ॥
तप - अधार सब सृष्टि भवानी। करहि जाइ तपु अस जियँ जानी ॥
सुनत बचन बिसमित महतारी। सपन सुनायउ गिरिहि हँकारी ॥
मातु पितहि बहुबिधि समुझाई। चलीं उमा तप - हित हरषाई ॥
प्रिय परिवार, पिता अरु माता। भए बिकल, मुख आव न बाता ॥

दो०—बेदसिरा मुनि आइ तब, सबहि कहा समुझाइ।
पारबती-महिमा सुनत, रहे प्रबोधहि पाइ ॥ ७३ ॥

उर धरि उमा प्रानपति - चरना। जाइ बिपिन लागीं तपु करना ॥
अति सुकुमार, न तनु तप-जोगू। पति-पद सुमिरि तजेउ सबु भोगू ॥

यद्यप्यनेके संसारे वर्तन्ते सुलभा वराः । किन्त्वेतस्याः शिवं हित्वा वरोऽन्यो नैव वर्तते ।।
अभीष्टवरदाता स प्रणतार्तिविभञ्जनः । कृपासिन्धुः सेवकानां मानसानां सुरञ्जनः ।।
अभीप्सितं फलं लोके शिवस्याराधनां विना । न लभ्यते कोटिसङ्ख्यैर्योगैश्चापि जपैः कृतैः।।

उक्त्वेति शम्भुं स्मृतवान् सुरर्षिर्ददौ शुभाशीर्गिरिराजपुत्र्यै ।
ऊचेऽधुनेदं हितमेव सर्वं त्यजाशु शङ्कां गिरिराज तस्मात् ।। ७० ।।

इत्युक्त्वा ब्रह्मभवनं प्राचलन्नारदो मुनिः । शृणुष्वाग्रे चरित्रं यद् यादृशञ्च यथाभवत् ।।
एकान्तेऽवसरं प्राप्य भर्तारं प्राह मेनका । न ज्ञातवत्यहं नाथ वचनं मुनिनेरितम् ।।
यर्हि गेहं वरो वंशः सर्वञ्चानुपमं भवेत् । भवेत् कन्यानुरूपञ्च तर्ह्युद्वाहो विधीयताम्।।
नो चेत् कन्यास्मदीयेयं कुमार्येव स्थिता भवेत्। कान्त! यस्मादुमा नित्यमस्ति प्राणप्रिया मम।।
कुत्र चिद् गिरिजायोग्यो न मिलिष्यति चेद् वरः। तर्हि वक्ष्यन्ति सर्वेऽपि स्वभावाद् यद् गिरिर्जडः।।
तदेतत् प्रविचार्यैव विवाहं कारय प्रिय । यथा पश्चाद् भवेन्नैव तापश्चेतसि नः पुनः ।।
इत्युक्त्वा पादयोः पत्युः शिरो विन्यस्य सापतत्। सस्नेहं प्राह वचनं गिरीशस्तदनन्तरम् ।।
कदापि निष्पतेदग्निः सुधांशोरपि शीतलात् । किन्त्वन्यथा भवेन्नैव वचनं नारदेरितम् ।।

त्यज प्रिये शोकमिमं समग्रं श्रीशं स्मर त्वं भगवन्तमेव ।
यः पार्वतीं निर्मितवान् परात्मा भद्रं करिष्यत्यखिलं स एव ।। ७१ ।।

इदानीं चेत् तव स्नेहः सुतायां वर्तते प्रिये । तर्हि गत्वा देहि शिक्षां तस्यै त्वेतादृशीं द्रुतम्।।
यत् कुर्यात् सा तपस्तादृङ् महेशो लप्स्यते यतः। उपायेनापरेणायं क्लेशो यास्यति न क्षयम् ।।
वचनं नारदस्यास्ति सगर्भञ्च सहेतुकम् । वृषकेतुश्च रम्योऽस्ति सर्वसद्गुणशेवधिः ।।
इत्थं विचार्य सकलं त्वमाशङ्कां परित्यज ।सर्वैः प्रकारैर्गिरिशो निष्कलङ्कोऽस्ति निश्चितम्।।
इति श्रुत्वा वचः पत्युः प्रहृष्टा हृदि मेनका । उत्थाय तत्क्षणादेव गिरिजानिकटं गता ।।
उमां विलोक्यैव तस्या आगतं वारि नेत्रयोः। सस्नेहं तां निजोत्सङ्गे मेनोपावेशयत् तदा ।।
पुनः पुनस्तामुरसा निजेनायोजयच्च सा ।कण्ठश्च गद्गदस्तस्याः किञ्चिद् वक्तुं न साशकत्।।
देवी भवानी सर्वज्ञा जगन्माता महेश्वरी । उवाच सुखदां मृद्वीं वाचं स्वजननीं ततः ।।

मातः शृणुष्वेति विलोकितं मे स्वप्नं त्वहं यं विनिवेदयामि ।
द्विजोत्तमो गौरमनोज्ञरूप उपादिशन् मां कृपयेत्थमेव ।। ७२ ।।

हे शैलपुत्रि! त्वं गत्वा तपस्तीव्रं समाचर । यद् वचो नारदेनोक्तं तत् सत्यं प्रविचार्य च।।
एतन् मात्रे च पित्रे ते रोचते स्म मतं पुनः। तपः सुखप्रदं सर्वदुःखदोषविनाशकम् ।।
विधिस्तपोबलेनैव प्रपञ्चं रचयत्यदः । विष्णुस्तपोबलेनैव त्रायते सकलं जगत् ।।
शम्भुस्तपोबलेनैव जगत् संहरते तथा । शेषस्तपोबलेनैव भारं भूम्या दधाति च ।।
भवानि! सकला सृष्टिस्तप आश्रित्य तिष्ठति। इत्थं विचार्य चित्ते स्वे त्वं गत्वा तप आचर।।
श्रुत्वोमाया इति वचो जननी विस्मिताभवत्। गिरिमाहूय सा सर्वं स्वप्नं श्रावयति स्म तम्।।
ततः प्रकारैर्विविधैः प्रबोध्य पितरौ स्वकौ । तपः कर्तुं हर्षयुक्ता प्राचलद् गिरिनन्दिनी ।।
परिवारः प्रियस्तातो माता च सहसा तदा । विकला अभवन् सर्वे मुखे वागपि नागमत् ।।

ततो मुनिर्वेदशिरा उपेत्य महत्त्वमूचे सकलान् प्रबोध्य ।
श्रुत्वा महत्त्वं गिरिराजपुत्र्याः सम्प्राप्य बोधं सकला अतुष्यन् ।। ७३ ।।

उमा प्राणपतेर्धृत्वा चित्ते चरणपङ्कजे । तपः कर्तुं वनं गत्वा समारभत तत् तदा ।।
अतीव सुकुमारोऽस्यास्तपोयोग्यो न विग्रहः।पत्युस्तु पादौ स्मृत्वा सा भोगान् सर्वाञ्जहौ क्षणात्।।

नित नव चरन उपज अनुरागा। बिसरी देह, तपहिं मनु लागा॥
संबत सहस मूल-फल खाए। सागु खाइ सत बरष गवाँए॥
कछु दिन भोजनु बारि-बतासा। किए कठिन कछु दिन उपबासा॥
बेल-पाती महि परइ सुखाई। तीनि सहस संबत सोइ खाई॥
पुनि परिहरे सुखानेउ परना। उमहि नामु तब भयउ अपरना॥
देखि उमहि तप-खीन सरीरा। ब्रह्मगिरा भै गगन गभीरा॥

दो०—भयउ मनोरथ सुफल तब, सुनु गिरिराजकुमारि।
परिहरु दुसह कलेस सब, अब मिलिहहिं त्रिपुरारि॥ ७४॥

अस तपु काहुँ न कीन्ह भवानी। भए अनेक धीर, मुनि, ग्यानी॥
अब उर धरहु ब्रह्म-बर-बानी। सत्य सदा, संतत सुचि जानी॥
आवै पिता बोलावन जबहीं। हठ परिहरि घर जाएहु तबहीं॥
मिलहिं तुम्हहि जब सप्त रिषीसा। जानेहु तब प्रमान बागीसा॥
सुनत गिरा-बिधि गगन बखानी। पुलक गात गिरिजा हरषानी॥
उमा-चरित सुंदर मैं गावा। सुनहु संभु कर चरित सुहावा॥
जब तें सतीं जाइ तनु त्यागा। तब तें सिव-मन भयउ बिरागा॥
जपहिं सदा रघुनायक-नामा। जहँ-तहँ सुनहिं राम-गुन-ग्रामा॥

दो०—चिदानंद, सुखधाम सिव, बिगत-मोह-मद-काम।
बिचरहिं महि धरि हृदयँ हरि, सकल-लोक-अभिराम॥ ७५॥

कतहुँ मुनिन्ह उपदेसहिं ग्याना। कतहुँ राम-गुन करहिं बखाना॥
जदपि अकाम, तदपि भगवाना। भगत-बिरह-दुख-दुखित सुजाना॥
एहि बिधि गयउ कालु बहु बीती। नित नै होइ रामपद-प्रीती॥
नेमु-प्रेमु संकर कर देखा। अबिचल हृदयँ भगति कै रेखा॥
प्रगटे रामु कृतग्य कृपाला। रूप-सील-निधि, तेज बिसाला॥
बहु प्रकार संकरहि सराहा। तुम्ह बिनु अस ब्रतु को निरबाहा॥
बहुबिधि राम सिवहि समुझावा। पारबती कर जन्मु सुनावा॥
अति पुनीत गिरिजा कै करनी। बिस्तर-सहित कृपानिधि बरनी॥

दो०—अब बिनती मम सुनहु सिव, जौं मो पर निज नेहु।
जाइ बिबाहहु सैलजहि, यह मोहि मागें देहु॥ ७६॥

कह सिव, जदपि उचित अस नाहीं। नाथ-बचन पुनि मेटि न जाहीं॥
सिर धरि आयसु करिअ तुम्हारा। परम धरमु यह, नाथ! हमारा॥
मातु, पिता, गुर, प्रभु कै बानी। बिनहिं बिचार करिअ सुभ जानी॥
तुम्ह सब भाँति परम हितकारी। अग्या सिर पर नाथ तुम्हारी॥
प्रभु तोषेउ सुनि संकर-बचना। भक्ति-बिबेक-धर्म-जुत रचना॥
कह प्रभु, हर! तुम्हार पन रहेऊ। अब उर राखेहु जो हम कहेऊ॥
अंतरधान भए अस भाषी। संकर सोइ मूरति उर राखी॥
तबहिं सप्तरिषि सिव पहिं आए। बोले प्रभु अति बचनु सुहाए॥

नित्यं नवोऽनुरागोऽस्या अभवद् भर्तृपादयोः । देहोऽपि विस्मृतो जातस्तपोयुक्तं मनोऽभवत् ।।
आसीद् वर्षसहस्रं सा कन्दमूलफलाशना । पुनर्वर्षशतं साभूत् केवलं शाकभक्षिणी ।।
वार्वातभोजना सासीद् दिनानि कतिचित् ततः।उपवासान् कठोरान् सा चक्रेऽह्नानि कियन्त्यपि।।
शुष्काणि बिल्वपत्राणि भूमौ यान्यपतन् वने । त्रीणि वर्षसहस्राणि तान्येवाभक्षयत् ततः ।।
शुष्कपर्णान्यपि यदा सा तत्याज दृढव्रता । अपर्णेत्याख्यया लोके तदोमा प्रथिताभवत् ।।
उमायास्तपसा क्षीणं शरीरं परिवीक्ष्य च । ब्रह्मवाणी समभवद् गम्भीरा गगनात् तदा ।।

मनोरथस्ते सफलोऽस्ति जातः शृणुष्व नूनं गिरिराजपुत्रि ।
क्लेशान् समग्रांस्त्यज दुस्सहांस्त्वं त्वामामिलिष्यत्यधुना पुरारिः ।। ७४ ।।

तपो भवानि! केनापि नेदृशं विहितं क्वचित् । यद्यप्यनेके सञ्जाता धीरा विज्ञा मुनीश्वराः।।
इतः परं वरां वाणीं ब्रह्मणो धारयोरसा । सदा सत्यां परिज्ञाय सततं पावनामपि ।।
आगमिष्यति ते तातो यदाह्वानाय पार्वति । तदा हठं परित्यज्य गच्छ तातस्य मन्दिरम् ।।
यदा सप्तर्षयो मान्यास्त्वां मिलिष्यन्त्यसंशयम्। ज्ञास्यसीमां तदा वाणीं सप्रमाणामृतम्भराम्।।
इत्थं श्रुत्वा ब्रह्मवाणीं गगनप्रेरितां शुभाम् । पुलकाञ्चितसर्वाङ्गा गिरिजा मुदिताभवत् ।।
उमाचरित्रं रुचिरं गीतमेतन् मया मुने । शम्भोश्चरित्रं रुचिरं भरद्वाज! निशामय ।।
यमारभ्य पितुर्यागे सती तत्याज विग्रहम् । कालं तमारभ्य शम्भोर्वैराग्यं मानसेऽभवत् ।।
स सर्वदैव श्रीरामनाम्नश्चक्रे जपं तदा । श्रीरामस्य गुणग्रामानश्रृणोद् यत्र-तत्र च ।।

शिवश्चिदानन्दसुखालयात्मा मोहस्मयानङ्गविवर्जितश्च ।
धृत्वा हरिं स्वे हृदि कौ विचेरे समस्तलोकस्य सदाभिरामम् ।। ७५ ।।

उपादिदेश स मुनीन् क्वचित् सद्बोधमुत्तमम्। क्वचिच्च वर्णयामास रामचन्द्रस्य सद्गुणान् ।।
यद्यप्यकामो भगवांस्तथापि स महेश्वरः । विवेकी भक्तविरहदुःखदुःखी स्थितोऽधुना ।।
अनेनैव प्रकारेण प्रययौ समयो महान् । नित्यं नवैव तस्यासीत् प्रीती रामपदाब्जयोः।।
पश्यति स्म यदा शम्भोर्नियमं स्नेहमव्ययम्। हृदये भक्तिरेखाञ्च श्रीरामस्तस्य निश्चलाम्।।
कृतज्ञाता कृपालुश्च प्रादुरास तदा हरिः । निधी रूपस्य शीलस्य तीव्रतेजोमयस्तथा ।।
बहुप्रकारैर्गिरिशं प्राशंसज्जगतां पतिः । यत् त्वां विना वर्तते को निर्वहेद् यो व्रत त्विदम्।।
ततो बहुविधं रामो बोधयामास शङ्करम् । अश्रावयच्च पार्वत्या देहप्राप्ति हिमाचलात् ।।
वृत्तं शैलेशनन्दिन्या कर्म चाप्यतिपावनम् । अवर्णयद् विस्तरेण सर्वमेव कृपानिधिः ।।

शम्भोऽधुना मे विनयं शृणुष्व स्नेहोऽस्ति चेत् ते मयि सर्वकालम् ।
गत्वोद्वह त्वं तनयां हिमाद्रेर्मह्यं त्विदं याचितमीश देहि ।। ७६ ।।

ऊचे रामं शिवो नैतद् यद्यपीहोचितं स्थितम्। तथापि नाथवचनमस्वीकर्तुं न शक्यते ।।
तवाज्ञां शिरसा धृत्वा पालयेयमहं सदा । ममायमेव परमो धर्मो हे नाथ वर्तते ।।
जनन्या जनकस्यापि गुरोर्वाणीं प्रभोरपि । विना विचारं कुर्वीत ज्ञात्वा सर्वसुखावहाम् ।।
त्वन्तु सर्वैः प्रकारैर्मे परमो हितकारकः । तस्मान्नाथ तवादेशो मस्तके मम वर्तते ।।
शिवस्य वचसां श्रुत्वा सन्तुष्टोऽभूत् प्रभुर्हरिः। भक्त्या तथा विवेकेन धर्मेण रचनां युताम् ।।
प्रभुरूचे प्रतिज्ञा ते सम्प्राप्ता हर! पूर्णताम् । इदानीं स्थापय स्वान्ते यदुक्तं वचनं मया ।।
एतावदुक्त्वा वचनमन्तर्धानं गतो हरिः । अस्थापयन्निजे चित्ते मूर्तिं तामेव शङ्करः ।।
तदैव सप्त ऋषयः शम्भोः पार्श्वं समागताः । महेश्वरस्तानवदद् वचनञ्चातिशोभनम् ।।

दो०—पारबती पहिं जाइ तुम्ह, प्रेम-परिच्छा लेहु ।
गिरिहि प्रेरि पठएहु भवन, दूरि करेहु संदेहु ॥ ७७ ॥

रिषिन्ह गौरि देखी तहँ कैसी । मूरतिमंत तपस्या जैसी ॥
बोले मुनि, सुनु सैलकुमारी । करहु कवन कारन तपु भारी ॥
केहि अवराधहु, का तुम्ह चहहू । हम सन सत्य मरमु किन कहहू ॥
कहत बचन मनु अति सकुचाई । हँसिहहु सुनि हमारि जड़ताई ॥
मनु हठ परा, न सुनइ सिखावा । चहत बारि पर भीति उठावा ॥
नारद कहा, सत्य सोइ जाना । बिनु पंखन्ह हम चहहिं उड़ाना ॥
देखहु मुनि, अबिबेकु हमारा । चाहिअ सदा सिवहि भरतारा ॥

दो०—सुनत बचन बिहसे रिषय, गिरिसंभव तव देह ।
नारद कर उपदेसु सुनि, कहहु, बसेउ किसु गेह ॥ ७८ ॥

दच्छसुतन्ह उपदेसेन्हि जाई । तिन्ह फिरि भवनु न देखा आई ॥
चित्रकेतु कर घरु उन घाला । कनककसिपु कर पुनि अस हाला ॥
नारद-सिख जे सुनहिं नर-नारी । अवसि होहिं तजि भवनु भिखारी ॥
मन कपटी, तन सज्जन चीन्हा । आपु सरिस सबही चह कीन्हा ॥
तेहि कें बचन मानि बिस्वासा । तुम्ह चाहहु पति सहज उदासा ॥
निर्गुन, निलज, कुबेष, कपाली । अकुल, अगेह, दिगंबर, ब्याली ॥
कहहु, कवन सुखु अस बरु पाएँ । भल भूलिहु ठग के बौराएँ ॥
पंच कहें, सिवँ सती बिबाही । पुनि अवडेरि मराएन्हि ताही ॥

दो०—अब सुख सोवत, सोचु नहिं, भीख मागि भव खाहिं ।
सहज एकाकिन्ह के भवन, कबहुँ कि नारि खटाहिं ॥ ७९ ॥

अजहूँ मानहु कहा हमारा । हम तुम्ह कहुँ बरु नीक बिचारा ॥
अति सुंदर, सुचि, सुखद, सुसीला । गावहिं बेद जासु जस - लीला ॥
दूषन - रहित सकल - गुन - रासी । श्रीपति पुर - बैकुंठ - निवासी ॥
अस बरु तुम्हहि मिलाउब आनी । सुनत बिहसि कह बचन भवानी ॥
सत्य कहेहु गिरिभव तनु एहा । हठ न छूट, छूटै बरु देहा ॥
कनकउ पुनि पषान तें होई । जारेहुँ सहजु न परिहर सोई ॥
नारद - बचन न मैं परिहरऊँ । बसउ भवनु, उजरउ, नहिं डरऊँ ॥
गुर कें बचन प्रतीति न जेही । सपनेहुँ सुगम न सुख-सिधि तेही ॥

दो०—महादेव अवगुन-भवन, बिष्नु सकल गुन-धाम ।
जेहि कर मनु रम जाहि सन, तेहि तेही सन काम ॥ ८० ॥

जौं तुम्ह मिलतेहु प्रथम मुनीसा । सुनतिउँ सिख तुम्हारि धरि सीसा ॥
अब मैं जन्मु संभु - हित हारा । को गुन - दूषन करै बिचारा ॥
जौं तुम्हरे हठ हृदयँ बिसेषी । रहि न जाइ बिनु किएँ बरेषी ॥
तौ कौतुकिअन्ह आलसु नाहीं । बर - कन्या अनेक जग माहीं ॥
जन्म कोटि - लगि रगर हमारी । बरउँ संभु, न त रहउँ कुआरी ॥
तजउँ न नारद कर उपदेसू । आपु कहहिं सत बार महेसू ॥

सांस्कृतिक परम्पराओं का सजग प्रहरी

उत्तर प्रदेश

जिसके दर्शन और साहित्य में युग-युग से प्रतिष्ठित हैं

त्याग, तपस्या और संकल्प की

शाश्वत मान्यताएँ

आज उसी प्रदेश का नव-गठित जन-शासन

अपनी चिरंतन परम्पराओं

और मान्यताओं की

पुनः स्थापना करने को तत्पर है

स्वार्थपरता

अकर्मण्यता और

लोलुपता

के विरुद्ध शासन का शक्तिशाली अभियान

तबतक समाप्त न होगा

जब तक

सामाजिक न्याय और आर्थिक सम्पन्नता

प्रदेश के प्रत्येक व्यक्ति के लिए

सुनिश्चित न हो जायेगी

ग—७९८३ सूचना निदेशालय, उत्तर प्रदेश, द्वारा प्रसारित

स्थापित वर्ष 1949-50 फ़ोन 25634

उत्तर प्रदेशीय सहकारी गन्ना समिति संघ लि०,

लखनऊ

12, राणा प्रताप मार्ग, लखनऊ

प्रदेश की 134 सहकारी गन्ना समितियों की सर्वोच्च संस्था

गन्ना संघ व सदस्य समितियों के लगभग 22 लाख गन्ना उत्पादकों के क्रय-विक्रय सम्बन्धी सभी समस्याओं का समाधान करते हुए तथा कृषि-उत्पादन व गन्ने की पैदावार बढ़ाने हेतु सभी आवश्यक साधनों को सुलभ करने में सतत प्रयत्नशील है।

लघु सिंचाई-साधनों को बढ़ावा देना, खादों का उपयोग बढ़ाने हेतु खाद-भण्डारों का निर्माण, विभिन्न प्रकार के उर्वरकों, खादों व कीट-नाशक पदार्थों का प्रबन्ध, उन्नतिशील बीजों का वितरण आदि कार्यों को सुविधा-जनक बनाते हुए कार्यान्वित करना संघ का मुख्य कार्य है।

आधुनिकतम मशीनों से युक्त गन्ना-संघ-प्रेस सदस्य-समितियों की मुद्रण-आवश्यकताओं की पूर्ति करता है।

ज्वर की सूचना छिपाना हानिकारक है

- अनवरत प्रयत्नों के फलस्वरूप हमारे देश में मलेरिया उन्मूलन हो सका है परन्तु अभी कुछ स्थानों पर यह रोग फैलने की सम्भावना है, अतः प्रत्येक बुख़ार के रोगी की रक्त जांच आवश्यक है।
- स्वास्थ्य विभाग के कार्यकर्ता जब आप के घर पर पूछने जायें, बुख़ार के बारे में सही जानकारी और जांच के लिये रक्त दीजिये।

अथवा निकटस्थ प्राथमिक चिकित्सा केन्द्र को सूचित करिये।

'आपका सहयोग'

'मलेरिया उन्मूलन'

११११८६ प्रसारितः राज्य स्वास्थ्य एवं परिवार नियोजन शिक्षा ब्यूरो उ०प्र० लखनऊ

Regd. No. R.N. 19347-70 Govt. of India

भुवन वाणी ट्रस्ट,

'प्रभाकर निलयम्', ४०५/१२८ चौपटियाँ रोड, लखनऊ—३

जो कार्य किये जा रहे हैं (सानुवाद देवनागरी-लिप्यन्तरण):—

१—(तमिळ) तिरुक्कुऱळ् २—(तमिळ) कम्ब रामायण
३—(तेलुगु) रंगनाथ रामायण ४—(कन्नड़) पम्प रामायण—जैनसाहित्य
५—(असमिया) माधवकंदली रामायण ६—(कश्मीरी) रामावतार चरित
७—(नेपाली) रामायण भानुभक्त कृत ८—(गुजराती) गिरधर रामायण
९—(मलयाळम) तुञ्चत्त् एळुत्तच्छन् कृत महाभारत
१०—(ओड़िआ) वैदेहीश-विळास—उपेन्द्र भञ्ज ११—(सिंधी) स्वामी के सलोक
१२—(मराठी) श्रीराम-विजय—श्रीधर स्वामी कृत मूल एवं अनुवाद
१३—(गुरमुखी) श्रीगुरु ग्रंथ साहब १४—(उर्दू) गुज़श्त: लखनऊ—मौ० शरर
१५—(फ़ारसी) दाराशिकोह कृत ५० उपनिषदों की फ़ारसी-व्याख्या का धारावाहिक हिन्दी अनुवाद
१६—(राजस्थानी) रुक्मिणीमंगल
१७—(अ़रबी) रियाज़ुस्सालिहीन (ह़दीस)—(ज़ादे सफ़र)
१८—रामचरितमानस (तुलसी)—संस्कृत पद्यानुवाद सहित, तथा ओड़िया लिपि में लिप्यन्तरण एवं ओड़िया गद्य-पद्यानुवाद
१९—इनके अतिरिक्त वेद, संस्कृत, पाली-प्राकृत, पारसी (ज़रथूस्त्र-गाथा) बाइबिल आदि के अनेक उद्धरण।
२०—(वाणी सरोवर)—उपर्युक्त अनुपम ग्रंथों का सानुवाद धारावाहिक देवनागरी लिप्यन्तरण का त्रैमासिक पत्र—वार्षिक १०·००

यह ग्रन्थ सम्पूर्ण हो चुके हैं (सानुवाद देवनागरी लिप्यन्तरण):—

२१—(बंगला) कृत्तिवास रामायण लंका काण्ड मूल्य १२·००
२२—(उर्दू) श्री 'रुस्वा' कृत शरीफ़ज़ाद: (आर्यपुत्र) ,, ५·००
२३—(गुरमुखी) जपुजी तथा सुखमनी साहब—गुरमुखी मूल पाठ तथा गीता के यशस्वी अनुवादक ख़ा०ब० ख़्वाज: दिलमुहम्मद कृत उर्दू पद्यानुवाद—दोनो देवनागरी लिपि में—मू० ५·००
२४—सिर्रे अक्बर (दाराशिकोह कृत ईश, केन, कठ, प्रश्न, मुण्डक, माण्डूक्य, ऐतरेय, तैत्तरीय, श्वेताश्वतर) की फ़ारसी व्याख्या हिन्दी में—मू० १५·००
२५—(तमिळ) तिरुक्कुऱळ् (धर्म खण्ड) —देवनागरी लिपि में ,, ५·००
२६—(मलयाळम्) महाभारत—पौलोम-आस्तीक पर्व ,, ५·००
२७—ज़ादे सफ़र (इस्लामी ह़दीस) ,, १२·००

ट्रस्ट के अतिरिक्त, सानुवाद देवनागरी-लिप्यन्तरण के अन्य कार्य, जो अन्यत्र हो चुके हैं:—

१—(अ़रबी) क़ुर्आन (मूल आयतें अरबी व देवनागरी लिपि में, अनुवाद, टिप्पणी सहित)—इस्लामी धर्माचार्यों द्वारा प्रतिपादित—४०)
२—(बंगला) कृत्तिवास रामायण—(पाँच काण्ड) बंगला मूल देवनागरी में लिप्यन्तरित, अवधी पद्यानुवाद—मू० १६·००

वाणी प्रेस, लखनऊ-३ में मुद्रित एवं भुवन वाणी ट्रस्ट, लखनऊ—३ द्वारा प्रकाशित।
—द्वारा नन्दकुमार अवस्थी, सम्पादक